JEEVAN SAHITYA 1941

078754

COMPILED

078754

तमसो मा ज्योतिर्गमय

ीवन साहित्य

: अंक १ अगस्त : १९४१

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

सन्देश और प्रेरणा

तुलसी और लोकमान्य आज के भारत के लिए हमें क्या सन्देश देते हैं ? कौनसी स्फूर्ति व प्रेरणा करते हैं ? तुलसी ने शैवों व वैष्णवों के टूटे दिल मिलाये। तुलसी का स्मरण करके क्या हम अपनी टूटी राष्ट्रीय एकता को नहीं जोड़ सकते ? क्या तुलसी से हमारा काम इस समय ज्यादा विकट है ? तुलसी ने दोनों की बुराइयाँ कुरेदकर नहीं दोनों की भली बातों को मिलाकर उनका हृदय जोड़ दिया। इस माला के बनाने में उनकी उच्च, शुद्ध व विशालहृदयता अर्थात् महान् साधुता ने धागे का काम किया। क्या उनकी साधुता को हम समझेंगे, उनके सन्देश को सुनेंगे ?

लोकमान्य हमें स्वराज्य का पाठ पढ़ा गये। कह गये—'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' वे देख रहे होंगे कि इस अधिकार को पाने के लिए हम कितनी कुरबानी कर रहे हैं, कैसा संगठन कर रहे हैं ? क्या हम उन्हें अच्छा हिसाब दे सकेंगे ? उन्होंने हमारे दिलों में अन्याय का घोर प्रतीकार करने की भावना पैदा की। क्या हम अपने जीवन में सब जगह अन्याय से लड़ते हैं ?

मृत्यु के समय भी लोकमान्य आशावादी रहे। जिसमें ऊँचा चरित्र-बल हो वही अन्त तक आशावादी रह सकता है। हम कितने आशावादी हैं ? अपने चरित्र में कितने अडिग हैं ?

क्या आज हम अपने-अपने दिलों को टटोलेंगे ?

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल

कनाट सर्कस नई दिल्ली

विषय-सूची

१. जय जय जाग्रत हे ! [श्री सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०] १

२. जीवन-परक साहित्य [श्री हरिभाऊ उपाध्याय] २

३. अछूत [श्री विष्णु अम्बालाल जोशी, एम. ए] ४

४. भावी स्वर्णयुग में [श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन] ५

५. राम-राज्य ८

६. वृक्षों का व्यक्तित्व [श्री ब्रजमोहन गुप्त, एम. ए.] ९

७. तर्क का परदा न डालें [राय कृष्णदास] १०

८. व्यावहारिकता चाहिए [श्री वृजनारायण नरूला] ११

९. राष्ट्रभाषा कैसे बने ? [श्री जैनेन्द्रकुमार] १४

१०. वही तो कलाकार है [श्री सोमनाथ गुप्त] १७

११. परीक्षक से [श्री वियोगी हरि] १८

१२. पत्रकार चिन्तामणि [श्रीराजेन्द्रशंकर भट्ट] १९

१३. प्रस्तुत प्रश्न २१

सहयोगी आलोचक-मण्डल; नया तूफ़ान

१४. समालोचनार्थ प्राप्त २४

१५. कसौटी पर २५

'प्रलय-वीणा'; 'सुनीता'; 'कुलीनता; 'स्वस्तिका' और 'कलरव; 'प्रजासेवक'

१६. प्रगति की ओर २९

१७. सैर-सपाटा ३०

१८. क्या और कैसे ? ३१

गलत दिशा में; बंगाल और राष्ट्रभाषा; समभाव से; आलोचक-मण्डल; उपयोगी सुझाव; राजनैतिक दुनिया में; लेखक और प्रकाशक का इकरारनामा; सत्साहित्य-सेवक-समाज

१९. 'मंडल' की ओर से ३६

सचित्र मासिक पत्र

धर्म-दूत

वार्षिक मूल्य १) : नमूना मुफ्त

यदि आप संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष भगवान बुद्ध की जीवनी और उनका उपदेश पढ़ना चाहते हैं, यदि आप बौद्धकालीन भारतीय संस्कृति, सभ्यता, साहित्य और कला का अध्ययन करना चाहते हैं और यदि आप यह जानना चाहते हैं कि बौद्धधर्म के साथ साथ इन वस्तुओं का संसार में कैसे प्रचार हुआ तो शीघ्र ही "धर्म दूत" के ग्राहक बनिए।

पता—

"धर्म-दूत" सारनाथ (बनारस)

—'बापू' बिना मूल्य—

'मण्डल' के एक प्रेमी की इच्छा है

कि

श्री घनश्यामदास बिड़ला की

'बापू' पुस्तक की

५० प्रतियाँ उन व्यक्तियों में बाँट दी जायें जो राष्ट्रीय विचार के हों पर गांधी-विचार-धारा से मतभेद रखते हों। इसलिए जो व्यक्ति इस कोटि में आते हों, वे इस बात के प्रमाण के साथ =)।। के डाक टिकट भेजें, उन्हें पुस्तक की एक प्रति बुक पोस्ट से पोस्टल सर्टिफिकेट लेकर मुफ्त में भेज दी जायेगी।

सस्ता साहित्य मण्डल

कनाट सरकस

नई दिल्ली

'मण्डल' के पाठकों व प्रेमियों

के लिये

078754

एक खुश ख़बर

मध्यप्रांत : महाराष्ट्र : हैदराबाद (दक्षिण)

के लिए

'मण्डल' की नई शाखा खुल गई

मध्यप्रांत, महाराष्ट्र, बरार व हैदराबाद (दक्षिण) में बसने वाले 'मण्डल' के प्रेमी पाठकों व हितैषियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि उपरोक्त स्थानों में 'मण्डल' का प्रचार व बिक्री संगठन करने के लिए श्री रिषभदासजी रांका के संचालकत्व तथा श्री लक्ष्मीनारायण 'भारतीय' के व्यवस्थापकत्व में लोकमान्य की इस पुण्य तिथि (१ अगस्त) से मण्डल की शाखा खुल गई है। अभी फिलहाल शाखा का कार्यालय बजाजवाड़ी, वर्धा में ही रहेगा। पर सुविधा तथा समय आने पर नागपुर में उसे लेजाने का विचार है।

आशा है 'मण्डल' के हितेच्छु बुजुर्ग, स्नेही मित्र तथा उदार पाठक 'मण्डल' के कार्य को उत्तम रीति से चलाने में अपनी सलाह, मार्गप्रदर्श तथा सुझावों से सहायता करने की कृपा करेंगे :—

मंत्री

सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली।

'सबकी बोली'

सम्पादक—काका कालेलकर

[यह मासिक पत्रिका हर महीने की १५वीं तारीख़ को निकलती है ।]

अिसमें आहिस्ता आहिस्ता हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों की साहित्यिक और भाषा-विषयक बातें प्रकाशित हुआ करेंगी ।

अिसका मुख्य अुद्देश्य है :—

हिन्दुस्तान की तमाम भाषाओं का आपस में हार्दिक संगठन करना ।

भारतमाताको पहचानके लिये और अुसकी सेवा करनेकी शक्ति प्राप्त करने के लिये जिन बातोंकी ज़रूरत होगी, अुन सभी विषयोंकी चर्चा 'सबकी बोली' में हुआ करेगी ।

अिसके 'साहित्य-सत्कार' विभागमें राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाओंके सहयोग से राष्ट्रकी अुन्नति करनेवाले सेवकों की विचारधारा का परिचय तथा अुनके साहित्य की समालोचना रहा करेगी ।

अिसमें अेक खास विशेषता यह होगी—

पारिभाषिक शब्द-चर्चा, कहानी, प्रवास, विशिष्ट व्यक्तियोंके शब्द-चित्र, राष्ट्रभाषा-आन्दोलन-सम्बन्धी व विद्यार्थियोंके लाभ के नियमित लेख ।

वर्धा-राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति भी अपनी सभी ज़रूरी सूचनाअें अिसमें प्रकाशित करती है ।

खास सूचना :—

राष्ट्रभाषा-प्रचार परीक्षाओंमें बैठनेवाले विद्यार्थी अपनी चालू क्रम-संख्या बतलाकर, १ रुपया वार्षिक चन्दा देकर, अेक वर्ष के लिये 'बोली' पा सकते हैं । सर्व-साधारणसे वार्षिक चंदा रु० १-४-० मनीऑर्डर से ही लिया जायगा । हम वी० पी० नहीं भेजते । पत्र-व्यवहार करते समय अपना नाम और पता साफ़-साफ़ नागरी हर्फों में लिखने की कृपा करें । फुटकर संख्या का तथा पुराने अङ्क का मूल्य दो आना । डाक खर्च पुरानी संख्याके लिए प्रति अंक)॥। और नये अङ्कके लिये)। अङ्क की क़ीमतके साथ अवश्य आ जाना चाहिये ।

पता—व्यवस्थापक,

सबकी बोली, वर्धा

सुलभ साहित्य माला की नई योजना

अन्य नामी लेखकों के ग्रन्थ भी प्रकाशित होने लगे

मूल्य, पृष्ठ संख्या, टाइप आदि वही

पाटन का प्रभुत्व

बम्बई की कांग्रेस-सरकार के गृह-सचिव और गुजराती के प्रतिभाशाली लेखक श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुनशी का यह ऐतिहासिक उपन्यास दो भागों में प्रकाशित हो गया है और दूसरा उपन्यास 'गुजरात का नाथ' प्रेस में जा रहा है।

फ्रान्स के अमर लेखक ड्यूमा ने जिस तरह अपने देश के इतिहास के आधार पर एक दूसरे से सम्बद्ध कई उपन्यास लिखे हैं उसी तरह मुनशी ने गुजरात के इतिहास को लेकर चार उपन्यास लिखकर गुजराती साहित्य में अमर कीर्ति प्राप्त की है। ये उपन्यास इतने सुन्दर, सरल और मनोरंजक हैं कि गुजरात में घर-घर पढ़े जाते हैं। इनका एक-एक पात्र हृदय में हमेशा के लिए घर कर लेता है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की कमी को देखते हुए हमारा विश्वास है कि इनका खूब सत्कार होगा। दोनों भागों का मूल्य सवा रुपया।

सुनीता : परख-स्पर्द्धा

इसी माला में श्री जैनेन्द्रकुमार के उपन्यासों के ये दो भाग भी छपे हैं। इनका मूल्य भी दस-दस आना है। 'सुनीता' का मूल्य पहले तीन रुपया था।

राधा (भावनाट्य)

पं० उदयशंकर भट्ट हिन्दी के नामी कवि और नाटक-लेखक हैं। उनका यह पद्यबद्ध भावनाटक बिलकुल ही नये ढंग की रचना है। राधा का ऐसा सुन्दर चरित्र-चित्रण आपने कहीं न देखा होगा। मूल्य दस आना !

कुलीनता (नाटक) : सेठ गोविन्ददास १) **ग्रामीण समाज** (शरत्) ।।=) **दो चिड़ियाँ** (कहानियाँ) : जैनेन्द्रकुमार १) **पुष्पलता** (सुदर्शन) १।)

नोट—पास के बुकसेलरों से खरीदिए। नहीं तो फिर हमसे मँगाइए। सूचीपत्र के लिए पत्र लिखिए।

संचालक—**हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय**

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

बिहार की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था

'पुस्तक-भण्डार' की कुछ साहित्यिक पुस्तकें

काव्य-ग्रन्थ

१	विद्यापति की पदावली	२)
२	बिहारी-सतसई	१।।)
३	तुलसी-सतसई	१।।।)
४	गोविन्द-गीतावली	१।।)
५	रसकलस (हरिऔध)	४)
६	पारिजात (,,)	४)
७	रेणुका (दिनकर)	२।।)
८	रसवन्ती (,,)	१)
९	द्वन्द्वगीत (,,)	।।)
१०	गुनगुन (मनोरंजन)	।।।)
११	अन्तर्जगत् (लक्ष्मीनारायण मिश्र)	।)

आलोचनात्मक

१	भारतेन्दु-साहित्य (स्व०रामचन्द्र शुक्ल)	१)
२	हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास	५)
३	बिहार का साहित्य	२)
४	वाग्विलास (महावीरप्रसाद द्विवेदी)	१।।)
५	कविरत्न मीर (रामनाथ सुमन)	१)
६	दागे जिगर (,, ,,)	१।।)
७	नूरजहाँ	२।।)

उपन्यास-कहानी

१	देहाती दुनिया (शिवपूजनसहाय)	१।।)
२	प्रेमिका (स्व० ईश्वरीप्रसाद शर्मा)	२।।)
३	प्रेम-पथ (भगवतीप्रसाद बाजपेयी)	२)
४	विमाता (अवधनारायण)	२)
५	पुरुष-परीक्षा	१)
६	विभूति (शिवपूजन सहाय)	२)
७	किसलय (प्रो० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज')	१।।)
८	कानन (जानकीवल्लभ शास्त्री)	१।।)

बालमनोरंजक

१	बड़ों का बचपन	१।।)
२	आविष्कार और आविष्कारक	।।)
३	सियार पाँड़े	।।)
४	बगुला भगत	।।)
५	बिलाई मौसी	।।)
६	हीरामन तोता	।।)
७	जादू का राग	३)
८	बाल बोस्ताँ	=)
९	बालकों का योरप	।=)
१०	देवता	।=)

यात्रा-सम्बन्धी

१	आवारे की यूरप-यात्रा (सत्यनारायण, पी-एच. डी.)	२।।)
२	कैलाश-दर्शन	१।।)
३	उत्तराखंड के पथ पर	२)

कुछ अमूल्य और उत्तमोत्तम पुस्तकें

[भारतीय-दर्शन-परिचय—न्याय खण्ड ५); बिहार—एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन २); बिहार का चित्रित गौरव १); भारतीय इतिहास की बालपोथी १।।); भूलोक-परिचय २); प्रतिवेश-परिचय १।।); बच्चों का चिड़ियाखाना २); आदर्श राघव १); आत्मचरित-चम्पू १।।); रचना-नवनीत १।।) व्याकरण-चंद्रोदय १)]

पता—पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय और गोविंदमित्र रोड, पटना

मनोरंजक, रोमांचक, एवं शिक्षाप्रद

चार नये उपन्यास व कहानी-संग्रह

---

(१) नरमेध

लेखक—श्री सर्वदानंद वर्मा, जिनके 'संस्मरण' नामक उपन्यास ने उपन्यास-जगत् में तहलका मचाकर सन् १९४० के उपन्यासों में अपने को सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित किया था, उन्हीं का इस साल का यह सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है; यह उपन्यास क्या है, भविष्य के आर्थिक आधारों पर स्थित समाज की रूपरेखा है। **मूल्य १॥)**

(२) कुचक्र

लेखक—नरसिंहराम शुक्ल। प्रस्तुत उपन्यास-लेखक की सातवीं कृति है। इस उपन्यास में भारत की विख्यात नगरी बम्बई के कुछ प्रसिद्ध व्यापारी पश्चिमी भारत की कुछ रियासतों में व्यापारिक एकाधिपत्य क़ायम करने के लिए षड्यन्त्र रचते हैं—जालसाजों का एक भयंकर गुट्ट तैयार हो जाता है, जिसमें दो सुन्दरियों के आ पडने से एक अनूठी सरसता और रोमान्स आजाता है। यह उपन्यास वर्णनशैली घटनाओं की विचित्रता तथा सरसता के कारण बेजोड़ है। **मूल्य १॥)**

(३) मातृ-मन्दिर

रचयिता जगदीश झा'विमल'। इस उपन्यास में अपने जनस्थान के प्रति मनुष्य के हृदय में कितनी ममता होती है, निराश्रय हो अन्यत्र पाले-पोसे जाने के बाद तिरस्कृत होने पर अनाथ बालक कैसी ग्लानि का अनुभव करता है तथा सिर पर सैकड़ों मुसीबतें उठाकर वह किस प्रकार अपने को समर्थ बनाकर अपने जन्म-स्थान पर विशाल भवन बनाता है, इन सब बातों का सजीव और ओजस्वी वर्णन मिलेगा। इस उपन्यास को पढ़कर आप अपने हृदय में पवित्रता, त्याग तथा आशा का संचार पायेंगे। **मूल्य १॥)**

(४) सच्ची रोमांच कहानियाँ

ले०—चौधरी शिवनाथसिंह 'शाडिल्य'। यों तो आपने सनसनी घटनाओं से पूर्ण तथा रोमांचक कई कहानियाँ पढ़ी होंगी, पर इस पुस्तक की कहानियाँ सब सच्ची घटनाओं पर लिखी हुई हैं, जो काल्पनिक कहानियों से भी रोचक तथा रोमांचकारी हैं। आप इन्हें पढ़कर आश्चर्य रोमांच और करुणा से पूर्ण हो जायँगे। **मूल्य १)**

व्यवस्थापक—

छात्रहितकारी पुस्तकमाला,

दारागंज, प्रयाग

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—**प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)**—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४।।)

२—**वीरकाव्य संग्रह**—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कवितायें और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)।

३—**डिंगल में वीररस**—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कवितायें तथा तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना। सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १।।)

४—**संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य**—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालतेहुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक—पंडित ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ।।)

५—**चित्ररेखा**—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १।)।

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखीहुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १।।)

बाल-साहित्य-माला
१. **वीरशतमन्यु** (कविता) मूल्य ।)
२. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)
३. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कवितायें। मूल्य ।-)
४. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)
५. **बालकवितावली** (कविता) मूल्य ।)

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १)।

पता— साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।

बालोपयोगी इतिहास-माला

उथल-पुथल के इस ज़माने में अनेक देश के भावी नागरिकों को संसार के उलट-फेर से परिचित कराने के लिये **'बालोपयोगी संसार का संक्षिप्त इतिहास'** ३७ खंडों में निकालनें की योजना है। पुस्तकें सरस और रोचक ढंग से लिखी गयी हैं कि इन्हें ऐतिहासिक जानकर नीरस और उलझनदार न समझें। कहानी के ढंग पर लिखी पुस्तकें सब सचित्र हैं। ज्ञान का भंडार, **मूल्य प्रत्येक का १)**

प्रकाशित—**वैदिक भारत, पौराणिक भारत, रामायण, महाभारत, अमेरिका, ब्रह्मदेश** और **बौद्ध भारत। तुर्क भारत, मुगल भारत, राजस्थान, दक्षिणापथ (द्रविड़ों का इतिहास) सिख जाति और महाराष्ट्र,**

विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मँगाइए।

बिहार, युक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त और बड़ौदा
में शिक्षा-विभाग की स्वीकृत

किशोर

विद्यार्थियों को लोकप्रिय और ज्ञानवर्धक पठन-सामग्री देनेवाला अपनें ढंग का अकेला सचित्र मासिक।

'किशोर' विज्ञान, इतिहास की प्राचीन संस्कृति, साहित्य, व्यायाम और शिक्षा आदि के सम्बन्ध में किशोरों की ज्ञान-पिपासा शान्त करता है।

अपने पाठकों को मानव-जीवनक्रम, दुनिया के इतिहास, विज्ञान के शोधकों और साहसिकों के रोमांचक प्रसंगों का परिचय कराता है।

प्रेरक कवितायें, प्रकृति का सजीव वर्णन, यात्रा-विषयक लेख 'किशोर' की विशेषतायें हैं।

वार्षिक ३) : प्रत्येक ।=)

४ था अप्रेल के अंक **'उपकथांक'** से आरंभ हो गया है, किराये के नमूनें के लिए ।) का टिकट भेजिये,

हमारा साहित्यिक प्रकाशन

भारतीय ईश्वरवाद	पांडेय रामावतार शर्मा	३)
बिहार-दर्पण	गदाधर प्रसाद अंबष्ट	५)
बिहार के दर्शनीय स्थान	,, ,, ,,	१।)
प्रजातन्त्र	बा० रा० मोदक	१।।)
कलापी	आरसीप्रसाद सिंह	२)
रिमझिम	हंसकुमार तिवारी	१)
हमारे साहित्य-निर्माता	शांतिप्रिय द्विवेदी	१)
साहित्यिकी	,, ,,	१।।)
जीवन-यात्रा	,, ,,	।।।=)
रामचरित चिंतामणि	रामचरित उपाध्याय	२)
पद्य-प्रमोद	हरिऔध	।।)
हिन्दी मुहावरे	रामदहिन मिश्र	२।)
हिंदुस्तानी भाषा कोष	मिश्र और अंबष्ट	१।)
नवजीवन	राजा राधिकारमण प्र० सिंह	।।)
उद्भ्रांत प्रेम	चन्द्रशेखर उपाध्याय	।।।)
मेरे यूरोप के अनुभव	डा० राजेन्द्रप्रसाद	।=)
सम्मोहन विद्या	पी० सी० सरकार	।।।)
लाल चीन	रामवृक्ष बेनीपुरी	२)
स्टालिन	रामइक़बालसिंह	२)
खिलौना घर	हेनरिक इसेन	।।।)
हृदय की ओर	दुर्गाशंकर प्र० सिंह	२)
भाई-बहन	मोहनलाल महता	१।)
रजकण	,, ,,	।।।)
विभेद	राधाकृष्ण प्रसाद	।।।)
भूली हुई कहानियाँ	सरयू पंडा गौड़	१।।)
पुण्य फल	व्यथित हृदय	।।)
तुलसी-साहित्य	देवदत्त त्रिपाठी	।।)
शकुन्तला	राजा लक्ष्मणसिंह	।।।)
कहानी-एक कला	गिरधारीलाल शर्मा गर्ग	।।।)
संस्मरण	सर्वदानंद वर्मा	१।।)
ग्राम्य-पंचायत	वि० ग० वझे	।।=)
सन्त-साहित्य	भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'	२)

बाल-शिक्षा-समिति और ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर (पटना)

दन्तामृत (रजिस्टर्ड)

दाँतों की बीमारियों के लिए अपूर्व स्वदेशी मञ्जन

दाँतों और मसूढ़ों की सब बीमारियों यहाँ तक कि पायोरिया तक के लिए यह मञ्जन इतना गुणकारी सिद्ध हुआ है कि भारत के साधारण श्रेणी से लेकर श्रीमन्त एवम् राजा-महाराजाओं और कौंसिलों के सदस्य तो इसका व्यवहार करते ही हैं, कई अंग्रेज़, जो कि अपने देश की चीज़ों के सिवा बाहर की बहुत कम चीज़ें इस्तेमाल करते हैं, वे भी अपने देश के टूथ-पाउडर एवम् पेस्टों से इससे अधिक लाभ पाकर इसके भक्त बन गये हैं ।

जिसने एक बार इस मञ्जन का इस्तेमाल किया, वही सदा के लिए इसका भक्त बन गया । मूल्य टीन की डिबिया ।≡), बड़ी शीशी ।=), छोटी शीशी ।)

श्रीयुत. एम. के. आचार्य, एम. एल. ए. (मद्रास)—"आपका दंत-मंजन तो **मैंने अपनी दंत-पीड़ा के लिए गत पाँच वर्षों में व्यवहृत देशी-विदेशी सब मंजनों से श्रेष्ठतर पाया।** मंजन दाँतों, मसूडों और तालु के घावों पर जादू का-सा असर दिखलाता है ।"

श्री. एम० एस० बरदाचार्य एडवोकेट (मद्रास हाईकोर्ट)—"दो वर्ष पूर्व मुझे दंत-पीड़ा हुई थी जो बढ़ती ही गयी और मसूडों म घाव हो गये; **परन्तु आपके मंजन से अब मेरेमसूडे स्वस्थ हैं और दाँत में पीड़ा नहीं होती ।** मैं तो कहूँगा कि मेरे व्यवहृत दंत-मंजनों में सर्व-श्रेष्ठ आपका दंतामृत ही है ।"

मिलने का पता—**मैनेजर, 'राजस्थान आयुर्वेदिक औषधालय,' अजमेर**

गांधीवाद का अभिनव काव्य

कविश्री सोहनलाल द्विवेदी

रचित

भैरवी

सजिल्द : सचित्र : दाम दो रुपये

प्रकाशक

इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग

सस्ता-साहित्य-मण्डल की सब शाखाओं, संयुक्तप्रान्त के गांधी आश्रम
खादी-भण्डारों तथा प्रतिष्ठित पुस्तक-विक्रेताओं से प्राप्य

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय; तमसो मा ज्योतिर्गमय; मृत्योर्माऽमृतंगमय।

अगस्त, १९४१
नई दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

दूसरा वर्ष
पहला अंक

जय जय जाग्रत हे !

जय जय जाग्रत हे !
जय जय भारत हे !
रण-प्रण-बद्ध विपुल सेना-दल,
उठे युगों के ज्यों गौरव-बल;
आज मुखर आँगन में हलचल,
जय प्रस्थान-निरत जयध्वनि-मय, गति-मति-संयत हे !
जय जय जाग्रत हे !
जय जय भारत हे !

*

विस्मृत जातिभेद चिर-उद्भव
विकसित राष्ट्रप्रेम नववैभव,
गलित पुरातन रूढ़ि, राज्यरव,
जन-गण-सागर ऊर्ध्व, उच्छ्वसित, विस्तृत, उन्नत हे !
जय जय जाग्रत हे !
जय जय भारत हे !

*

उदित भाग्य दुर्भाग्य तिरोहित,
दृग-मन नव-आलोक-निमज्जित;
सबल संगठन आज मुक्ति-हित,
नवनिर्माण-निरत प्रतिपद नव बलिपथ-उद्यत हे !
जय जय जाग्रत हे !
जय जय भारत हे !

सोहनलाल द्विवेदी

जीवन-परक साहित्य

जीवन-परक साहित्य के दो मानी हो सकते हैं--(१) जीवन को समझाने व बनानेवाला साहित्य, (२) जीवन में से उपजा हुआ साहित्य। हमारे लिए जीवन के भी तीन हिस्से हो सकते हैं। (१) मानव जीवन, (२) भारतीय जीवन, (३) हिन्दू जीवन।

जीवन को समझानेवाले साहित्य में दर्शन व विज्ञान आता है, बनानेवाले साहित्य में धर्म, नीति आते हैं। जीवन में से उपजे हुए साहित्य में तमाम प्रयोग, अनुभव, जीवन-चरित, इतिहास, वर्णन आदि का समावेश होता है। अतएव यदि हमें जीवन-परक साहित्य देना है तो उसका यह अर्थ हुआ कि पूर्वोक्त सब विषयों की ज्ञान-सामग्री पाठकों को देनी चाहिए। और वह होनी चाहिए जीवन को समझाने व बनाने की दृष्टि से।

अब यह सवाल रहा कि किस जीवन को प्रधान मानकर चलें—मानवीय, भारतीय या हिन्दू जीवन को? विचारान्त में कहना पड़ता है कि भारतीय व हिन्दू जीवन का आधार मानव जीवन के आधार से मूलतः भिन्न नहीं है। भारतीय और हिन्दू संस्कृति मानव संस्कृति से असंगत या अनमेल नहीं है। मानव व भारतीय संस्कृति में अगर कोई फ़र्क है तो यही कि मानव संस्कृति सार्वजनीन है, भारतीय संस्कृति एक-राष्ट्रीय या एकदेशीय। यदि हम भौगोलिक आधार पर मानव संस्कृति के दो भाग करें—पूर्वी व पश्चिमी संस्कृति, तो कहना पड़ता है कि दोनों में बड़ा अन्तर दिखायी देता है। पर उस हालत में 'मानव-संस्कृति' को 'विश्व-संस्कृति' नाम देना ठीक होगा; क्योंकि 'मानव संस्कृति' में तो 'मानव' को, मानवी भावों व गुणों को, प्रधान मानकर चलना होगा। भारतीय व हिन्दू जीवन का आधार दो तत्त्वों पर है--एकात्म-भाव व सर्वभूत-हित। 'एकात्म-भाव' में जीवन को समझा गया है, 'सर्वभूत-हित' में जीवन को बनाने का श्रेष्ठ मार्ग बताया गया है। मानव जीवन का भी आधार इससे श्रेष्ठ या पृथक् क्या हो सकता है? हाँ, आगे विकास में जाकर हिन्दू संस्कृति ने अपनी कुछ विशेषता बनायी है जो दूसरी जातियों या राष्ट्रों की संस्कृति से कुछ भिन्न पड़ती है। वह है उसका पुनर्जन्म का सिद्धान्त, वर्णाश्रम-व्यवस्था व गो-रक्षा की भावना। वैसे 'पूर्वी' व 'पश्चिमी' संस्कृति की भाषा में बोलें तो दोनों में यह फर्क दिखाया जाता है कि पूर्वी संस्कृति योग-प्रधान व पश्चिमी संस्कृति भोग-प्रधान है। एक को 'श्रेय' प्रिय है, दूसरी को 'प्रेय'। लेकिन जहाँतक इस भावना से सम्बन्ध है कि सृष्टि के सब मनुष्य बराबर हैं, सब भाई-भाई हैं, व इस स्थिति को पाने के इस उपाय से सम्बन्ध है कि सबकी सेवा की जाय, सबका भला चाहा जाय, वहाँतक न 'पूर्वी' और 'पश्चिमी' संस्कृति के मूल-विचारों में कोई भेद दीख पड़ता है, न मानवी, भारतीय और हिन्दू-संस्कृति में। 'योग-प्रधान' व 'भोग-प्रधान' भाषा भी ऊपरी अवलोकन का परिणाम मालूम होती है। इसका सम्बन्ध अर्थ-व्यवस्था या समाज-व्यवस्था की ऊपरी बातों से जितना है उतना जीवन के मूल-भूत सिद्धान्तों से नहीं। पश्चिमी संस्कृति ईसाई-संस्कृति है। क्या ईसाई धर्म-ग्रंथों में अध्यात्म-तत्त्व का या श्रेय-साधन का अभाव है? इस्लाम में भी क्या नीति, धर्म, सदाचार को कम महत्त्व दिया गया है? क्या पूर्वी संस्कृति की उच्चता का दावा करनेवाले देश, जाति या समाज में भोगवादी व भोगी कम हैं? जीवन या संस्कृति की परीक्षा हमें उसके मुख्य आधारों, मूल रूपों को देखकर करनी चाहिए, न कि विकृत या प्रचलित रूपों को देखकर। रूप तो देश, काल, पात्र के अनुसार बनते-बिगड़ते रहते हैं और वे समाज, जाति या राष्ट्र की तत्कालीन अवस्था के सूचक-मात्र होते हैं।

हिन्दू-जीवन या संस्कृति की विशेषताओं में 'पुनर्जन्म' अलबत्ता दार्शनिक वस्तु है, वर्णाश्रम धर्म व गो-रक्षा का सम्बन्ध समाज-व्यवस्था से है। लेकिन अब तो वैज्ञानिक खोज के इस नये जमाने में ऐसा समय आ गया है जब हमको सब बातों पर नये सिरे से, नये प्रकाश में, फिर से विचार

करने की जरूरत पेश आ गयी है । भले ही उस प्रकाश में देखकर घूम-फिरकर हम बहुतांश में उसी नतीजे पर पहुँचें, जिसपर हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि, तत्त्ववेत्ता व समाजशास्त्री पहुँचे थे । पर नये सिरे से नवीन साधनों के द्वारा, नवीन ज्ञान के आलोक में हमें सब बातों को फिर देखना, तौलना, व विचारना अवश्य होगा । मुझे ऐसा लगता है कि 'सर्वात्मभाव' व 'सर्वभूतहित' इन दो बातों में तो हम जहाँ के तहीं रहते दीखते हैं; हाँ, समाज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था या राज-शासन में कुछ उलट-फेर भले ही करने पड़ें । लेकिन इनका यहाँ गहराई व तफसील से विचार करना अप्रासंगिक होगा । यहाँ हमारे सामने सवाल तो यह है कि किस जीवन को प्रधान मानकर हम साहित्य-सामग्री पाठकों को दें ? पूर्वोक्त विवेचन से हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि चाहे हिन्दू-जीवन को लें, चाहे भारतीय जीवन को या मानव जीवन को, उनके मूलाधारों में अन्तर नहीं है; बाहरी रूप-रंग-व्यवस्था में फर्क या विशेषता जरूर है । अतएव अच्छा होगा कि मूलाधारों की चर्चा तो हम वस्तु को समझने भर के लिए करें, लेकिन उनके बाहरी रूपों व भेदों की चर्चा खुलकर की जाय, जिससे हम यह तय कर सकें कि हम अपने समाज, संस्कृति या जीवन की सुन्दर व्यवस्था किस प्रकार करें ?

तो हम अब जीवन को समझने के लिए पहले इसी प्रश्न पर नये सिरे से विचार कर लें कि 'एकात्मभाव' नामक उसका आधार सही है या ग़लत । 'एकात्म' शब्द आध्यात्मिक है । यदि लौकिक या सामाजिक भाषा में बोलना चाहें तो हम कहेंगे––'मनुष्य सब बराबर हैं', अर्थात समानाधिकार या समता के आधार पर समाज या जीवन खड़ा है या खड़ा रहना चाहिए । क्या इस सामाजिक भित्ति या सामाजिक आदर्श में कोई ग़लती है ? या कोई भ्रम है ? विद्वान् और विचारक इसपर प्रकाश डालने की कृपा करें ।

अब 'सर्वभूत-हित' की भावना को लें । लौकिक और सामाजिक भाषा में इसे हम 'परस्पर-प्रेम, सेवा, सहानुभूति और सहयोग का भाव रखकर लोक-व्यवहार करना' कहेंगे । जब मनुष्य मनुष्य समान हैं तो उनके पारस्परिक सम्बन्ध को हम किस भित्ति पर खड़ा करें ? भय, मारकाट, दबाव-डराव, या बदले की नीति, प्रणाली और व्यवस्था पर, या प्रेम, सहानुभूति, सहिष्णुता, सहयोग की नीति, प्रणाली और व्यवस्था पर ? इनके गहरे विचारों में से हिंसा व अहिंसा की दो विचारधारायें फूट निकलती हैं । इसपर भी विचार-मंथन होने की जरूरत है और अधिकारी लोग अपने-अपने मन्तव्य उपस्थित करने की कृपा करें ।

इन दो खंभों के जमजाने पर हमारे लिए यह विचार करना आसान हो जायगा कि समाज या जीवन की प्रकृत रचना या व्यवस्था क्या, क्यों और कैसे हो ?

अब रही हिन्दू-संस्कृति की विशेषता । इसमें पहला 'पुनर्जन्म' है । हिन्दू-विचारकों में भी ऐसे लोग हैं जो पुनर्जन्म को तर्क-सिद्ध या वास्तविक नहीं मानते । इसकी भी चर्चा होनी चाहिए । पुनर्जन्म का हमारे सामाजिक आदर्श या समाज-व्यवस्था पर कोई असर पड़ता है या नहीं, इसकी छानबीन होनी चाहिए । वर्णाश्रम-व्यवस्था के लिए स्थान है या नहीं ? उसमें क्या सुधार होना चाहिए ? या कोई नवीन व्यवस्था होनी चाहिए ? नवीन हो तो किस तरह की ? साम्यवाद के आश्रय पर या गांधीवाद के आश्रय पर ? इसका ऊहापोह होना जरूरी है ।

अब गोरक्षा । यह विषय हिन्दू ही नहीं भारतीय समाज की अर्थ-व्यवस्था और कृषि-व्यवस्था से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है । इसके मूल में तो मनुष्य से निचली श्रेणी के जीवों के प्रति दयालुता का भाव है, जो कि बहुत स्वाभाविक और उचित है । परन्तु समाज-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था से इसका गहरा सम्बन्ध है । इसलिए इसकी भी फिर से जाँच-पड़ताल होनी चाहिए ।'

यहाँतक जीवन के आधारभूत प्रश्न हुए । अब हमें यह देखना चाहिए कि इन समस्याओं का

हल कहाँ-कहाँ क्या निकला, इसके कहाँ-कहाँ कैसे अमली प्रयोग हुए, उनमें से क्या निचोड़ या अनुभव हाथ आया, इसका भी वर्णन होना चाहिए। हमारे अपने देश में हमारी संस्कृति और समाज के संशोधन और निर्माण के क्या-क्या प्रयत्न हो रहे हैं, इनका भी वर्णन और विचार होना चाहिए। भारत का वर्तमान जीवन विकास की किस अवस्था से गुज़र रहा है ? दूसरे राष्ट्र के जीवन की तुलना में उसकी क्या स्थिति है ? उसके किन-किन अंगों में क्या-क्या सुधार-संशोधन होना चाहिए ? इसकी भी विवेचना हो।

मैं समझता हूँ शुरुआत के लिए जीवन-परक साहित्य की इतनी रूप-रेखा लेखकों के लिए काफ़ी होगी। इनपर मित्रों के सुझाव व विचार कृतज्ञतापूर्वक लिये जायेंगे और उनसे लाभ उठाया जायगा।

हरिभाऊ उपाध्याय

अछूत

[विष्णु अम्बालाल जोशी]

समाज के पंच-शिरोमणि ने मुझे दुत्कारकर कहा—

'तू दूर हो जा मेरी नज़र से ढीठ कलंकी !'

मैंने समाज से चलने-फिरने का अधिकार माँगा था, हिलमिल कर प्रेम से जीने की इच्छा प्रकट की थी।

पर, मुझे रुखा तिरस्कार मिला।

मंदिर के पुजारी ने कुपित होकर कहा—

'तू दूर हो जा मेरी नज़र से ढीठ अधर्मी !'

मैंने पुजारी से अपने साईं के दर्शन करने का अधिकार माँगा था; भक्ति से 'राम-नाम' के उच्चारण करने की इच्छा प्रकट की थी।

मुझे रूखा तिरस्कार मिला।

हताश अन्धकार में मैं छिपे-छिपे राजपथ के एक किनारे चला जा रहा था। इस मार्ग का अंत कितने योजन दूर है इससे मैं अनभिज्ञ था; पर अभी तो मेरे गाँव के मंदिर की शयन-पूजन-ध्वनि वायु-मंडल को भेदती हुई कानों में गूँज रही थी। मेरे पाँव थक गये थे। जठरानल मुझे अत्यधिक सता रहा था।

मुझे विवश-निष्प्राण होकर उस राजपथ के एक किनारे ताड़ वृक्ष का सहारा लेकर बैठ जाना पड़ा।

विक्षिप्तावस्था में मैंने अनुभव किया कि चारुचन्द्र शीतल किरणों के तारों पर अपनी कलंक की बात मंद संगीत में कह रहा है। मैं बोला, "मैं भी ऐसा ही कलंकी हूँ, देव !"

मैंने सुना—"अन्धकार की छाया में अपने आँचल को आत्मा के नन्हें ओसकणों से तरल कर ले।"

मैंने आग्रह से अपने जीर्ण-शीर्ण आँचल को अन्धकार में बिछा दिया।

वह दीप्त अटल नक्षत्र ध्रुव अपनी कोमल किरणों से मेरे लज्जित तथा कुंठित मुँह को छूकर एक करुण स्वप्न में अपनी कहानी कह गया। मैं बोला—"मैं भी ऐसा ही तिरस्कृत हूँ देव !"

मैंने सुना—संसार अपने कलंक में दूसरे को कलंकी देखता है। तू एकाग्रता की शान्ति में, मनन से संचित ओसकणों को एक लड़ी में पिरो ले। निर्दिष्ट समय पर प्राची के निरभ्र कोने से महापुरुष की एक रश्मि स्पर्श कर उनको अनुरंजित कर जायगी।"

उस झिलमिल रात्रि में मैं अपने आँचल को ओस-बिन्दुओं से भरने में सफल हुआ हूँ। अब मैं उस निर्दिष्ट समय की प्रतीक्षा में हूँ जब कि मेरे जीर्ण-शीर्ण आँचल के ओसकण उस महापुरुष की रश्मि से रंजित होकर संसार को प्रेम और करुणा से नहला देंगे।

भावी स्वर्णयुग में

[सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन]

'अगर तुम्हारा बस चलता, तो तुम कौन से ज़माने में जीना पसन्द करते ?' यह सवाल असल में एक खतरनाक सवाल है, और इस तरह के सवाल में बहुत ज्यादा दिलचस्पी रखना भी एक स्वस्थ मन का लक्षण नहीं है। बात कुछ तीखी लगती है, लेकिन इसकी सचाई का सबूत उस आदमी की बात से मिल सकता है, जिसने यह सवाल पूछा जाने पर एक ठंडी साँस लेकर जवाब दिया था कि 'मेरा बस चलता, तो मैं दुनिया का पहला आदमी होता।' क्यों ? 'इसलिए कि तब मैं आत्महत्या कर लेता, और यह दुनिया का झमेला कभी शुरू ही न हुआ होता; मेरे साथ ही और सबको भी छुट्टी मिल जाती !'

इस जवाब को ध्यान में रखकर ज़रा गहरे जाकर देखें, तो हम पायेंगे कि जो इंसान अपने आज के जीवन से बहुत दुःखी और निराश होता है वही अपना ध्यान किसी पुराने ज़माने की तरफ़ ले जाता है और बीती हुई सुख की घड़ियों की कल्पना में रम रहता है।

मैं इसे ज़रूरी समझता हूँ कि हमारा रागात्मक झुकाव वर्त्तमान की ओर ही हो। हम अपने जीवन की तह में वर्तमान के साथ एक गहरे संबंध का जीवित स्पन्दन अनुभव करें—फिर भले ही हम वर्तमान के कड़े आलोचक भी बने रहें। इसको मैं बहुत ही खतरनाक, अस्वस्थ और निकम्मा बनानेवाली हालत मानता हूँ कि किसी का शरीर तो जिये आज के ज़माने में और मन या दिल उसका रहे बीते हुए ज़माने के साथ।

इसीलिए मुझे स तरह के बुद्धि के खिलवाड़ से अरुचि है कि मैं कौन से ज़माने में रहना चाहता ? और अपने देश की तरफ़ देखते हुए तो मुझे इस खामखयाली पर झुँझलाहट भी हो आती है, क्योंकि हिन्दुस्तान में इस तरह प्राचीनकाल के साथ गठबन्धन कर लेने की प्रवृत्ति बहुत लोगों में पायी जाती है। कोई वेदों के ज़माने में रहता है, कोई रामराज्य में, कोई मुगल बादशाहों के रंगमहल में, तो कोई नवाब वाजिदअली के बावर्चीखाने की काल्पनिक खुशबू में ही मस्त रहता है !

कोई कह सकता है कि भविष्य के साथ ऐसा रिश्ता जोड़ना भी तो एक तरह का भागना ही है ! और मैं मानता हूँ कि इस आपत्ति में काफ़ी ज़ोर है। बल्कि मैं तो यहाँतक कहने को तैयार हूँ कि आजकल के बहुत-से प्रगतिशील कहलानेवाले लोग असल में ऐसे ही लोग हैं जो कि वर्तमान से ठीक इसी तरह भाग गये हैं। यानी उन्होंने रागात्मक सम्बन्ध भविष्य के साथ जोड़ लिया है। हैं ये भी रामराज्य के रहनेवाले; फ़र्क़ इतना ही है कि उनका रामराज्य बीता नहीं है, आगे आनेवाला है।

लेकिन पीछे देखने और आगे देखने में एक बड़ा भारी अन्तर है। अगर हम मान भी लें कि आगे देखनेवाले ने भी रागात्मक सम्बन्ध वर्तमान के साथ नहीं रखा, तो भी हम देखेंगे कि उसे भविष्य की तरफ़ ले जाना अधिक श्रेयस्कर है। यह इसलिए कि अच्छे भविष्य की कल्पना एक प्रेरणा-शक्ति भी हो सकती है। वह इंसान को, बल्कि समूची जाति को, उन्नति के पथ पर बढ़ने के लिए प्रोत्साहन भी दे सकती है। इसका एक बहुत अच्छा नमूना यहूदी जाति में मिल सकता है। यहूदियों में मसीहा के आने के विश्वास ने उनके जातीय जीवन और उनके ऐतिहासिक विकास पर कितना गहरा असर डाला, यह किसीसे छिपा नहीं है। आज भी यहूदियों में जो आश्चर्यजनक जातीय एकता पायी जाती है वह इसी सपने की नींव पर कायम है। यहूदियों की तुलना में हम आज के औसत हिन्दुस्तानी की उस प्रवृत्ति को रख सकते हैं जिसके कारण उसके व्यक्तित्व का सारा ज़ोर गुज़रे हुए ज़माने पर टिक जाता है, और वर्तमान पर शिथिलता और मुर्दनी छायी रहती है।

भविष्य की कल्पनाओं का—आनेवाले युग की किसी उम्मीद या कल्पना का—महत्त्व व्यक्ति

के लिए, समाज के लिए और अक्सर सारी जाति के लिए, कितना अधिक होता है, यह आज का वैज्ञानिक अच्छी तरह समझता है । ये जातिगत स्वप्न या कल्पनायें—जिन्हें आज का वैज्ञानिक Racial fantasies कहता है—जाति के जीवन से बहुत गहरा सम्बन्ध रखती हैं, और उसकी आत्मा को समझने में इतिहास से कहीं ज्यादा मदद देती हैं । जातियों के मनोविज्ञान में या मानव के वंश-विकास में रुचि रखनेवाले इस बात को जानते हैं ।

यह तो हुई एक बात । दूसरी बात यह है कि भविष्य की ओर रुख रखने से हमें अपने वर्तमान को ठीक साँचे में ढालने में भी बड़ी मदद मिलती है । जिसका आदर्श अतीत में है, यानी पीछे है, वह उस आदर्श पर अपने वर्तमान को आँकेगा भी, तो उसमें सिर्फ़ एक कुढ़न, एक व्यर्थ की झुँझलाहट, और फिर एक निराशा पैदा होगी । उसकी आलोचना तोड़नेवाली ज्यादा होगी, रचनेवाली कम । उसको बराबर वर्तमान बीते हुए ज़माने से घटिया लगेगा, और यह धारणा उसके दिल में घर कर जायगी, कि इंसान बराबर गिरता चला जा रहा है । उसमें कोई अच्छाई बाक़ी नहीं रह गयी है, और यदि रह भी गयी है, तो बहुत जल्दी ग़ायब हो जायगी । नतीजा यह होगा कि वह खुद अपनी अच्छाइयों की क़द्र नहीं करेगा; सोचेगा कि अच्छाइयों का ज़माना तो गया । आपने शायद देखा भी हो कि जो आदमी हर बात पर कह देते हैं, "अरे भाई, कलजुग है कलजुग !" वे खुद सबसे ज्यादा कलजुगी तबीयत के आदमी होते हैं ।

दूसरी ओर जिस आदमी का आदर्श आगे है, वह भी बराबर वर्तमान को उसकी कसौटी पर परखता है, और उसमें खोट देखकर असंतुष्ट होता है, लेकिन यह असन्तोष उसे निकम्मा नहीं बनाता, परास्त नहीं होने देता, बल्कि उसे भड़काता है कि वर्तमान को बदलकर एक नया ढाँचा तैयार कर, अपने आदर्श का सहारा लेकर बदलते हुए युग के प्रवाह के साथ बढ़ने के लिए अपने को समर्थ बनाये, अपने और अपनी जाति के विकास में भरसक सहायक हो ।

इतनी लम्बी भूमिका के बाद अब चलिए हम भविष्य की तरफ़ चलें । आप अलादीन के जिन्न के कन्धों पर बैठ जायँ या बगदादी चोर की दरी पर बैठें या गुलबकावलीवाली उड़न-टोपी पहन लें या एच० जी० वेल्स की 'टाइम मशीन' पर सवार हो लें—मैं तो चल पड़ा ।

यह लीजिए हम आ गये भविष्य में । आस-पास कैलेण्डर नहीं दीख रहा है, इसलिए मैं नहीं कह सकता कि सन् २००० है या ११०४१, पर ऋतु वसन्त की है, और...किन्तु ऋतु का वर्णन मैं नहीं करूँगा । इस तरह की मोटी-मोटी बातें तो हर कोई अपने कल्पना-लोक के बारे में सोच ही लेता है । वहाँ बारहों महीने वसन्त रहता है, फूल खिलते हैं, झरने झरते हैं, चिड़ियाँ चहकती हैं, कहीं किसी रोग-शोक का नाम-निशान नहीं दीखता, हारमोनियम नहीं चीख़ते, 'प्रीत की रीत' के गीतों के फ़िल्मी रिकार्ड नहीं बजते, आदि आदि । ऐसी बातें आप अपने मन से जोड़ लीजिए । वैसे भी मैं इनको ज्यादा महत्त्व नहीं देता । मैं आपको वही बातें बताना चाहता हूँ, जो मुझे सन् ४१ से खींचकर यहाँ ले आयी हैं ।

सामने रेडियो है, तो लीजिए, रेडियो से ही शुरू करता हूँ । यहाँ पर रेडियो की सुविधा सबको मुफ्त मिलती है । रेडियो ही क्यों, डाक, तार, रेडियोतार, रेडियो टेलीफ़ोन, रेडियो सिनेमा, अख़बार, बस, ट्राम, रेल, बिजली, गाड़ी, हवाई रेल आदि सब तरह की सुविधायें बिना किराये या महसूल के मिलती हैं । अस्पताल सबके लिए खुला है । डाक्टर बिना फ़ीस के मिल सकते हैं, दवाइयाँ मुफ्त मिलती हैं । वे सब सुविधायें क्यों और कैसे मुफ्त मिलती हैं, कौन इसका इन्तज़ाम करता है, यह देखने की बात है । असल में यह सब प्रबन्ध एक नगर-पंचायत करती है, जिसे पुराने ज़माने में— यानी बीसवीं सदी में— म्युनिसिपैलिटी कहते थे । यह पंचायत केवल एक टैक्स लेती है, जिसे नागरिकता-कर कहते

हैं। यूरोप की तरफ़ यह 'यूटिलिटी टैक्स' कहलाता है। इस टैक्स के बदले पंचायत उन सब बातों का प्रबन्ध करना अपना धर्म समझती है, जो कि नागरिक के आराम के लिए ज़रूरी या उचित समझी जाती हैं।

मैं जानता हूँ कि आपका जी ललच आया होगा। आप सोचते होंगे कि हम इस ज़माने में रहते तो दिन भर हवाई रेल की सैर किया करते। लेकिन अजीब बात है कि इस ज़माने में कोई आदमी इन सुविधाओं का दुरुपयोग नहीं करता। लोगों की नागरिक या सामाजिक चेतना बहुत बढ़ी हुई है। इस चेतना के पैदा करने में न जाने कितने वर्षों का या कितनी पीढ़ियों का कठिन परिश्रम लगा है। इसका पूरा ब्योरा आप को नहीं दूँगा, लेकिन सामाजिक जिम्मेदारी की शिक्षा से ही यह काम हो सका है। जिम्मेदारी की यह भावना किस तरह बढ़ायी गयी, इसके कुछ उदाहरण लीजिए : बुढ़ापे का, बेकारी का, प्रसूति-काल का, और अन्य प्रकार के सामाजिक बीमे का प्रबन्ध तो राज्य ने कर ही दिया था, लेकिन एक नियम उन्होंने यह भी बनाया कि अगर किसी व्यक्ति के पड़ोस में कोई आदमी भूखा है या किसी भी वजह से तकलीफ़ में है, तो इस बात की सूचना पंचायत को न देना भी उतना ही बड़ा जुर्म है जितना कि उसकी मदद न करना। इस तरह के उपायों से हर आदमी के मन में यह भावना पैदा की गयी कि वह अपने लिए ही नहीं, अपने पड़ोसी के सुख-दुःख के लिए भी जवाबदेह है। कुछ और प्रबन्ध भी किये गये। आपको याद होगा कि सन् १९४१ में कुनैन डाकघरों में बिका करती थी। लेकिन इधर यह प्रबन्ध किया गया कि सब तरह के पुराने रोगों की दवाइयाँ डाकघरों से मुफ्त मिल सकें। उदाहरण के लिए मधुमेह का रोगी एक डाक्टरी सर्टिफ़िकेट ले लेता, और उसके काम पर देश के किसी भी डाकघर से वह यथासमय इन्सुलिन प्राप्त कर सकता।

इस तरह के प्रयत्नों के बावजूद कभी-कभी नागरिक धर्म की उपेक्षा हो जाती है। इस तरह की भूलें अधिक होने पर पंचायत दोषी को 'दूसरे दर्जे का नागरिक' घोषित करके विशेष संस्थाओं में भिजवा देती थी, जहाँपर वैज्ञानिकों, शिक्षाशास्त्रियों, और मनोविज्ञान के आचार्यों की मदद से उसकी नागरिक चेतना का नया संस्कार होता था। कभी-कभी यह भी काफ़ी नहीं होता था। तब पंचायत की आज्ञा से ऐसे व्यक्तियों को मनोवैज्ञानिक अस्पताल में भेजा जाता था, जहाँ उनकी असामाजिक या समाज-विरोधी प्रवृत्तियों का पता लगाकर इलाज किया जाता था। ऐसे उपयोगों से जेलों, पागलखानों, थानों, फ़ौजदारी अदालतों, अनाथालयों और ऐसी अन्य चीज़ों की आवश्यकता धीरे-धीरे मिट गयी, और अब नागरिकों की अपनी पंचायत ही ऐसी सब समस्यायें सुलझा लेती हैं।

यह तो है जीवन का एक पहलू। नागरिक जीवन के अलावा केन्द्रीय जीवन का भी संगठन है। पुलिस तो है ही नहीं, न अदालतें हैं। नगर-पंचायत के अलावा 'बाकायदा' सरकार की ज़रूरत नहीं है। केवल देश के अलग-अलग हिस्सों का सहयोग बनाये रखने के लिए एक केन्द्रीय संस्था है जो एक छोटा-सा केन्द्रीय टैक्स लेती है। अनुभव से पेशबन्दी आवश्यक समझकर सैनिक-शिक्षा का प्रबन्ध रखा गया है, और सभी स्वस्थ नागरिक यह शिक्षा पाते हैं। मौक़ा पड़ने पर कुल जनता का आठवाँ हिस्सा तत्काल मोर्चे लेने के लिए बुलाया जा सकता है।

सुनते हैं कि आगे चलकर इसकी भी ज़रूरत नहीं रहेगी। सामाजिक व्यवहार और भी विकसित हो जायगा और तब अलग-अलग देशों की केन्द्रीय संस्थायें नहीं रहेंगी——सारे संसार का एक ही संघ होगा।

क्या आप एक नज़र उस ज़माने पर भी डालना चाहेंगे? आइए, चलिए——लेकिन क्षमा कीजिएगा, मुझे यह उड़न-टोपी तो केवल पन्द्रह मिनट के लिए उधार मिली थी। ख़ैर, कभी-

मौक़ा पाकर इसे चुरा ही लूँगा—अभी तो लौट चलूँ। लीजिए यह रहा सन् १९४१, ३० जून की शाम और दिल्ली का रेडियो स्टेशन ![1]

---

[1] दिल्ली रेडियो पर पठित और डायरेक्टर के सौजन्य से प्रकाशित।

राम-राज्य

म० गांधी का कार्य मध्ययुगीन साधु-संतों के आगे निकल गया है। उनकी राम-राज्य की कल्पना अधिक परिणत और आधुनिक काल के अधिक अनुरूप है। 'राम-राज्य' शब्द सुनते ही आधुनिक शिक्षितों के मन में एक राज-सत्ताक राज्य की कल्पना खड़ी होती है और मध्ययुगीन साधु-संतों का राम-राज्य उस प्रकार का था भी। परन्तु गांधीजी का राम-राज्य इतना संकुचित और मर्यादित नहीं है। राम-राज्य से उनका अभिप्राय राज-सत्ताक राज्य-पद्धति ही नहीं है। राम-राज्य चाहे राजसत्ताक हो, प्रजा-सत्ताक हो, अथवा समाज-सत्ताक हो, ये उसके बाह्य रूप हैं। मगर राज्य का अन्तरंग हमेशा न्याय-स्वरूपी ही होना चाहिए। राम का राज्य धर्म का, न्याय का राज्य ही हो सकता है। 'राम' नामक व्यक्ति अब फिर भूलोक में नहीं आ सकता। लेकिन हर मनुष्य के अन्तःकरण में राम और रावण ये दो वृत्तियाँ रहती हैं। पहली से धर्म-बुद्धि और न्याय-भावना का उदय होता है और दूसरी स्वार्थ-बुद्धि के रूप में प्रगट होती है। मनुष्य के हृदय में स्वार्थ-बुद्धि का अन्त होकर न्याय-बुद्धि का राज्य स्थापित हो यही अन्तःकरण का राम-राज्य है। समाज में स्वार्थ-बुद्धि से उत्पन्न अनेक कलह नष्ट होकर उसमें न्याय स्थापित होने का नाम ही धर्म-स्थापना या धर्म राज्य अथवा राम-राज्य की स्थापना है। जिस राज्य को समाज की न्याय-बुद्धि का आधार है, जिस राज्य के कानून समाज की न्याय-बुद्धि के अनुसार बनते हैं, न्याय-बुद्धि से प्रेरित होकर चलनेवाले मनुष्य को जिस समाज के किसी प्रकार के कानून से बाधा नहीं होती, जिस समाज के सब व्यवहार मनुष्य की आन्तरिक न्याय-बुद्धि को सहज रूप से जँचनेवाले हों; अन्याय से धन कमाना और सत्ता का उपभोग करना जिस समाज में असंभव हो, और जहाँ की राज-सत्ता प्रजा से संगठित आतमबल के सामने झुक सकती हो, उस राज्य को राम-राज्य समझना चाहिए। आज के समाज-शास्त्रीय व राजशास्त्रीय विचारों की व समाज-रचना की दृष्टि से आज का भारतवर्षीय राम-राज्य राजसत्ताक न होकर प्रजा-सत्ताक हो और वह ऐसा ही होगा यही म० गांधी की कल्पना है।

आज का राष्ट्र-निर्माण प्रजातंत्र के सिद्धान्त पर हो और प्रजा के स्वराज में सामाजिक समता व नागरिक स्वतंत्रता सबके लिए खुली होनी चाहिए—यह बात म० गांधी ने अपनी उक्ति और कृति दोनों से अ-संदिग्ध रूप में लोगों को स्पष्ट कर दी है। हाँ, उनका यह स्पष्ट मत अवश्य है कि यह प्रजातंत्र योरपीय प्रजातन्त्र की तरह पूँजीवाद का गुलाम न हो और प्रजातन्त्र के नाम पर धनिक सत्ता की स्थापना इस देश में न होनी चाहिए। आधुनिक यूरोप में जो संस्कृति निर्माण हुई उसने धर्म का अधिष्ठान छोड़ दिया, जिससे वह भ्रष्ट हो गयी व उसमें पूँजीवाद और समाजवाद उदय हो गये। फलतः वह आज रसातल को जा रही है। इसीलिए उनका आग्रह है कि हमारी संस्कृति धर्म का अधिष्ठान न छोड़े व आधुनिक संस्कृति यूरोपीय संस्कृति का अंधानुकरण न करे।

इससे यह सिद्ध हुआ कि 'राम-राज्य' का उनका अर्थ आधुनिक शिक्षित लोग जैसा समझते हैं उससे भिन्न है। इसी तरह जब वे यह कहते हैं कि हमारे राष्ट्रनिर्माण में अथवा राजनीति में धर्म की भावना होनी चाहिए तब 'धर्म' शब्द का उनका अर्थ भी आजके पढ़े-लिखे लोग जो समझते हैं उससे भिन्न होता है।

सस्ता साहित्य मण्डल से प्रकाशित होनेवाली 'हमारी आजादी की लड़ाई' से]

वृक्षों का व्यक्तित्व

[ब्रजमोहन गुप्त]

परिजनों और मित्रों से घिरा हुआ मनुष्य प्रकृति के साथ अधिक आत्मीयता का अनुभव नहीं कर पाता । शहरों के सिनेमा, थियेटर आदि राग-रंग और चहल-पहल तो इस बात की सम्भावना और भी कम कर देते हैं । जिस व्यक्ति के घर में और बाजारों में सभी जगह रात को बिजली का प्रकाश फैला रहता है, वह यह अनुमान भी नहीं कर पाता कि जंगलों से घिरे सुनसान मैदान में अकेला रहनेवाला वह व्यक्ति जिसके छोटे-से सूने घर में रात को एक दीपक टिमटिमाया करता है, और घर के बाहर अँधेरी रातों में घने अंधकार का असीम समुद्र उमड़ता रहता है, चाँदनी रातों की किस उत्सुकता और आतुरता से बाट जोहा करता है !

शहरों का जीवन व्यस्त ! वहाँ किसके पास इतना समय है कि पेड़-पौधों-फल-फूलों,पशु-पक्षियों और प्रातः-सायंकाल की अरुणिमा और पूर्ण चन्द्र की ज्योत्स्ना के साथ मन अटका सके। पर यदि परिस्थिति मनुष्य को परिजनों तथा मित्रों से दूर, किसी ऐसे स्थान पर ले जाकर छोड़ दे जहाँ उसे जंगलों और मैदानों में लगभग अकेले ही रहना पड़े, तो ये सब पशु-पक्षी, पेड़-पौधे ही उसके परिजन और स्वजन बन जाते हैं । उसके साथ वार्तालाप करने, हँसने-खेलने लगते हैं । एक वर्ष के लिए परिस्थिति ने मुझको भी ऐसे ही स्थान पर पहुँचा दिया था ।

विद्यार्थी-जीवन समाप्त करते ही मैं एक अँग्रेजी मिडिल स्कूल का हैडमास्टर होकर एक देशी रियासत में चला गया । छोटा-सा ग्राम, दो-तीन सौ कच्चे घरों के बीच में एक विशालकाय बड़ा पक्का राज-भवन । पंसारियों,हलवाइयों, बजाज़ों की थोड़ी-सी छोटी-छोटी दुकानें, जिनमें रात को मिट्टी के तेल की कुप्पियाँ या लालटेनें जला करतीं । गाँव छोटा पर बहुत साफ़ चारों तरफ मैदान और कुछ जंगल जिनमें हरिणों के झुण्ड-के-झुण्ड कभी भी देखे जा सकें । समीप ही एक तरफ़ छोटी-सी पहाड़ी नदी ।

बस्ती में तो कोई भी रहने योग्य मकान खाली था नहीं । उससे कोई आध मील दूर मैदान में पक्का बना हुआ लम्बा-सा एक कमरा हमें मिला था, जो सुना है, अपना वानप्रस्थ-जीवन व्यतीत करने के लिए पिछले राजा साहब ने बनवाया था । मेरे साथ मेरे एक साथी और थे, श्री पुरुषोत्तम वर्मा ।

कमरे के दोनों तरफ़ लगभग पचास-पचास क़दम की दूरी पर मरघट था—एक ओर मुर्दे जलाने के लिए, दूसरी ओर बच्चे दफ़न करने के लिए । जिन मनुष्यों के सम्पर्क में आना पड़ता था उनमें से कुछ तो स्कूल के मास्टर और विद्यार्थी थे, और कुछ राज्य के कर्मचारी । उन लोगों से घनिष्ठता और स्नेह तथा सहानुभूति का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका । ऐसी स्थिति में वहाँ जीवन में मैंनें प्रथम बार अनुभव किया कि प्रत्येक वृक्ष का अपना-अलग व्यक्तित्व होता है, और पशु-पक्षी और पेड़-पौधे भी मित्र और स्वजन-परिजन बन सकते हैं ।

क्षीणकाया सरिता के किनारे मरघट-भूमि फैली हुई थी, बिल्कुल बंजर और उजाड़ । केवल दस-बीस वृक्ष इधर-उधर छिटके हुए थे । इधर-उधर फैले हुए प्रस्तर-खण्डों के ढेर उनके नीचे दफ़नाये गये शिशुओं के विषय में अनेक प्रकार की भावनायें हृदय में जगा देते थे । वहीं तीन कैथे के वृक्ष भी थे—लगभग बीस-बीस क़दम की दूरी पर, ठीक एक सीधी रेखा में । जब मैं वहाँ गया था तो उनमें पत्ते बिल्कुल नहीं थे । उनकी शाखायें झाड़-झंखाड़ सी फैली हुई थीं । वे वृक्ष मरघट के विषाद को और भी गहरा कर देते थे, और न जाने क्यों उन्हें देखते ही मरुभूमि की याद आ जाती थी । वसन्त ऋतु में वे तीनों वृक्ष हल्के हरे रंग की नन्हीं पत्तियों से लहलहा उठे । ऐसा लगने लगा मानों उस मरघट में जलाये और दफ़नाये गये सब प्राणियों

की अतृप्त आकांक्षायें वासन्ती हवा के स्पर्श से सजीव होकर कैथे के उन तीनों वृक्षों में पत्तियाँ बन-बनकर फूट निकली हों।

नदी-किनारे के एक टीले पर एक बहुत बड़ा इमली का पेड़ था। छाया उसकी बहुत ही घनी थी। बच्चे ढेले मार-मारकर उसपर से कच्ची इमलियाँ तोड़ा करते थे। गर्मी की दोपहरियों में जब धरती आवें की तरह तपा करती थी, गाय, भैंस और बकरियाँ उसके नीचे गुट्ट-मुट्ट जमा हो जाती थीं। चाँदनी रात में वह इमली का वृक्ष ऐसा दिखायी पड़ता था जैसे कोई भव्य पुरुष सुनहरी हरी चादर ओढ़े खड़ा हो।

हमारे कमरे की बग़ल में एक बहुत ऊँचा खजूर का वृक्ष भी था। फल उसपर नहीं आते थे। न तो मैंने उसमें कभी पतझड़ होते देखा और न कभी नये पत्ते निकलते। कुछ पुराने आधे सूखे और आधे हरे पत्तों का छत्र सिर पर लिये वह सदैव खड़ा रहता था—एकाकी और मौन, मानो कोई द्वन्द्वातीत वीतराग बूढ़ा दार्शनिक जीवन-मरण की समस्या सुलझाने में लवलीन हो। तेज हवा चलती थी तो वह झुक-झूम भर लेता था, जीवन का बस इतना ही चिन्ह उसमें शेष रह गया था।

और मैदान के किनारे एक आँवले का वृक्ष था। आँवले उसपर काफ़ी बड़े-बड़े आते थे। हम लोगों के पत्थरों का आघात भी उसे हर दूसरे-तीसरे दिन सहना पड़ता। भूनकर चटनी बनाने के लिए दो-तीन दिन भर को आँवले हम उससे तोड़ लाते थे। चाँदनी रात में उसकी झीनी हरी चादर की छटा भी देखने योग्य होती थी।

आम के वृक्ष आस-पास काफ़ी थे। दिन आये तो पीले-पीले सुगंधित बौरों से वे लद गये। कुछ दिन बाद पीले बौरों में गुलाबी बुन्दकियाँ पड़ने लगीं और फिर वे लाल-लाल-से होकर किशमिशी हो गये। भरी दुपहरी में भी उनपर कोयल रह-रहकर कूक उठती थी।

इनके अलावा नदी में शिकार खेलनेवाले बगुले और वृक्षों पर चहचहानेवाले नाना प्रकार के पक्षी मेरी दुनिया को वहाँ आबाद किये हुए थे।

वहाँ के एकाकीपन में ये सब मेरे जीवन में इस प्रकार घुल-मिल गये थे कि आज भी जब कि वहाँ के कष्टों की याद तो स्मृति-पट से धुल चुकी है, इन सबकी मधुर और स्नेह-भरी सुधि बिछड़े हुए परिजनों और मित्रों की याद की नाईं हृदय में एक मधुर-मधुर वेदना सी उठा देती है। आज भी इच्छा होती है कि उन सबके लिए, केवल उन सबको एक बार फिर देखने के लिए, सैकड़ों मील का सफ़र करके वहाँ पहुँच जाता!

[**मुजफ्फरनगर (यू० पी०)**

तर्क का परदा न डालें

[राय कृष्णदास]

मई के '**जी० सा०**' में जैनेन्द्रजी ने पूज्य बापू के आत्मचरित का अंश-विशेष पढ़कर चंचल हो उठने की चर्चा करके श्री मश्रुवाला की बात का ही समर्थन किया है।

किसी पहले संस्कार-वश ही तो वह ऐसे असमर्थ बन गये हैं कि "उस गहरे पश्चात्ताप की अश्रुकथा" तक से इस दशा को पहुँच जाते हैं। ऐसे संस्कार न बनने पावें, इसीलिए तो अश्लीलता की रोक-थाम आवश्यक है। सब साधु-महात्मा नहीं हो सकते। स्वयं साधु-महात्मा भी तो जन्म के साधारण नर ही होते हैं; नर से ही तो नारायण बनते हैं।

किन्तु आज इसके लिए कितनी प्रतिकूल परिस्थिति हो रही है! एक सन्तकवि की उक्ति याद आती है—'**मानहु नर कै अर्थ नरक भा**'। जैनेन्द्रजी मानवता पर रहम करें—समस्या पर तर्क का परदा डालने से काम न चलेगा। घाव ऊपर से पुज गया और भीतर-भीतर पाल करता गया तो? ……। यों तो, चोर भी अपने पक्ष की तात्त्विक व्याख्या कर सकता है।

व्यावहारिकता चाहिए

[वृजनारायण नरूला]

'जी० सा०' के विद्वत्ता-पूर्ण लेखों में मुझे काफ़ी दिलचस्पी रहती है और इसी कारण श्लील व अश्लील की चर्चा ने मेरा भी ध्यान आकर्षित किया है। जैनेन्द्रजी का मई मास के अंक में अश्लीलता-सम्बन्धी आपके नाम का पत्र पढ़ा। उनके विचारों का अध्ययन करने के उपरान्त मुझे ऐसा लगा कि जिस औसत दर्जे के मनुष्य का पक्ष लेकर उन्होंने इस विषय में अपना निर्णय दिया है, उसी मनुष्य को उन्होंने आदर्शवाद के इतने ऊँचे मंच पर बिठला दिया है कि वास्तविक और व्यावहारिक बुद्धि की दृष्टि से वह निर्णय सर्वथा त्रुटि-पूर्ण हो गया है। जैनेन्द्रजी के प्रति मेरे हृदय में बड़ी श्रद्धा है। उनके आदर्शवाद व उच्चवृत्ति का मैं हमेशा प्रशंसक रहा हूँ। परन्तु मुझे हमेशा यह अनुभव होता रहा है कि उन्होंने अपनी कृतियों द्वारा "चाहिए" की ही देन दी है जबकि संसार को "करो" की देन की ख़ास आवश्यकता है। प्रस्तुत विषय में भी जिन विचारों को लेकर उन्होंने अपना निर्णय दिया है वह एक उच्च आदर्शवादी के लिए ही संभव है, बेचारे औसत दर्जे के मनुष्य का वहाँ क्या ठिकाना!

जैनेन्द्रजी लिखते हैं—"इसपर से मैं नतीजा निकालना चाहता हूँ कि अश्लीलता यदि है तो वस्तु में नहीं, व्यक्ति में है। मेरे भीतर जिस निमित्त को लेकर बुराई उभर उठी है वह निमित्त उतना भर्त्सनीय नहीं जितना मैं स्वयम् हूँ। बुराई को अपने भीतर न टटोलकर उसे वस्तु में आरोपित करूँ तो यह मेरे हक में छल की बात होगी।"—"अश्लीलता कहाँ धरी है वस्तु में? और हो तो उसमें दम कितना है?" "और धर्म **वृत्ति** का प्रश्न है, वस्तु का वह थोड़े है।"

सिद्धान्ततया यदि इन विचारों पर मनन किया जाय तो इसमें कदापि संदेह नहीं कि जैनेन्द्रजी ने बड़ी तथ्यपूर्ण और सही बात कही है। परन्तु व्यावहारिकता के यन्त्र से यदि इसे परखा जाय तो यह विचार केवल सराहने योग्य ही रह जाता है, अमल में लाने योग्य कदापि नहीं; क्योंकि औसत दर्जे का मनुष्य अधिकतया वस्तु के गुण-दोष उस वस्तु में ही देखता है। यह उसकी प्रकृति बन चुकी है, फिर वह चाहे कितनी भी त्रुटि-पूर्ण क्यों न हो। इस त्रुटि-निवारण के लिए हमारे यह कह देने से कार्य थोड़े चलेगा कि हम गुण-दोष वस्तु में न देखकर अपने में उन्हें देखें, बल्कि पहिले तो हमें गुणवाली व दोष-युक्त वस्तुओं का विश्लेषण करके गुणवाली वस्तुओं को अपनाने का ही पाठ पढ़ाना होगा और उसके बाद जबकि उनके विचार गुणों को ग्रहण करने योग्य होजावेंगे तो उन्हें धीरे-धीरे गुण व दोष की कल्पना के भूत को मिटा देने का सामर्थ्य आ जायगा। मनुष्य का वस्तु-ज्ञान **वस्तु + उसके विचार** ही तो है। साधारण मनुष्य में इतना सामर्थ्य कहाँ कि वह इसका विश्लेषण करके वस्तु को वस्तु के हवाले कर, अपने विचारों के लिए अपने आपको सज़ा दे? उसे तो उसके विचार भी उस वस्तु के अंग-प्रत्यंग प्रतीत होते हैं और इसीलिए वह उस वस्तु को ही दोषयुक्त व गुणवाली कह कर संतोष कर लेता है। इसके अलावा सबसे बड़ी बात तो यह है कि बहुत-सी वस्तुओं का ज्ञान उसे विरासत में भी मिलता है। उसे उस वस्तु को जानने के लिए बुद्धि खर्च ही नहीं करनी पड़ती। ऐसी अवस्था में मनुष्य की वृत्ति पर ही उसके वस्तु-ज्ञान को छोड़ देना त्रुटि-पूर्ण ही नहीं वरन खतरनाक भी है। वृत्ति अपना काम करती है। बहुधा अवसर आते हैं कि औसत दर्जे का मनुष्य भी अपनी वृत्ति पर निर्भर रहकर वस्तु-ज्ञान प्राप्त करता है। परन्तु साधारण मनुष्य के लिए वृत्ति का प्रश्न उसका खुद का नहीं है। उसकी वृत्ति तो बाह्य वातावरण बनाती है। वह समय और वातावरण की दासी है। ऐसी हालत में वृत्ति तो मनुष्य को धोखा

देने में ही प्रवृत्त होगी। जैनेन्द्रजी ने इसपर एक उदाहरण दिया है—"मैं कह सकता हूँ कि सम्भ्रान्त श्रेणी में पहिनी जानेवाली चटकीली साड़ियाँ और निमन्त्रण देते जम्पर और ब्लाउज अश्लील है और जंगल में लकड़ी बीनती या घास छीलती नग्न-प्राय एक भील युवती की मूर्ति में अश्लीलता नहीं है।" सम्भ्रान्त श्रेणी की युवती की पोषाक भी अश्लील है वह इसीलिए न कि वह निमन्त्रण देनेवाली है, उसमें विलास ही विलास की गन्ध है। परन्तु नग्नप्राय भील युवती भी अश्लील है अवश्य; चाहे वह एक आदर्शवादी के लिए न हो। क्या एक साधारण मनुष्य जो कि भील-समाज का एक व्यक्ति नहीं है (भील समाज की वृत्ति तो उस वातावरण में ही बनी है) एक नग्नप्राय युवती को देखकर कामासक्त होने से बच सकेगा? इसी नग्नप्राय भील युवती को यदि उसके समाज में भी पूर्ण नग्न अवस्था में भेजें तो क्या वह समुदाय भी उसमें अश्लीलता नहीं देखेगा? देखेगा और अवश्य।

श्रद्धेय मश्रुवालाजी ने बड़ी तथ्यपूर्ण बात लिखी है। वे लिखते हैं "भोजन, शृंगार आदि के प्रकृति-धर्म मादक हैं। उनमें चित्तशुद्धि या शरीर-शुद्धि की सहज प्रसन्नता नहीं उत्पन्न होती; पर मद का उन्माद—जिसे आनन्द माना जाता है—होता है। जहाँ मादकता है वहाँ मर्यादा-धर्म उत्पन्न हो ही जाता है।" इन पंक्तियों द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि वृत्ति को वश में कर लेना मादकता के लिए कहीं आसान काम है। और इसीलिए मादकता को मर्यादित करना वांछनीय है।

जैनेन्द्रजी लिखते हैं—"अश्लीलता को लेकर हम आतंक में न पड़ें। स्त्री-पुरुष-संबंध से इसका कोई संबंध नहीं है। वैसा हो तो विवाह-संस्कार गृहस्थ-धर्म, पितृऋण, मातृ-सेवा आदि सब झूठे पड़ जायेंगे। विवाह से वर-कन्या पति-पत्नी बनते हैं। अर्थात् विवाह उन्हें परस्पर में (भोग द्वारा) सन्तति सृष्टि करने की अनुमति देता है। विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान है। इसी तरह पितृत्व, मातृत्व आदि समाज को कायम रखनेवाली पवित्र संस्थायें हैं।" जैनेन्द्रजी के इन विचारों में भी भूल है। अश्लीलता यदि स्त्री-पुरुष-संबंध से नहीं उपजती है तो फिर है क्या? कामोत्तेजक वस्तु ही तो अश्लील है और कामोत्तेजन स्त्री-पुरुष-संबंध ही में तो निहित है। इस परिभाषा से विवाह-संस्कार इत्यादि क्योंकर दूषित हो सकते हैं! **विवाह-संस्कार धर्म माना गया है न कि वह स्वयं ही धर्म है। उसको धर्म का जामा इसीलिए पहनाया गया है कि समाज की सुसंस्कृत-रूप से वृद्धि हो सके।** वर्ना क्या पति-पत्नी का भोग अश्लील नहीं है? वह है अवश्य, परन्तु क्योंकि इसकी अनिवार्यता देखकर उसे धर्म का नाम देकर मर्यादित कर दिया गया है, हम विवाह-संस्कार को धर्म के नाम से ही याद करना सीख गये हैं, और उसमें निहित अश्लीलता हमारी आँखों से ओझल होगयी है।

पुत्र क्या पिता या माता को धर्म के कारण मानता है? धर्म-वृत्ति उसको उन्हें सम्मान देने में सहायक अवश्य होती है, परन्तु असली कारण तो कुछ और ही है। पुत्र अपने पिता-माता को अपना जन्मदाता मानकर ही उन्हें पूजता है। इस पूजा में पूरी उच्चता है। उसका यह पूजना उसके उत्पत्ति-कारण से क्योंकर दूषित हो सकता है? वह तो उसका चिन्तन भी नहीं करता और क्यों करे? उसे क्या पड़ी कि वह यह जाने कि उसकी उत्पत्ति क्योंकर हुई? उसे तो यही जानना है कि उसकी उत्पत्ति हुई और अमुक माता-पिता के द्वारा। वह उसी को ऋण-स्वरूप लेकर उनको आदर और श्रद्धा देता है। धर्म इस आदर और श्रद्धा में स्थायित्व की पुट दे देता है। ऐसा ही एक उदाहरण जैनेन्द्रजी ने महात्मा गांधी की 'आत्म-कथा' में से दिया है। उस उदाहरण से तो साफ़ यह प्रतीत होता है कि अश्लीलता का मर्यादित करना अत्यन्त आवश्यक है। महान् साहित्यों में अश्लीलता के समावेश ने जिस प्रकार का बीभत्स लाभ उठाने का मौका दिया है, वह क्या किसी की आँखों से छिपा है? 'आत्म-कथा'

का वह उद्धरण भी अश्लील ही होता, यदि वह महात्मा गांधी की लेखनी से न निकलता--क्योंकि महापुरुषों को ही मर्यादा-भंग करने का अधिकार हो सकता है। उनकी हरएक बात शिक्षा-प्रद होती है और उनके हर लेख व कृत्य को शिक्षा के रूप में ही मनन करना चाहिए। क्या एक महापुरुष की लेखनी के एक उद्धरण से साधारण मनुष्य का मन नहीं डिगा ? क्या यह पर्याप्त सबूत नहीं कि अश्लीलता बहुत ही ख़तरनाक है और उसका मर्यादा में रखना अत्यन्त आवश्यक है। इनका नाश नहीं किया जा सकता क्योंकि यह अनिवार्य जो है। परमात्मा ने उसे एक साधन बनाया है जिसपर कि समाज के बने रहने का ही दारोमदार है। इसलिए अश्लीलता को मर्यादित ही किया जा सकता है। अतएव अश्लीलता के कीटाणु सत्य की धूप से मरेंगे अवश्य, परन्तु सत्य की धूप तो पहले उत्पन्न की जाय। आज कितने ऐसे सामर्थ्यवान हैं जो अपनी वृत्ति पर भरोसा रखकर जीवन-यापन कर सकते हैं ? यहाँ पर तो अँधेरा-ही-अँधेरा है, जिसमें कि यदि अश्लीलता को पनपने दिया जाय तो वह अनजाने में ऐसा गला दबोचे कि समाज का प्राणान्त ही करके छोड़े। अश्लीलता को मर्यादित करके पहले हम सत्यवृत्ति तो पैदा कर लें। तभी हम यह कह सकेंगे कि सत्य की धूप हमारे पास है, लुकाने-छिपाने के लिए अँधेरे की हमें आवश्यकता ही क्या है ?

मैं तो अंत में यह कहकर ही समाप्त करता हूँ कि वस्तु में भी अश्लीलता की संभावना कम मिक़दार में नहीं होती। यह बात मानने योग्य है कि चित्तवृत्ति द्वारा ही हम श्लील और अश्लील का बोध पाते हैं, परन्तु चित्तवृत्ति बाह्य कारणों से भी तो बनती है। वैसे तो संसार ही एक माया है और हममें और परमात्मा में भेद हमारी चित्त-वृत्ति का ही भेद है। परन्तु बाह्य सृष्टि ने हमारे भेद को एक स्थायी और सत्य रूप-सा दे दिया है। अतएव यह मानते हुए भी कि अश्लीलता वृत्ति पर निर्भर है, वस्तु स्वयं भी अश्लील हो सकती है। यह भी संभव है कि वह एक के लिए हो और दूसरे के लिए न हो; परन्तु किसी के लिए है तो। जैसे एक नग्न युवती का चित्र। बालक के लिए चाहे वह चित्र मात्र हो, वृद्ध के लिए भी वह ज्यादा मानी न रखता हो परन्तु एक युवा के लिए तो वह कामोत्तेजक और अश्लील ही है। वह उसकी चित्तवृत्ति को अवश्य ही भड़कायगा। समर्थ पुरुष ही चित्त-वृत्ति को वश में रख सकते हैं, वर्ना क्या औसत दर्जे के मनुष्य को बाह्य अश्लीलता डिगा नहीं सकती ? मेरे विचार में भी अश्लीलता का मूल आरम्भ स्थान तो चित्त-वृत्ति ही है परन्तु औसत दर्जे के लिए वह मूल स्थान कुछ मानी नहीं रखता और बाह्य वस्तु ही उसके लिए मूल-स्थान बन जाती है।

जैनेन्द्रजी ने श्रद्धेय मश्रुवालाजी के लेख पर टिप्पणी करके एक आदर्श ही का नमूना रखा है। चाहिए थी उसमें वास्तविकता और व्यावहारिकता।

सच्ची माता

एक सच्ची माता जो वास्तव में ईश्वर के नियम को जानती है अपने बच्चों को भी उस नियम का पालन करनेवाला बनायेगी। ऐसी माता जब अपने बच्चे को आवश्यकता से अधिक खाता हुआ देखेगी, अत्यधिक लाड़-प्यार से बिगड़ता हुआ देखेगी और ज़रूरत से ज्यादा कपड़ों से लदा हुआ पायेगी तो उसे हार्दिक दुःख होगा।

ऐसी स्त्री अपने बच्चे को वह शिक्षा न देगी, जो उसे अपने ईश्वरीय कर्तव्य को छोड़कर भाग निकलने को प्रेरित करे। वह तो उसे वही शिक्षा देगी, जिससे बालक अपने जीवन-श्रम का भार बख़ूबी उठा सकें।

स० सा० मण्डल]   —टॉल्स्टॉय—   [हम क्या करें ?

राष्ट्रभाषा कैसे बने ?

प्रिय सम्पादक जी,

पिछले महीने का पत्र मैंने आपको टीकमगढ़ से लिखा था। वहाँ हिन्दी के काम करनेवाले कई जमा हो गये थे। बनारसीदासजी तो थे ही। हम लोग मिलकर एक-एक दिन एक-एक विषय को ले लेते और चर्चा द्वारा एक दूसरे को समझने की कोशिश करते। इस स्वाध्याय-मण्डल में एक रोज़ राष्ट्र-भाषा के बारे में भी विचार हुआ और हम लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि—

(१) भाषा लोक-व्यवहार के सुभीते के लिए है। उससे अलग उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं। इसलिए लेखक की हैसियत से भाषा के बारे में इतना ही विचार काफ़ी है कि वह सहज और हार्दिक हो।

भाषा का प्रश्न असल में जीवन के प्रश्न में घुला-मिला है। इसलिए सबसे अधिक आवश्यक यह है कि व्यक्ति की सहानुभूति सब ओर खुली हो और उसका जीवन उत्तरोत्तर व्यापक हो। वह आसपास के जीवन से विलग न हो, बल्कि उससे मिला हुआ हो। तब भाषा अपने आप जैसी चाहिए वैसी होती चलेगी।

(२) हिन्दुस्तान की राष्ट्र-भाषा वह है जो उसके अधिक से अधिक भाग में समझी और बोली जाती है। उसे एक किनारे से हिन्दी तो दूसरे किनारे से उर्दू भी कहा जा सकता है। आसानी के लिए उसे 'हिन्दुस्तानी' कह सकते हैं।

(३) राष्ट्र-भाषा की लिपि (अभी तो) नागरी और फारसी दोनों मानी जा सकती हैं। जब एक लिपि का सवाल आवे, तो देश के सब लोग मिलकर उसका विचार और निर्णय करें।

(४) प्रत्येक हिन्दी के लेखक को उर्दू और हर उर्दूवाले को हिन्दी जानना ज़रूरी है।

(५) कोशिश करनी चाहिए कि हिन्दीवाले अपनी सभा और समाजों में उर्दू के काम करनेवालों को और उर्दूवाले अपनी सभाओं और जलसों में हिन्दी-कार्यकर्ताओं को बुलावें। इसके लिए अगर एक ही प्लैटफार्म बनाने की योजना हो तो अच्छा है। इस सम्मिलित योजना की भूमिका सांस्कृतिक हो।

(६) भाषा के बारे में किसी शब्द के प्रति बहिष्कार की वृत्ति न हो। ध्यान यही रखा जाय कि वह शब्द आम जनता में खपने लायक है।

(८) राजनीति, विज्ञान या और शास्त्रीय विषयों के लिए जहाँ नये शब्दों की जरूरत पड़े वहाँ भरसक देशज शब्दों से काम चलाया जाय।

(९) भाषा के बारे में यह चेतना बिल्कुल न रखी जाय कि उसमें संस्कृत और फ़ारसी से निकले शब्दों का अनुपात कितना है ?

(१०) असल में तो राष्ट्रभाषा के निर्माण में सब प्रांतीय भाषाओं और प्रादेशिक बोलियों को अपना-अपना दान देना है। इसलिए उस प्रश्न पर अखिल-भारतीय दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए, न कि हिन्दी-उर्दू के मेल के खयाल से।

इसमें कलम (३) में 'अभी तो' को कोष्ठक में मैंने किया है। आज हिन्दी उर्दू दो हों, और दोनों में बदगुमानी हो लेकिन क्यों न हम मान लें कि एक दिन आ सकता है, जब लगभग सब कोई दोनों लिपियाँ जानगे और इसलिए किसी भी एक की तरफ़दारी किये बिना उनपर विचार कर सकेंगे ? तब समय होगा कि राष्ट्र-शक्ति के मितव्यय की दृष्टि से हम एक राष्ट्र-लिपि का निर्णय कर सकें। 'अभी तो' कहकर हम भविष्य के सम्बन्ध में इसी राष्ट्रीय आत्मविश्वास का परिचय देते हैं। उसके नीचे छल नहीं, सद्भावना है। फिर भी चूँकि हवा में शक भरा है इससे कोष्ठक के शब्द गिराये जा सकते हैं।

पहली धारा में वह रुख़ है, जिससे इस प्रश्न को लेना चाहिए। अर्थात् भाषा के प्रश्न पर हिन्दुस्तानी नागरिक की, न कि इस या उस प्रान्तवासी या भाषाभाषी की, हैसियत से विचार करना चाहिए। भाषा के सवाल से

पहले जिन्दगी का सवाल है। यह ज़रूरी है कि आसपास के लोगों से हमारा हेलमेल बढ़े। ऐसे, हिन्दी में संस्कृत की तरफ़ और उर्दू में फ़ारसी की तरफ़ बढ़ने की भावना कम हो जायगी। बल्कि तब वे एक-दूसरे की तरफ़ खिचेंगी। राष्ट्रीयता अगर साम्प्रदायिकताओं में बँटकर कमज़ोर पड़ रही है, तो बहुत-कुछ इसलिए कि हम पड़ोसी को पड़ोसी नहीं, बल्कि स्वधर्मी या विधर्मी, स्वपक्षी या विपक्षी के रूप में देखते हैं। पड़ोसी-धर्म पर ज़ोर देने से मैं मानता हूँ कि भाषा की समस्या की कठिनाई कम होती जायगी।

हम अपने-अपने दायरों में घूमते हैं। हिन्दीवाला हिन्दी में, उर्दूवाला उर्दू में। तमाशा यह कि पड़ोस का साहित्यिक मेरे लिए एकदम अपरिचित रहता है और काशी-प्रयागवाले मेरे अपने बन जाते हैं। यह सिर्फ़ इतने अन्तर से कि वह अपनी कहानी दूसरी लिपि में लिखता है। यह हालत आज हमको अस्वाभाविक लग आनी चाहिए। इससे, आगे सुझाव है कि उर्दू-हिन्दीवाले आपस में मिला करें और सांस्कृतिक मंच पर वह मिलना हो।

'संस्कृति' शब्द यहाँ निरर्थक नहीं है। बनारसीदासजी की राय थी कि वह न रहे। पर मैं उस शब्द को न गिरा सका। वजह यह कि मिलते तो हम अब भी राजनीतिक धरातल पर हैं; पर वह मिलना क्या काफ़ी हुआ है? क्या वही ऊपर से मिलाकर किसी क़दर अन्दर से फाड़ने का सबब नहीं हो गया है? क्योंकि राजनीति के मंच पर अधिकारों की चेतना है, इससे राजनीति विभेद डालती देखी जाती है, अभेद जगाती नहीं। उससे मेल होता भी है तो सौदे का, मन का नहीं। मन का मेल यह नहीं माँगता कि तुम हमारी पार्टी में या गिरोह में आओ। जहाँ हो वहीं रहो, पर मित्र रहो। किसी को उसकी जगह से, यानी उसके विश्वासों और विचारों से, उखाड़ने की इच्छा नहीं, बल्कि सिर्फ़ आपसी समझ और मेल बढ़ाने की तबीयत है, उसको मैं सांस्कृतिक धरातल कहता हूँ। हिन्दी और उर्दू के काम करनेवालों को पास आने और मिलने-जुलने की ज़रूरत है, तो उसी धरातल पर। उसीका कुछ फल निकलेगा।

इन धाराओं में एक दिशा और भी देखी जा सकती है। वह यह कि भाषा के प्रश्न के समाधान के लिए हिन्दी उर्दू की तरफ़ या उर्दू हिन्दी की तरफ न देखे। जब मसला इस ढंग पर रक्खा जाता है कि इस नये अंग्रेज़ी शब्द के लिए हम फारसी-अरबी के सहारे से देसी शब्द बनायें या संस्कृत के सहारे से, तो सवाल मुश्किल हो जाता है। ऊपर सुझाया गया है कि ऐसे समय हम देहात की शरण लें। वहाँ शिष्ट भाषा की जैसी दरिद्रता नहीं है। प्रादेशिक बोलियों में बहुत शब्द भरे पड़े हैं, जो बड़ी सुघराई के साथ उठाकर अन्तर्प्रान्तीय चलन में लाये जा सकते हैं। अपने ही घर के उस भंडार से आँख मोड़कर हिन्दी और उर्दू में अनबन तो बन सकती है, निपटारा नहीं हो सकता। असल में तो हिन्दी-उर्दू दोनों ही हिन्दुस्तान में जनमी हैं। उर्दू में हों कितने ही शब्द विदेशी, वह हमारे हिन्दुस्तान की धरती से टूट नहीं सकती। यह तो हिन्दुस्तान की सिफ़त है और रही है कि बाहर के लोग, प्रभाव, शब्द आये हैं और पच गये हैं। उर्दू ने हिन्दी को समृद्ध किया है। उर्दू से सदा हिन्दी-लेखक की कलम में ख़ूबी ही पैदा हुई है। उससे उसकी भाषा का वैभव बढ़ा है। इसलिए, जैसे हिन्दी वैसे ही उर्दू, दोनों अपने को भरने और बढ़ाने के लिए हिन्दुस्तान के देहात की शरण लें। इन दोनों भाषाओं के विज्ञों की कमिटियों में झगड़ा मिलेगा, देहात में बनाबनाया सुलझाव मिल सकेगा। इससे कहा गया है कि जहांतक हो नये भावों के लिए 'देशज' शब्दों से काम लिया जाये।

धारा (९) के बारे में भी मतभेद था। बनारसीदासजी उसे अनावश्यक देखते थे। लेकिन उसमें कहा गया है कि संस्कृत या फारसी से निकले हुए शब्दों की बराबर-बराबर तोल रखने से हिन्दुस्तानी न बनेगी। वह निगाह ही-

गलत है । यानी अगर राष्ट्रीय सुविधा के लिए आदर्श हिन्दुस्तानी का निर्माण होना है, तो उसके लिए ज़रा भी यह नहीं सोचना होगा कि संस्कृत के शब्द काफ़ी आ गये या नहीं या फ़ारसी शब्दों का समुचित प्रतिनिधित्व हो गया है अथवा नहीं ? राजनीतिक सदभिलाषा में ऐसी भूल होती देखी जाती है । एक राष्ट्रीय मुस्लिम नेता जहाँ-तहाँ अपने भाषण में संस्कृत के शब्द छिड़ककर शायद मानें कि वह हिन्दुस्तानी की माँग को पूरा कर रहे हैं । इसी तरह हिन्दू राष्ट्रवादी मौक़े-बे-मौक़े अपनी भाषा में फ़ारसी लफ्ज डालकर अपने को सही दिशा में चलता हुआ मान सकते हैं । पर सच यह है कि यह काफ़ी नहीं है । दोनों को शब्द के असली अर्थ में डेमोक्रेटाइज़ होना होगा, यानी जनता का आदमी बनना होगा, तब उनसे असल तौर पर हिन्दुस्तानी का भला हो सकता है । उर्दू और हिन्दी के मेल के इरादे से एक कृत्रिम, अनमिल, गाँठदार भाषा देने से 'हिन्दुस्तानी' की सेवा नहीं होती । भाषा तो हर हालत में सहज और हार्दिक और सुबोध होनी चाहिए । भाषा में सुबोधता आयेगी तो तभी जबकि व्यक्ति का जीवन जनता से मिल चलेगा । **जबतक व्यापक लोक-जीवन के साथ हमारा मेल नहीं है, तबतक सच्चे अर्थों में सुलभ और सही हिन्दुस्तानी भाषा का निर्माण होने में हम से मदद नहीं मिलेगी ।** अर्थात् हिन्दी-उर्दू के संयोग से बननेवाली 'हिन्दुस्तानी' को अपने आप में एक अतिरिक्त उद्देश्य बनाकर हम बोलें-लिखेंगे तो उससे मुश्किल उतनी हल नहीं होगी, जितनी कि तब होगी, जब बग़ैर किसी हिन्दी-उर्दू के ख़याल के जनता के साथ अपने सुख-दुख को मिला देने की कोशिश में हम भाषा का व्यवहार करेंगे । कुछ यही आशय मानकर नवीं क़लम को रद्द नहीं किया सका ।

आखिरी धारा में भी यही बात स्पष्ट की गयी है । इस जगह पंडित सुन्दरलालजी के अभी आज ही पढ़े लेख का ज़िक्र असंगत न होगा। उन्होंने सवाल को इतिहास की ओर से देखा है । सवाल अमल का है और इतिहास में बहस है । यों वह लेख पढ़ने लायक़ है । उसमें 'हिन्दी' नाम की ऐतिहासिक परम्परा को देखते हुए उसे 'अवधी', 'ब्रज', 'राजस्थानी' आदि भाषाओं से अलग अम्बाले से मुरादाबाद तक के प्रदेश में बोली जानेवाली 'खड़ी बोली' के अर्थ में लिया गया है । उसी पर से फिर राष्ट्रभाषा का विवेचन किया है । कहा है कि यह 'हिन्दी' (खड़ी बोली) अन्तर्प्रांतीय व्यवहार का माध्यम थी । लेकिन अब 'हिन्दी' की सत्ता यहाँ से हटकर दूर—संस्कृत-मिश्रित भाषा की अभिधा में—चली गयी है, जबकि 'उर्दू' नाम क़रीब-क़रीब वहीं क़ायम है इस तरह आज अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए जब एक राष्ट्र-भाषा का सवाल है तब हिन्दी के बजाय उर्दू कहने से ठीक-ठीक खड़ी बोली का भाव मिल सकता है ।

पंडितजी की बात ठीक हो सकती है । पर आज राष्ट्रभाषा खड़ी बोली के आधार पर ही और उसी दायरे में बनेगी, यह स्थिति नहीं रह गयी है । ऊपर अंतिम धारा (१०) इसीलिए कहती है कि राष्ट्रभाषा के निर्माण में न सिर्फ़ हिन्दी और उर्दू बल्कि और भी प्रांतीय भाषाओं और बोलियों से योग माँगा जायगा । इसलिए हिन्दी-उर्दू की सुलह या अनबन पर राष्ट्रभाषा का सवाल टलनेवाला नहीं है और उसपर उस दृष्टि से नहीं बल्कि अखिल भारतीय दृष्टिकोण से ही विचार किया जाना चाहिए ।

इस सबके बाद एक मैं अपने मन की बात कह देना चाहता हूँ । आज देश के सामने है कि वह चुन ले कि वह अपने लिए क्या भविष्य और कैसी संस्कृति चाहता है ? हम शहर चाहते हैं कि गाँव चाहते हैं—मिलें चाहते हैं कि खेती चाहते हैं ? हम अपने बीच समता चाहते हैं कि ऊँच-नीचता (Aristocracy) भी चाहते हैं ? मेरे मन में किंचित् सन्देह नहीं है कि भाषा के सवाल के समाधान की जड़ें अगर हैं

तो यहाँ हैं। उसीं बिंदु के चारों ओर और सवाल लिपटे हुए हैं। अगर हम शहरी सभ्यता चाहते हैं और पश्चिम से आयी हुई इसी क़िस्म की अदालतें और फ़ौजें और सरकार चाहते हैं, तो लिपि के लिए हम 'रोमन' ले सकते हैं,—सकते हैं नहीं, लेनी पड़ेगी—और अंग्रेज़ी की शिक्षा को सारे देश में अनिवार्य बनाने का आन्दोलन कर सकते हैं। पर अंग्रेजी से गुलामी आयी है, और राष्ट्रभाषा का अगर सवाल उठा है तो उसी गुलामी को तोड़ने के लिए। और यह भी सच है कि गुलामी हमारी दरिद्रता पर कायम है—और दरिद्रता हमारी शहरी लूट पर कायम है। इससे अगर सचमुच गुलामी से छूटना है, तो देहात को आबाद करना होगा और जो सम्पत्ति वहाँ पैदा होती, पर खिचकर कहीं और चली जाती है, उसको वहीं पहुँचाना होगा। मैं कहना चाहता हूँ कि भाषा की असल समृद्धि भी वहीं से आयेगी। इसलिए क्या तो हिन्दी-वाले और क्या उर्दूवाले, सबको कहना होगा कि तुम अपनी अलग अर्थ की या भाषा की सम्पन्नता को भूल जाओ, क्योंकि उसमें जूँठन और उतरन भरी है। उर्दू कृत्रिम है और तुम्हारी हिंदी कृत्रिम है। दोनों लौट चलो वहाँ जहाँ सब अकृत्रिम हैं। वहाँ से भाषा लो। वह एक ही साथ हिन्दी का काम दे जायगी और उर्दू का भी काम दे जायगी। क्योंकि वही असल 'हिन्दुस्तानी' होगी।

ऊपर के मन्तव्य की क़ीमत इस लिहाज से सविशेष है कि कई हिन्दी-लेखकों का वह 'संयुक्त प्रतिनिधित्व' करता है। मैं चाहूँगा कि आप उसको ग़ौर से देखें, आवश्यक हो तो संशोधन सुझायें और फिर अन्तिम रूप से जो मसविदा बने उसको हिन्दी-संसार के आगे प्लैटफॉर्म के तौर पर मजबूती से जमाने में मदद करें। राजनीतिक राष्ट्रवादी पुरुषों से सुनते रहने के लिए ही साहित्यिक जन नहीं हैं, उन्हें उस बारे में अपना आधार ख़ुद पा लेना होगा। आप राष्ट्रीय युद्धों में जेल गये हैं, पर यहाँ तो हम साहित्य को लेकर साथ हैं। आशा है कि आप इस आवश्यकता पर ध्यान देंगे और एक स्वस्थ और जीवन-तत्पर साहित्य-मंच का आविर्भाव हिन्दी में होने देंगे।

सप्रणाम आपका

७, दरियागंज, दिल्ली] **जैनेन्द्रकुमार**

वही तो कलाकार है

[सोमनाथ गुप्त]

वही तो कलाकार है, जो संसार की विभूतियों में सामंजस्य उत्पन्न कर देता है।

जिसकी तूलिका से रूपसी उर्वशी अंकित होती है और भिखारिणी के चिथड़े खिल उठते हैं। अपनी मृदुल वाणी के आवरण में जीवन के सत्य को अवतरित कर जो प्रेय और श्रेय का समन्वय करता है।

अनुभूति ही उसकी साधना है। उसीके सहयोग से वह सत्यं, शान्तं और शिवं को सुन्दरं से अनुरंजित करता है।

केवल कल्पना ही उसकी क्रीड़ाभूमि नहीं। जीवन-पक्ष की सत्यता उसके भावकणों के रूप में शबनम की तरह हमें आर्द्र कर देती है। सूर्य्य की रश्मि के समान वह हमारे जीवन में नयी शक्ति और नया उत्साह भर देता है।

वह यथार्थ का आदर्श से मेलकर, परुष और कोमल के विशाल बंधुत्व की घोषणा करता है।

उसका संसार अनुपम है। कही धूप, कहीं छाया फैलाकर वह अपनी माया रचता है पर कितनी सुन्दर, कितनी आकर्षक, कितनी सत्य और कितनी स्थायी ! क्योंकि वह कलाकार है !

परीक्षक से

[वियोगी हरि]

लोग पूछते हैं, कि तुम सारी परीक्षाएँ पार कर चुके होगे, नहीं तो दूसरों के परीक्षक तुम कैसे बन पाते ?-यह भी भला कोई प्रश्न है ?

साफ़ ही यह उनका भ्रम है । परीक्षा लेने का परीक्षा देने से कोई सम्बन्ध नहीं । यह तो बिल्कुल बेतुकी बात है । परीक्षा तो चाहे जो चाहे जिसकी ले सकता है ।

दूसरों को सज़ा देनेवाले न्यायाधीश के लिए यह आवश्यक थोड़ा ही है कि वह खुद सारी सजाएँ काट चुका हो । मोती निकालनेवालों का धंधा तो है नहीं कि बिना खुद गोता लगाये मोती हाथ ही न आ सकें । किसीका फ़ैसला करते या परीक्षा लेते समय खुद बहुत गहरे जाने की ज़रूरत नहीं होती ।

परीक्षक, तुम्हारा काम तो दूसरे के अज्ञान को टटोलना है, तुम तो केवल इतना देखना चाहते हो कि उसके अन्दर अज्ञान कहाँ-कहाँ छिपा पड़ा है ?

तुम्हें यह नहीं देखना कि उसमें ज्ञान का अंश कितना है । यह काम तो खुद परीक्षार्थी का है ।

परीक्षा यों कोई नयी शोध नहीं है । परीक्षा पहले भी होती थी, पर तब इसका इतना विकास नहीं हुआ था । तब की परीक्षाएँ बर्बर युग की याद दिलाती हैं । परीक्षकों की निष्ठुरता सामने आती है, तो हृदय काँप उठता है ।

विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र की परीक्षा ली थी; राम ने सीता की; कृष्ण और अर्जुन ने मोरध्वज की; और इन्द्र ने शिवि की । सब-के-सब वे कैसे निर्दय परीक्षक थे !

वे जीवन की परीक्षा लेते थे, जब कि तुम मनुष्य की बौद्धिक योग्यता को परखते हो, और वह भी एक अच्छे वैज्ञानिक ढंग से ।

उन पुराने परीक्षकों के पास परीक्षा का कोई पैमाना नहीं था । ज्ञान को नापने का तुम्हारे पास, जब कि, एक अद्भुत फीता है, जिससे तुम परीक्षार्थी के मस्तिष्क को निश्चित अंकों से बाँध लेते हो ।

तुम्हारी निर्णय-बुद्धि की ओर कोई उँगली नहीं उठा सकता । तुम हज़ारों परीक्षार्थियों की योग्यता को खूब बारीकी से नाप लेते हो । तुम्हारे चेहरे पर की भाव-रेखाएँ बतला देती हैं कि किस परीक्षार्थी ने तुम्हारे प्रश्न को किस तरह हल किया है ।

तुम्हें आश्चर्य होता है कि प्रश्नों का तुम खुद जैसा उत्तर लिखते वैसा परीक्षार्थी ने क्यों नहीं लिखा—तुम्हारी जैसी योग्यता उसकी क्यों नहीं है !

संयोग से किसी प्रश्न का उत्तर देखने से छूट जाये, या अंकों का जोड़ ग़लत लग जाये, या उत्तर-पुस्तक जाँचते समय ध्यान तुम्हारा कहीं इधर-उधर चला जाये, तो उसके लिए तुम थोड़े ही दोषी ठहराये जा सकते हो ?

और वह कमबख्त असफल विद्यार्थी रेल की पटरी पर लेटकर जान दे दे, तो उसकी मृत्यु के जवाबदेह तुम थोड़े ही हो सकते हो ?

तुमने तो अनासक्त भाव से अपने हाथ में योग्यता-अयोग्यता नापने का फीता पकड़ रखा है—नाप लेते समय सूत-दो-सूत वह इधर-का-उधर हो जाये और उससे कोई आत्मघात कर बैठे, तो उसे 'संयोग' ही कहा जायेगा; परीक्षा की वैज्ञानिकता इससे सदोष नहीं कही जा सकती ।

और तुम्हारा वह 'संयोग' हमेशा ही घातक नहीं होता; किसी-किसी के हक़ में तो वह श्रेयस्कर सिद्ध होता है । तुम्हारी अंकों की आकस्मिकता से निपट अयोग्य भी कभी-कभी योग्य बन जाता है ।

कभी-कभी तुम उदारता की लहर में आकर 'कृपांक-दान' से भी काम लेते हो । आशय यह कि पुराने बर्बर परीक्षकों से तुम बहुत आगे निकल गये हो ।

परीक्षा लेने की तुम्हारी पद्धति को इधर कुछ आलोचकों ने अप्राकृतिक और ग़लत साबित

किया है। पर तुम उनकी आलोचना से कभी विचलित नहीं हुए और न कोई कारगर परीक्षा-पद्धति ही वे अवतक निकाल पाये हैं। और उनकी आलोचनाओं पर तुमने कभी ग़ौर से विचार भी नहीं किया है। परीक्षा तुम्हें खुद तो देनी नहीं, इसलिए परीक्षा-पद्धति पर विचार करने की ज़रूरत भी नहीं।

परीक्षक, तुम्हारे श्रम को अवतक तो सफलता ही मिली है; साथ ही, विवेक और न्याय को उत्तेजना भी। और स्वयं आलोचक भी तुम्हारे हाथ से प्रमाण-पत्र पाने की अभिलाषा रखते हैं।

पत्रकार चिन्तामणि

[राजेन्द्रशंकर भट्ट]

सर सी. (चिरुवरी) वाई (यज्ञेश्वरम्) चिन्तामणि पहली जुलाई को स्वर्गस्थ होगये और हमारे देश का एक ऐसा व्यक्ति उठ गया, जिसने भारत की सीमाओं के परे तक ख्याति प्राप्त कर ली थी।

श्री चिन्तामणि मृत्यु के समय 'सर' उपाधि से विभूषित थे; इलाहाबाद और बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालयों के 'डाक्टर' थे; धन-वैभव से सम्पन्न थे; लेकिन श्री चिन्तामणि के व्यक्तित्व का असली मूल्य यश-वैभव की सूचना देनेवाली इस चकाचौंध में नहीं समझा जासकता। इसके लिए तो उस पृष्ठभूमि को ही देखना होगा, जिसपर वास्तव में यह महान् व्यक्तित्व आधारित था।

मध्यम श्रेणी के एक ब्राह्मण-परिवार में ११ अप्रैल, १८८० को श्री चिन्तामणि ने विजयानगरम् (दक्षिण भारत) नामक नगर में जन्म पाया था। अतएव जीवन में प्रवेश करने के लिए उन्हें वह सुविधा प्राप्त नहीं हुई, जो सोने के चम्मच से दूध पिला सकनेवाले परिवार के बच्चों को प्राप्त होती है। मैट्रिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद उन्होंने और किसी स्कूली परीक्षा में सफलता नहीं पायी, क्योंकि स्थानीय राजनीति में फँस जाने के कारण वे इंटर की परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुए, और इसके बाद तो उन्होंने नियमित शिक्षा की ही समाप्ति करदी। इस तरह, उन्हें जीवन प्रारम्भ करते वक्त उच्च शिक्षा से प्राप्त डिग्रियों का भी सहारा नहीं मिल सका। उनके पिता राजगुरु थे, अतएव पत्रकारित्व उनका खानदानी धन्धा भी नहीं था, जिसके कारण इस धन्धे की बारीकियाँ शुरू से उनके खून में दौड़ती रही हों। संक्षेप में, केवल अपने सहारे तमाम असुविधाओं का सामना करके श्री चिन्तामणि ने अपनी जीवन-चर्या प्रारम्भ की।

जनता में और जनता की समस्याओं में उनकी रुचि शुरू से थी। अंग्रेजी भाषा पर उनका बड़ा अधिकार था और उनकी स्मरण-शक्ति तो महाप्रचंड और सतत जागरूक थी, इसीलिए उन्हें 'सजीव विश्वकोष' कहते थे। किसी भी नयी समस्या के सामने आते ही उसपर अपने विचार प्रस्तुत करने की क्षमता उनमें थी। साहस और प्रत्यक्ष उनमें असाधारण था। और यही सब उनकी पूँजी थी, जिसके सहारे वे जीवन-सरिता में उतरे, और जिसके बलपर उसे अनुकरणीय सफलता से पार कर गये।

श्री चिन्तामणि के जीवन की कुछ और भी विशेषतायें थीं। उनकी बुद्धि और समझ जिस बात को ग्रहण कर लेती थी, उसे आप निधड़क कलम से सामने ला देते थे। शब्दों के मायाजाल में अपनी अन्तरात्मा के साथ खिलवाड़ करना उनकी आदत के खिलाफ़ था। इसी कारण उन्हें अपनी प्रिय संस्था कांग्रेस छोड़नी पड़ी, और कई मित्रों का विरोध करना पड़ा। इसी कारण उनको उतनी ख्याति और राजनैतिक सत्ता नहीं मिली, जो उन-जैसे समर्थ व्यक्ति के लिए अन्यथा सहज होती। पद या धन का लालच उनके कर्तव्य-मार्ग का काँटा नहीं बन

पाया। वे जो ठीक समझते थे, उसे कहने में नहीं चूकते थे।

आत्मसम्मान उनके चरित्र की दूसरी विशेषता थी। अपनी और अपनी प्यारी चीज़ों की इज्जत बेचकर रहना चिन्तामणिजी को नहीं आता था। २८ महीनों की उनकी मिनिस्ट्री सचमुच स्वाभिमान की—जो वास्तव में गोरों के बीच कालों का सम्मान था—रक्षा की कहानी है, और जब उनसे संबंधित एक मामले में गवर्नर ने उनकी उपेक्षा की, तब मिनिस्ट्री को ठुकराकर उन्होंने स्वाभिमान की ही रक्षा की। इसके लिए सभी राष्ट्रीय विचार के लोगों ने उनकी प्रशंसा की थी।

श्री चिन्तामणि की कलम में बहुत ज़ोर था—इतना कि उनके विरोधी भी उनके लेखों को आदर के साथ पढ़ते थे। उन्होंने अपने लेखों द्वारा नौकरशाही की बहुत आलोचना की। यू. पी. की सरकार और उसके कर्मचारी उनके लेखों से घबराते थे। पर उनकी कलम उतनी ही तेज तब कांग्रेस के विरुद्ध भी चली, जब वे कांग्रेस से अलग हो चुके थे, अर्थात् जब उनके खयाल से कांग्रेस पथभ्रष्ट हो चुकी थी। सहयोग का उन्होंने सदा विरोध किया, लेकिन, साथ ही, सरकारी दमन भी उनकी आलोचना का शिकार हुआ। वर्तमान युद्ध के प्रारम्भ होने पर कांग्रेस द्वारा मंत्रीपद छोड़ना उनको पसन्द नहीं था, युद्ध-सहायता के बारे में उनका एक सुनिश्चित मत था कि मित्र-राष्ट्रों की भरपूर सहायता की जाय। 'साइमन-कमीशन' और 'साम्प्रदायिक निर्णय' का उनकी कलम ने जो उग्र विरोध किया, वह इस बात का साक्षी है कि श्री चिन्तामणि राष्ट्रीयता के हामी थे, पर तथाकथित राष्ट्रीयता के लिए वे किसी जाति-विशेष के उचित अधिकारों का बलिदान सहन नहीं कर सकते थे। कहा जाता है, जब श्री चिन्तामणि ने मिनिस्ट्री स्वीकार करने के लिए "लीडर" का संपादन छोड़ा, तब महात्मा गांधी और श्री चिन्तामणि के बीच "लीडर" और "यंग इंडिया" द्वारा एक गंभीर वादविवाद हो रहा था। श्री चिन्तामणि के संपादक न रहने पर भी "लीडर" ने वह विवाद जारी रखना चाहा, पर गांधीजी ने उसमें रस लेना इसलिए बंद कर दिया कि तब "लीडर" के वार वीरों के लिए अशोभनीय (below the belt) होने लगे थे। श्री चिन्तामणि की कलम में कितना समय और गांभीर्य था, यह इस उदाहरण से साफ़ मालूम हो जाता है। उनकी आलोचना कड़ी होती थी, ओछी नहीं।

पत्रकार तो श्री चिन्तामणि बहुत ऊँचे थे ही। "लीडर" की धाक इसका सजीव प्रमाण है। पर इन पंक्तियों के लेखक की तरह, जो श्री चिन्तामणि को पत्रकार मात्र मानते हैं, वे तो यही कहेंगे कि श्री चिन्तामणि को जीवन में जो कुछ सम्मान मिला वह सफल पत्रकार होने के नाते मिला। वे पत्रकार शुरू में और पत्रकार अन्त में थे। जो कुछ काम उन्होंने दूसरे क्षेत्र में किया—और वह काम कुछ कम नहीं है—वह उन्होंने या तो पत्रकार का कर्तव्य मान कर किया या उसका अधिकार। कितनी मामूली स्थिति से उठकर भी एक पत्रकार देश का ऊँचे से ऊँचा सम्मान पा सकता है, एक पत्रकार के लिए सभी कुछ कर सकना सम्भव है, यह श्री चिन्तामणि का जीवन पुकार-पुकारकर कह रहा है। वास्तव में उन्होंने अपनी लगन और योग्यता के बल पर पत्रकारों का सम्मान बढ़ाया। और उनकी इस साधना के स्वीकृति-स्वरूप उन्हें सम्मान मिला।

श्री चिन्तामणि का जीवन अपने में सफल और प्रायः पूर्ण था। उन्होंने एक जीवन में उतना कर दिया जितना एक संस्था कर पाती। और उनकी जीवन-कहानी तब सफल कही जायगी जब भारतीय पत्रकार उससे प्रेरणा प्राप्त करेंगे। वैसे संसार के महान् पत्रकारों में श्री चिन्तामणि की गिनती सदैव की जायगी।

078754

प्रस्तुत प्रश्न :

सहयोगी आलोचक-मंडल

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रतिमास पुस्तकों की जो आलोचनायें निकलती हैं उनसे हमारे लेखक, प्रकाशक, पाठक, आलोचक और स्वयं पत्र-सम्पादक सभी असंतुष्ट रहते हैं। लेखकों और प्रकाशकों की शिकायत है कि आलोचक चुने हुए शब्दों में, पुस्तक बिना पढ़े ही, केवल भूमिका में इधर-उधर झाँक-झूँककर उसकी आलोचना कर दिया करते हैं। कभी-कभी तो बार-बार पत्र लिखने पर भी कई महीने तक आलोचना छपती ही नहीं। पाठकों की शिकायत है कि पत्र-पत्रिकाओं में की हुई आलोचनाओं से हमें पुस्तक का यथार्थ मूल्य ज्ञात ही नहीं होता और इनके आधार पर पुस्तकें खरीदने में हमें सदा धोखा खाना पड़ता है। आलोचकों का कहना है कि मुफ्त में हम पूरा ग्रंथ पढ़ने और आलोचना लिखने में अपना समय क्यों नष्ट करें? इसी प्रकार सम्पादक कहा करते हैं कि हमारे पास तो इतना समय ही नहीं कि आलोचनार्थ आयी हुई सभी पुस्तकों की हम स्वयं आलोचना कर सकें और दूसरी बात यह कि हमें ऐसे निष्पक्ष आलोचक मिलते ही नहीं जो यथासमय आलोचनायें भेजकर हमारी सहायता करते रहें।

यहाँ एक योजना हिन्दी के लेखकों, प्रकाशकों आलोचकों और पत्र-सम्पादकों के सम्मुख रक्खी जा रही है। हमें पूरा विश्वास है कि यदि इस योजना को कार्य-रूप देने में हमारे साहित्य-सेवियों ने हमारी सहायता की, तो हिन्दी में एक सुगठित समालोचक-मण्डल की शीघ्र स्थापना हो सकेगी।

रूप-रेखा

लखनऊ में एक "सहयोगी आलोचक-मंडल" स्थापित किया जाय। पत्र-सम्पादक (अथवा संचालक) इसके ग्राहक-सदस्य होंगे। और विद्वान हिन्दी-प्रेमी आलोचक, सेवक-सदस्य। लेखकों और प्रकाशकों द्वारा भेजी हुई पुस्तकें विद्वान आलोचकों के पास पहुँचाना, समय पर उनसे आलोचना लिखवाकर, सम्पादित और संकलित करके उन्हें पत्र-सम्पादकों के पास भेज देना—हमारा यही कार्य होगा। पत्र-संपादकों से हम इसके लिए मासिक शुल्क के रूप में कुछ धन लेंगे। आलोचकों का पारिश्रमिक, चिट्ठी-पत्री, कार्य-व्यवस्था के खर्च के साथ सम्पादन, संकलन और पत्रव्यवहार आदि में अपना समय देने के लिए स्वयं कुछ पारिश्रमिक इसी धन में से दिया-लिया जायगा। हमारा अनुमान है कि हमारा पारिश्रमिक और आफ़िस-खर्च आय के चौथाई भाग से चल जायगा; शेष तीन-चौथाई हम आलोचकों को बाँट देंगे। इस संस्था के आय-व्यय का वार्षिक ब्योरा हम पत्र-पत्रिकाओं में छपा दिया करेंगे। इससे हिन्दी-जगत को ज्ञात हो जायगा कि हमारी संस्था का उद्देश्य व्यापार नहीं, साहित्य-सेवा ही है।

लेखकों और प्रकाशकों से

(१) पुस्तक की एक-एक प्रति उन पत्रों में भेज दी जाय जिनमें वे उसकी आलोचना प्रकाशित कराना चाहते हों और साथ ही जो हमारे मंडल के ग्राहक-सदस्य भी हों।

(२) यदि हमारे उस विषय के आलोचक लखनऊ के बाहर के हों तो उन्हें एक प्रति उनके पास भेज देनी चाहिए और एक प्रति हमारे पास। यदि आलोचक लखनऊ के हों तो उन्हें दो प्रतियाँ हमारे पास भेज देनी चाहिए।

आलोचकों से

प्रत्येक आलोचना के लिए उन्हें पारिश्रमिक दिया जायगा।

एक कमी

इसमें एक कमी बतायी जा सकती है। एक ही लेखक की आलोचना हम सभी संपादकों के पास भेजेंगे। पर सभी सम्पादक एक ही लेखक की आलोचना छापना स्वीकार न करेंगे। साथ ही लेखक भी एक से अधिक विद्वानों की

सम्मतियाँ अपनी पुस्तक के विषय में जानना चाहता है ।

इस-सम्बन्ध में हमें केवल इतना कहना है कि आलोचनायें प्रायः पाठकों के लिए ही प्रकाशित की जाती हैं । यों कभी-कभी वे दो-चार पत्र भले ही देख लें, पर साधारणतः एक पाठक नियमित रूप से एक ही पत्र पढ़ता है । ऐसी स्थिति में एक ही विद्वान आलोचक की सम्मति से सभी संतुष्ट हो जायँगे । फिर भी हमारा प्रयत्न आलोचक-मण्डल को विस्तृत करना ही रहेगा और हम यही चाहेंगे कि प्रत्येक पत्र के लिए नयी आलोचना ही भेजी जाय । हाँ, आरम्भ में ऐसा होना कठिन है ।

हमारा आलोचक-मण्डल

निम्नलिखित विषयों और लेखकों की सूची हमने बनायी है । हिन्दी-लेखक, आलोचक और संपादक इसे विस्तृत करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र हैं:

(१) **अर्थशास्त्र** : पं० दयाशंकर दुबे, प्रयाग । (२) **इतिहास** : डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, प्रयाग; श्री चन्द्रगुप्त वेदालंकार, दिल्ली । (३) **लेखन-कला** : श्री भारतीय, प्रयाग । (४) **गृह-विज्ञान** : श्रीमती सीतादेवी, कलकत्ता । (५) **तर्क और दर्शनशास्त्र** : बा० गुलाबराय, आगरा; प्रो० छंगालाल मालवीय, लखनऊ । (६) **भू-विज्ञान** : पं० रामनारायण मिश्र, प्रयाग । (७) **राजनीति** : डा० बेनीप्रसाद, प्रयाग । (८) **शिक्षा** : बाबू कालिदास कपूर लखनऊ । (९) **साहित्य (पद्य)** : पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, शांति-निकेतन; प्रो० शिवपूजन सहाय, छपरा; पं० नंददुलारे वाजपेयी, काशी; पं० शांतिप्रिय द्विवेदी, काशी; प्रो० सत्येन्द्र, मथुरा; प्रो० नगेंद्र, दिल्ली; पं० किशोरीदास वाजपेयी, हरद्वार; पं० भोलानाथ शर्मा, बरेली । (१०) **साहित्य (गद्य)** : पं० श्रीधर पंत, बरेली; प्रो० गोपाललाल खन्ना, लखनऊ; पं० सद्गुरुशरण अवस्थी, कानपुर; पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, टीकमगढ़; श्री प्रेमनारायण टंडन, लखनऊ ।

आशा है कि हिन्दी-प्रेमी सभी सज्जन इस योजना के सम्बन्ध में अपने विचार शीघ्र से शीघ्र प्रकाशित करने की कृपा करेंगे ।

कालिदास कपूर, प्रेमनारायण टंडन ।

पत्र-व्यवहार का पता—
प्रेमनारायण टंडन, एम० ए०, रानी कटरा, लखनऊ ।

नया तूफ़ान

श्री सुन्दरलालजी के बंबईवाले एक भाषण की कुछ बातों को लेकर हिन्दी के पत्रों में काफ़ी हलचल मची है । छपा है कि सुन्दरलालजी ने ऐसा कुछ कहा कि हिन्दी-प्रचार का आन्दोलन हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की एक बहुत बड़ी वजह है । और एक सदी पहले हिन्दुस्तान की सिर्फ़ एक कौमी जबान थी उर्दू । अबतक यह बात किसीने न कही थी । हिन्दी-प्रचार आन्दोलन पर इन दोनों कथनों का बहुत बुरा असर पड़ सकता है, इसलिए हिन्दी-भक्तों को इससे बड़ी चोट लगना स्वाभाविक ही है । यदि सुन्दरलालजी का कहना गलत है तो उसे जोर के साथ गलत कहा जाय, उसका खंडन किया जाय—उसके लिए माकूल दलीलें दी जायँ । यह सब मुनासिब व ज़रूरी है । लेकिन अगर सुन्दरलालजी अपना एक खयाल ज़ाहिर करते हैं वह हमें अप्रिय लगता है या उससे हमें नुकसान पहुँचने का अन्देशा है तो इसके लिए उन्हें गालियाँ देना किसी तरह मुनासिब नहीं है जैसा कि कुछ पत्रों ने उन्हें ढोंगी, दुरात्मा कहा है व उनके 'पाखण्ड और दूषित कर्मों' की ओर संकेत किया है । गालियाँ देने से हमारे पक्ष की कमज़ोरी ही नहीं, हमारी असभ्यता व जहालत भी दिखायी देती है । क्यों हममें इतना साहस, धैर्य्य व सहिष्णुता न होनी चाहिए कि हम अपने बरखिलाफ़ कटु-से-कटु बात को भी शान्ति के साथ सुन सकें, विचार कर सकें, व जवाब दे सकें ? अगर सुन्दरलालजी एक बात को सच समझते हैं और उस सच को कहना देश के लिए फ़ायदेमन्द मानते हैं तो अपने देशवासियों से वे वैसा क्यों न कहें और देश उनकी बात पर विचार और छानबीन क्यों न करें ? क्या वे ज़बरदस्ती अपनी बात हमारे

दिमाग़ में ठूँस रहे हैं! जबतक शान्तिपूर्वक सुन्दरलालजी अपने मत का प्रचार कर रहे हैं तबतक उन्हें ऐसा करने का पूरा हक़ है। गालियाँ देकर उन्हें उससे हटाया नहीं जा सकता। हमारी प्रिय व मान्य बातों पर हमला होनें से चोट पहुँचना व प्रतिकार का भाव पैदा होना सजीवता का लक्षण है; परन्तु गालीप्रदान को उस प्रतिकार का स्वरूप मिलना हमारे दिमाग़ का दिवालियापन व हमारी सभ्यता का छोटापन ही दिखाता है।

फिर इस तरह किसी के बारे में ऐसा इशारा करना जिससे लोगों के दिलों में उसके लिए तरह-तरह की शंकाएँ पैदा हों और भी बुरा तरीका है। इससे बढ़कर अन्याय किसी के साथ नहीं हो सकता। हमें सुन्दरलालजी के कथन पर विचार करना है न कि उनकी शख्सियत पर हमला।

इतना लिख चुकने के बाद हमने सुन्दरलालजी का एक लेख ‘हिन्दी, उर्दू या हिन्दुस्तानी’ ‘प्रताप’ (१३ जुलाई) में पढ़ा, जिसमें उन्होंने अपनी स्थिति व विचारों की सफ़ाई पेश की है। उसमें उन्होंने इस सवाल के ऐतिहासिक पहलू पर बहुत रोशनी डाली है। वे कहते हैं–‘जहाँ तक हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू नामों का संबंध है, इस देश की उस ज़बान के लिए, जिसे बाद में खड़ी बोली भी कहा जानें लगा, ‘हिन्दी’ नाम‘हिन्दुस्तानी’ नाम से तीन सौ बरस ज्यादा पुराना और उर्दू नाम से कम-से-कम चार सौ बरस ज्यादह पुराना है। नाम तीनों मुसलमानों के आने के बाद के और मुसलमानों के ही रक्खे हुए हैं।’ फिर उन्होंने कई प्रमाण देकर यह बताया है कि कबतक हिन्दी-उर्दू दो जबानें नहीं थीं, व कब दो धाराओं में फटीं। आपनें यह भी दिखाया है कि किस तरह कलकत्ता के अंग्रेज़ प्रोफेसरों ने संस्कृत-प्रधान भाषा को बढ़ावा दिया व अंग्रेज़ पादरियों ने उसे अपनाया। मगर यह ऐतिहासिक पहलू मेरी निगाह में एक हद के आगे महत्त्व नहीं रखता। इसमें मतभेद की भी गुंजाइश हो सकती है। अतः इसके अमली पहलू पर ही हमें ज्यादा ध्यान देना चाहिए। इस सिलसिले में उनके नीचे लिखे उद्धरण ग़ौर करने लायक हैं—

‘मुझे इस (हिन्दी व उर्दू की) अलहदगी में हिन्दुस्तान के टुकड़े होने की खतरनाक जड़ें दिखायी देती हैं। न ज़बान से बढ़कर दुनिया में मिलानेवाली कोई चीज़ है, और न ज़बान की अलहदगी से बढ़कर फूट डालनेवाली। मैं चाहता हूँ कि मेरा देश इस भयंकर आपत्ति से बचे। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि हम फिर से हिन्दी और उर्दू दोनों में एक ही मातृभाषा के दर्शन करने और उन दोनों को फिर से मिलाकर एक करने की कोशिश करें। हम एक थे। हमने बहुत दर्जे तक अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मारी। हम दो हो गये। हमें फिर एक होना है। मेरी राय में इसीमें हिन्दू-मुसलमान दोनों की और इस देश की असली भलाई है।”

फिर वे राष्ट्रभाषा का स्वरूप कैसा हो इसके बारे में लिखते हैं—

“मैं न फारसी-अरबीभरी उर्दू को इस देश की कौमी जबान बनाना चाहता हूँ, और न संस्कृत-भरी हिन्दी को। मेरी राय साफ है। हमें सबसे पहले अपनी इस घातक संकीर्णता को दूर करना होगा कि किसी लेख में “दृष्टि” की जगह “नज़र” आया और हमारी भौं चढ़ी। इससे कोई लाभ नहीं हो सकता। इसमें बरबादी की सूरत है। असली हल यह है कि उर्दूवालों और हिन्दीवालों, दोनों को साथ बैठकर उस हिन्दुस्तानी ज़बान को तैयार करना है जो सचमुच सब भारतवासियों की कौमी ज़बान बन सके। बिहार में राजेन्द्रबाबू और मौलवी अब्दुलहक की हिन्दी-उर्दू की जंग को ख़त्म कर देने की मिली-जुली कोशिशों को नष्ट-भ्रष्ट कर देनें से कुछ हासिल नहीं हो सकता। ज़रूरत इस तरह की कोशिशों को क़ामयाब बनाने की है।

मुझे इस बात का भी पूरा विश्वास है कि जो ज़बान इस तरह मिलकर तैयार होगी वह अन्त में अलग-अलग हिन्दी और उर्दू की निसबत

कहीं ज्यादह प्यारी, कहीं ज्यादह सरल, और आम-फ़हम और शब्दों, मुहावरों और आगे की सम्भावनाओं की दृष्टि से कहीं ज्यादह मालामाल होगी। बात केवल दिल की है। जरूरत इस बात की है कि हम एक दूसरे को प्रेम से समझने और एक दूसरे के पास आने की कोशिश करें। इस तरह की कोशिशें हमें अपने देश की आम जनता के भी ज्याह नजदीक ले आवेंगी। संस्कृत-भरी हिन्दी या फारसी-अरबीभरी उर्दू ने हमें जनता की ज़िन्दगी से कोसों दूर फेंक दिया। इसके अलावा मिली-जुली सरल आमफहम हिन्दुस्तानी का रास्ता ही पश्चिमोत्तर सरहद से बंगाल तक और सिन्ध से मद्रास तक प्रान्तों-प्रान्तों और सारे हिन्दुस्तान को एक करने का रास्ता है, दूसरा रास्ता फूट और टुकड़े-टुकड़े हो जाने का है।"

बात यह है कि हमें सबसे पहले अपनी गुलामी की बेड़ियों को तोड़ना जरूरी है व बिना राष्ट्रीयता व राष्ट्रीय एकता के यह असम्भव है। इस एकता में जो भाषा व जो लिपि सहायक हो उसे हम राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि मानें। इसके लिए बड़े से बड़ा त्याग करने की हमारी तैयारी होनी चाहिए। ३५ करोड़ हिन्दुस्तानियों की भलाई, बहबूदी व सुविधा की दृष्टि से यह सवाल हल होना चाहिए। प्रांतीय, जातीय या दूसरी संकुचितता इसमें बाधक न होनी चाहिए।

इस दृष्टि व भावना से हमें अपनी भाषा, लिपि, रूढ़ियों, प्रणालियों आदि पर विचार करके निर्णय करना चाहिए और ऐसा निर्णय हमें जहाँ ले जाय वहाँ तक खुशी से जाने का उत्साह, साहस व दृढ़ता हममें होनी चाहिए। मुझे यह स्पष्ट भविष्य दिखता है कि यदि हम संकुचित अभिमान से भाषा व लिपि के प्रश्न को देखेंगे तो हम न केवल अपने इन बंधनों को और जकड़नेवाले साबित होंगे बल्कि अपनी प्यारी हिन्दी भाषा व नागरी-लिपि को भी हानि पहुँचानेवाले साबित होंगे।

ह० उ०

समालोचनार्थ प्राप्त

राधा : ले०—श्री उदयशंकर भट्ट; प्रकाशक—हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर, बम्बई; मूल्य ॥=)

अवध के ग़दर का इतिहास : ले०—श्री देवीदत्त शुक्ल; प्रकाशक—गंगा पुस्तकमाला लखनऊ; मूल्य १॥)

राष्ट्रपति जवाहर : ले०—श्री गौरीशंकर मिश्र; प्रकाशक—राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, पटना; मूल्य ॥)

हिन्दुस्तानी-आन्दोलन की समीक्षा : संपादक—श्री कमलनारायण झा 'कमलेश'; दरभंगा साहित्य सम्मेलन, दरभंगा; मूल्य १)

मेघकुमार : ले०—पं० 'छोटेलाल यति; प्रकाशक—जीवन-कार्यालय अजमेर; मूल्य ।-)

दीनबन्धु को श्रद्धाञ्जलि : संग्रहकर्त्ता—श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी; प्रकाशक—पुस्तक-भण्डार लहरियासराय; मूल्य १)

पत्र-पत्रिकायें

दुनिया : सम्पादक—श्री भारतीय; शारदा प्रेस, नया कटरा प्रयाग; वार्षिक मूल्य २)

हिन्दू गृहस्थ : सम्पादक—श्री चुन्नीलाल गर्ग बी० ए०, श्री देवकीनन्दन बन्सल; मधुर मन्दिर हाथरस; वार्षिक मूल्य ३)

शिक्षा-सुधा : सम्पादक—'सुमन' शेखूपुरी, 'साहित्यरत्न'; मण्डी धनौरा (मुरादाबाद); वार्षिक मूल्य २)

हिन्दी ग्रामणी : सम्पादक—श्री ना. हुद्दार, सर्कल ४, नागपुर शहर; वा० मू० १)

नालंदा : (परिचय) नालंदा-विद्यापीठ,

कसौटी पर :

प्रलय-वीणा : लेखक—सुधींद्र, एम० ए०; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल : सोल-एजेंसी-विभाग, नयी दिल्ली; पृ० १३४+१६; मूल्य १)

सुधीन्द्रजी राष्ट्रीय भावना के कवि हैं। युग का प्रतिनिधित्व उनकी कृतियों की विशेषता है। बालकृष्ण शर्मा और माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय प्रवृत्ति प्रधान काव्य-प्रवृत्ति नहीं है, यद्यपि वे दोनों प्रधानतः राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं। तोरनदेवी 'लली' में राष्ट्रीयता की ही एकरसात्मकता है। सुधीन्द्रजी भी प्रधानतः देश के और युग के कवि हैं। युग के उत्पीड़न उनमें हैं और उनके व्यक्तीकरण में वे अनुपम रूप से सफल हुए हैं। सुधीन्द्रजी युग के प्रभाव से अभिव्यंजन में बचे रहे। उनकी कविताओं को छायावादी नहीं कहा ज़ा सकता। रहस्यवाद से भी वे अधिकतर दूर ही हैं। उन्नतिशील ठोस जगत के घात-प्रतिघात के पुष्ट रूप देनें में रहस्यवाद के झमेले की ज़रूरत भी नहीं पड़ती।

उनकी कोई भी कविता लोकमंगल के भीतर देशमंगल को छोड़कर नहीं चलती। पंक्तियों में इतर-लोक की तंद्रा अतीन्द्रिय जगत का आलस्य और सूक्ष्म विश्व की अग्राहिता नहीं है। उनका इस रूप तक सुधीन्द्र साथ नहीं देते। उनकी फिलासफ़ी उन्हें यही सिखाती है। उनकी प्रेम-सम्बन्धी कविताओं में भी तूफ़ानी बर्बरता नहीं है। उनमें लोकरंजन की सहज हिचक है :—

तन-मन की इन रँगरलियों में,
चिरजीवन का ध्येय न भूलो !
जग-जीवन की इन अलियों में,
नित्य चिरंतन प्रेय न भूलो !!
अपने पावन प्राण-कलश को,
मन-मन के मधु अमृत से भर
अविनश्वर के पूजार्चन में,
धर दो उसको प्रेम पुरस्सर
अजर-अमर के आराधक तुम,
जड़ प्रतिमा के चरण न छू लो !
गायक, गीत-स्वराराधन में,
आदि-अनश्वर गेय न भूलो !!
अपने मृण्मय अधर छुओ मत,
करो न यह पीयूष हलाहल
झरनें दो निर्झर वह अविरल,
बननें दो प्राणों को निर्मल
कोमल स्वप्न-हिंडोलों पर हे,
अमर सत्य के स्तम्भ, न झूलो !
अपने प्राण-समर्पण में तुम,
जीवन-धन का देय न भूलो !!
कज्जलमयी प्रणय की लौ से,
सके विलोचन - दीप नहीं जग
अकलुष-अमल प्रेम-ज्वाला से,
होनें दो अन्तरतम जगमग
स्वर्ण-वर्ण भंगुर काया में,
पा प्रियतम की झलक न फूलो !
प्रेयस् के इस आकर्षण में,
सत शिव सुन्दर श्रेय न भूलो !!

कवि की दार्शनिक चिंतना देखिए:—

विभ्रमों का है पारावार,
मोह-माया का है आगार
रुदन-क्रन्दन का चिर आवास,
सदा संघर्षणमय संसार
यहाँ पर छिपी तृप्ति में प्यास,
प्यास में तृप्ति अपार
जीवन क्या है ? द्वन्द्वों का अद्भुत सम्मेलन
तन क्या है ? बस आधि-व्याधि के संचित अणु कण
सुख क्या है ? परितोष-आवरण से आवृत संताप
दुःख क्या है ? नैराश्य-चक्र से जग का नर्तन
यहाँ थिरकता है क्रन्दन से मिश्रित सुख का हास
असफलता में यहाँ सफलता का मिलता आभास
यहाँ है यह अद्भुत व्यापार !
पुण्य करते पर होता पाप,
माँगते वर हम मिलता शाप
बनाते हैं पर मिटते काम,
चाहते सुख मिलता है ताप

और फिर मिल जाता साफल्य,
यहाँ पर अपने आप
करते रहते प्राण यहाँ जीवन का अभिनय
क्षण-प्रतिक्षण होते जाते फिर वे मृति में लय
उदय और क्षय, पुनः उदय-क्षय, यही उदय-क्षय चक्र
चलता जाता अबाध अनवच्छिन्न वेगमय
जन्म-मरण की आँखमिचौनी में जग रत निर्बाध
अनियम जग के नियम न इसमें अदृष्ट का अपराध
व्यर्थ है व्यर्थ यहाँ परिताप !

सुधीन्द्रजी के चित्र साफ़ और भाषा सुथरी है। उनमें प्रवाहप्रेषणीयता है। क्रान्ति के तूफान में बे-लगाम उफान कहीं नहीं है। भावना को लपेटे रहती है उनकी कल्पना। दोनों के मेल में कला पकड़ में आ गयी है। प्रसाद-गुण की प्रधानता और वाच्यार्थ की खड़ी झड़ी कहीं-कहीं मन मस्त कर देती है। करुणा के गाने की अनुभूति पूर्ण है।

पुस्तक की भूमिका तरुण राष्ट्रीय कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी ने लिखी है जो काफ़ी सुलझी हुई है। इससे पुस्तक के पढ़ने में बड़ी सहायता मिलती है।

सुनीता : ले०—श्री जैनेन्द्रकुमार; प्रकाशक-हिन्दी ग्रंथरत्नाकर, बम्बई; मूल्य ॥=)

प्रस्तुत पुस्तक पूरे प्रकार से उपन्यास नहीं कही जा सकती, क्योंकि उपन्यास की समस्तता और अनेकरूपता इसमें नहीं है। छोटी आख्यायिका भी नहीं है, क्योंकि प्रमुख संवेदनायें भी कई हैं, और गति में तीव्रता और एकाग्रता नहीं है। फिर भी यह कथा-जगत की साहित्यिक वस्तु है जिसका साम्य उपन्यास से ही अधिक ठहरता है।

'सुनीता' में घटनायें केवल मुट्ठीभर हैं। वे भी कथा को बढ़ाने के लिए नहीं है, वरन पात्रों को विभिन्न परिस्थिति में डालकर उनका रूप सामने लाने के लिए। पात्रों की संख्या भी इनी-गिनी है। सुनीता, उसका पति और हरिप्रसन्न; सत्या का बहुत कम उपयोग है, चंद्रकांत और भी कम आया है। पुस्तक में सुनीता को खोला गया है, रमणी के रूप में, नारी के रूप में और पत्नी के रूप में। हरिप्रसन्न को सामने रखा गया है क्रान्तिकारियों के सरदार के रूप में, अपने से सर्वथा उदासीन और देश के लिए मरने को सर्वथा उद्यत। श्रीकांत उपेक्षणीय-सा है, वह सच्चा मित्र है—बड़ा नज़दीकी मित्र है, प्रेमी पति है। गहरा नहीं है। पत्नी सुनीता के उपयोग में ही अधिक आता है, हरिप्रसन्न के लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत, परन्तु बिना उलझाववाला, बिना जटिलता का बना-बनाया रूप। यह पुस्तक मनोभाव-प्रधान है, लेखक का उद्देश्य है पात्रों के मन में घुस जाना और उन्हें खोलकर रख देना, मन की बातें समझाना—यही सब कुछ है। शरीर और वातावरण के मेल में मन की गति को परखना, देखना और दिखाना लेखक का काम है। इस व्यवस्था को पूरा करने के लिए कहीं-कहीं लेखक सामने आकर खड़ा हो जाता है। पात्र, कथा सभी पीछे पड़ जाते हैं, परन्तु केवल समझाने के लिए, अपने को अधिक स्पष्ट करने के लिए, उपन्यास-कला जहाँ हल्की भी हो जाती है वहाँ मन को संतोष मिल जाता है।

श्रीकांत का अपनी पत्नी को हफ्ते भर के लिए अकेले घर छोड़ जाना, वहाँ जाकर फिर एक अजीब ढंग का खेल खेलना, जैसे सरल श्रीकांत पत्नी से कुछ चाहता है दूसरे के लिए, सुनीता का इतना ढीठ हो जाना कि अकेले दूसरे के साथ रात भर के लिए चल देना; बीच-बीच की चपट-झपट; ये समस्त घटनायें बड़ी सुकुमार हैं। और यही इस उपन्यास के प्राण हैं। हरिप्रसन्न के समक्ष देशभक्ति की भारी चिंता है। उसे नवयुवकों की व्यवस्था की फ़िक्र और भावनाओं से विरक्ति जैसी है। अतएव नास्तिक होकर भी समाज में विवाह इत्यादि बंधनों को योंही समझता हुआ भी वह सुनीता को भाभी ही बनाये है। कमज़ोरी की भावनायें उठकर लक्षित कम हो पाती हैं। केवल एक समय वह श्रीकांत की सारी भलाई को भूलकर भाभी के बीच से भाई को हटा देना चाहता है। यह उसका कलंक

बन जाता है। फिर भी वह सँभला रहता है, या यों कहिए कि सँभाला रहता है। लेखक के आदर्श की दौलत यथार्थता की दौलत नही है। दिगंबरा सुनीता भी केवल लेखक की कल्पना है। लेखक चढ़ाव के ढीलेपन और उतार की फिसलन को ठीक-ठीक तय नहीं कर सका, और मानों हवा में उछालकर अपनी सुनीता को ऊपर पहुँचा देता है। चाहे पथ का प्रमाद अथवा जीवन-दशा का उतावलापन, चाहे पुरुष का अनुनय किसी प्रमदा को वहाँ तक पहुँचा देंगे, यह जैनेन्द्रजी से पूँछना है। डराकर बचना और बस में लाना-इसीलिए बिल्लू आँखें घूरकर घुर्राता है। यदि यह है तो ठीक भी हो सकता है। हरिप्रसन्न ठीक बचा-सम्हला—यह ठीक भी हो तो भी जिस समय समस्त रिक्रूट गिरफ्तार हो रहे हों, भारी खतरा सामने हो, रिवाल्वर चला रहे हों, जान देने की आपत्ति हो, उस समय हरिप्रसन्न प्रणय के लिए सोचे और उसकी संगति यों बैठायी जाय कि वह दो दिन में मरने जा रहा है—बहुत स्वाभाविक नहीं। अकेले घर में वह जिस कमज़ोरी को झेल गया उसे दूसरे बड़े उद्दीप्त भाव के उत्थित हो जाने पर भी प्रश्रय मिले, यहाँ कलाकार ने धोखा खाया है।

पुस्तक अपने ढंग की अच्छी है। शैली में निर्जीपन है। शब्दों में बोलचाल की भाषा की अच्छी तालिका है। 'अँधेरा' शब्द तो न जाने कितनी बार आया है। यह फब जाता है।

सद्गुरुशरण अवस्थी (एम० ए०)

कुलीनता **(नाटक) : ले०—सेठ गोविंददास; प्रकाशक—हिन्दी ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय; हीराबाग, बम्बई, मूल्य १)।**

प्रस्तुत पुस्तक एक ऐतिहासिक नाटक है। कथानक महाकोशल की एक प्राचीन ऐतिहासिक कथा के आधार पर है। लेकिन लेखक ने अपनी राष्ट्रीय और उदार भावना तथा कल्पना के बल पर उसे सामयिक और उपयोगी बना दिया है। नाटक की कथा संक्षेप में यह है कि महाकोशल के कलचुरिवंशी राजा विजयसिंह देव कुतुबुद्दीन के माण्डलिक बनने को तैयार हो जाते हैं, लेकिन उसके प्रधानमंत्री सुरभि पाठक विदेशियों की पराधीनता सहन नहीं करते और राज्य छोड़कर यदुराय नामक एक गोंडवीर के पास चले जाते हैं। यदुराय वीर, योग्य और साहसी व्यक्ति था। उसका कलचुरि-नरेश विजयसिंहदेव की कन्या से प्रेम था, परन्तु उसने उसे अकुलीन कहकर राज्य से निकाल दिया। सुरभि पाठक के यदुराय की शरण जाने पर विजयसिंह देव ने हमला कर दिया, लेकिन परास्त हो जाता है। अन्त में वह अपनी गलती समझ जाता है और यदुराय से अपनी पुत्री का विवाह कर देता है, तबसे कलचुरि की जगह गोडवंश का राज्य शुरू होजाता है।

नाटक का मुख्य उद्देश्य अकुलीन-कुलीन की दूषित हिन्दू-भावना पर कुठाराघात करना है और इसमें सन्देह नहीं कि लेखक को सफलता भी प्राप्त हुई है। यदुराय सब तरह से योग्य होते हुए भी इसीलिए ठुकराया जाता है कि वह क्षत्रिय कुलोत्पन्न नहीं है। वह आत्माभिमानी इससे खिन्न होता है और उसका श्रेय चरम सीमा पर पहुँच जाता है, जब वह अपनी प्रेयसी को भी 'कुलीन' देखकर धिक्कार देता है। यह स्वाभाविक ही है। वस्तुतः दलित इतने अत्याचारों के होते हुए भी क्यों हिन्दू जाति के प्रति विद्रोही नहीं हो गये, यही आश्चर्य है! अकुलीन होनें के कारण ही यदुराय अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए लड़ नहीं सका। परन्तु नाटक के अन्त तक लेखक ने यदुराय का विद्रोह का भाव नहीं रखा और दोनों घराने मिल जाते हैं।

विंध्यबाला के रूप में लेखक एक ऐसी हिन्दू नारी का चित्र खींचता है, जो पति-भक्त होते हुए भी पति की अन्धानुगामिनी नहीं है और उसे सन्मार्ग दिखाती जाती है। लेकिन उसके पति के घर पर आते ही पत्नी का एकदम तीव्र विरोध कर बैठना कुछ अस्वाभाविक-सा लगता है। वहाँ शांति और प्रेम का अभाव है, केवल दृढ़ता और कर्तव्य-बुद्धि मात्र है। रेवासुन्दरी, भोली, प्रेममय परन्तु सच्चे दिल की कन्या है। चण्ड के रूप में

खल-नायक का भी चित्रण है, लेकिन इसमें कोई विशेष नवीनता नहीं है। यह विजयसिंह देव को पतन के मार्ग पर ले जाता है, परन्तु अन्त में स्वयं भी मारा जाता है।

नाटक प्राचीन काल की कथा लेकर लिखा गया है, इसलिए उस समय के रहन-सहन, रीति-रिवाज़ तथा भाषा आदि का प्रयोग पाठक के सामने वस्तुतः प्राचीन काल का एक चित्र-सा खींच देता है।

कृष्ण

स्वस्तिका और **कलरव**—ले० श्री निरंकार देव सेवक; प्रकाशक—हिंदी-प्रचारिणी सभा बरेली कॉलिज, बरेली, क्रमशः पृ० सं० १२०, मूल्य ।।=); पृ० सं० १०४ छोटा साइज़ मूल्य ।=)।

कवि के दोनों कविता-संग्रहों में कोमल भावनायें और मधुर प्रवाह है, शैली और भाव दोनों ही के दृष्टिकोण से कवि 'निशा-निमंत्रण' के पूर्व-कालीन 'बच्चन' से बहुत अधिक प्रभावित है—

वह कली जो कल खिली थी
सूखकर झरने लगी लो,
वह लता जो कल हरी थी
शुष्क हो गिरने लगी लो,
वह विहंगम-बालिका जो
फिर रही थी कूकती कल,
गिर धरा पर मूक अन्तिम
आह-सी भरने लगी लो,
हँस रही थीं जो दिशायें
कल वही हैं आज रोतीं,
कौन-सा मधुमास लाकर
इस बयाबाँ को बसाऊँ?
आज मैं सखि, सत्य अपने
स्वप्न को कैसे बनाऊँ?

—उलझन

तृष्णा-तट पर मादकता का
सागर आकर लहराता है,
मिलकर हम-तुम कर पायेंगे
पर कितना-सा मधु-पान, प्रिये!
अपने प्रेमालापों का भी
हो जायेगा अवसान, प्रिये!

—अवसान

संसार की कटुता और कुरूपता के प्रति विद्रोह की भावना कवि में नहीं है और इस लिए वह पलायन-प्रवृति का सहारा लेता है—

कुटिलताओं से है परिपूर्ण
यहाँ मानव-जीवन-व्यापार,
नहीं मेरे रहने के योग्य
कहीं पृथ्वी पग भी दो चार'

× × ×

इसलिए—चलूँगा विहग! तुम्हारे साथ
त्याग मैं यह नश्वर संसार,
बनाऊँगा निज पर्ण-कुटीर
कहीं उस ओर क्षितिज के पार।

पर 'क्षितिज-पार' का मोह छोड़कर आज के कवि को दो-चार पग पृथ्वी ही को रहने योग्य बनाने के प्रयत्न में योग देना है।

'कलरव' के "ग्राम्य-जीवन" "बरसात" और "पावस" में ताज़गी और मौलिकता दोनों हैं। कवि में काव्य-प्रतिभा है और हमें आशा है कि भविष्य में उसकी वाणी में अधिक बल होगा और उसका दृष्टिकोण अधिक स्वस्थ होगा।

ब्रजमोहन गुप्त (एम० ए०)

प्रजा-सेवक : (साप्ताहिक)—प्रजा-सेवक कार्यालय, जोधपुर; वा० मू० ४); एक अंक ।-)

यह जोधपुर राज्य की 'लोक-परिषद्' का पत्र है। देशी रियासतों के इतिहास में यह शायद पहला मौका है कि एक उच्च कोटि के राष्ट्रीय साप्ताहिक का प्रकाशन पिछले ९-१० मास से प्रारम्भ हुआ है। इसके लिए हम जोधपुर राज्य को बधाई देते हैं। पत्र के संपादक श्री अचलेश्वर प्रसाद शर्म्मा के अनुभव का लाभ इसे मिल रहा है अतः यह पाठकों को सब प्रकार की सामग्री देकर तृप्त करता है। अखिल-राजस्थानीय पत्रों में तो उसका प्रमुख स्थान है ही, हमारी कामना है कि वह अखिल-भारतीय महत्त्व प्राप्त करे।

सु०

प्रगति की ओरः

[इस स्तम्भ में जीवन और राष्ट्र-निर्माणकारी प्रवृत्तियों तथा संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय व विवरण दिया जायगा । जो प्रवृत्तियाँ व संस्थाएँ देश व समाज में 'समभाव' बढ़ाने की दृष्टि से काम कर रही हैं उन्हीं के लिए इस स्तम्भ में स्थान रहेगा । 'समभाव' ही हमारे नज़दीक उनकी प्रगतिशीलता की कसौटी होगी । —संपादक

महिला-मण्डल, उदयपुर (राजपूताना)

राजपूताने में हालाँकि अब जगह-जगह अक्षर-ज्ञान या किताबी शिक्षा देनेवाली कन्या-पाठशालायें खुल गयी हैं, लेकिन इस दिशा में वनस्थली (जयपुर-राज्य) के राजस्थान-बालिका-विद्यालय के बाद बालिका-विद्यालय व महिला-मंडल, उदयपुर के प्रयत्न सराहनीय हैं । उसका अप्रैल, मई व जून का कार्य-विवरण यों है—

(१) स्थानीय कन्या-पाठशालाओं की २१० विद्यार्थिनियों और अध्यापिकाओं ने स्वयंसेविकायें बनकर इसी गर्मी की छुट्टी में १०५० अपढ़ बहिनों को साक्षर बनाया ।

(२) अलग-अलग मोहल्लों में महिलाओं के शिक्षण के १० स्थायी और २ अस्थायी मदरसे चल रहे हैं ।

(३) महिला-पुस्तकालय की ८०० पुस्तकों और वाचनालय के ४५ सुप्रसिद्ध पत्रों से ५४०० स्त्री-पुरुषों ने लाभ उठाया ।

(४) तीन मोहल्लों में मैजिक लालटेन से प्रचार किया ।

(५) महिला-मंडल के पाठशालाओं की अध्यापिकाओं ने अपनी पाठशाला की ओर से अपने-अपने मोहल्ले की महिलाओं को एकत्रित कर मोहल्ला-दिवस मनाये ।

(६) चार बृहद् महिला-सम्मेलन किये ।

(७) वर्णमाला की ३०० पुस्तकें मुफ्त में बाँटी गयीं ।

(८) सिलाई, कटाई, कताई और बुनाई इत्यादि उद्योग सिखाने के लिए महिला-मंडल कार्यालय में एक ट्रेनिंग क्लास शुरू की है ।

(९) विधवा-सहायता-विभाग से ग़रीब विधवाओं को कताई का कार्य देकर सहायता की ।

सेवासंघ, डूंगरपुर, (राजपूताना)

श्री भोगीलाल पण्ड्या, अपने चुने हुए साथियों के साथ, कोई ३ साल से, पिछड़ी हुई व बड़ी ग़रीब भील-जाति की सेवा-सुधार का काम कर रहे हैं । श्रीमान् डूंगरपुर-नरेश की भी सुदृष्टि उनके काम पर है । दूसरे वर्ष में नीचेलिखे काम संघ के द्वारा हुए—

(१) ९ केन्द्रों में ९ लड़कों की, ५ कन्याओं की व २५ रात्रि पाठशालायें चलीं जिनमें १६०९ तक छात्र और २३३ तक छात्राओं की संख्या रही । एक शिक्षण-शिविर खोला गया । ३६० छात्र-छात्राओं को पाठ्य-सामग्री मुफ्त दी गयी ।

(२) १४ वाचनालयों के द्वारा ६५७९ व्यक्तियों ने लाभ उठाया ।

(३) ३३३ परिवारों को खेती के लिए बिनौले मुफ्त दिये ।

(४) ९७ व्यक्तियों से तम्बाकू व कइयों से अफ़ीम छुड़वायी गयी ।

(५) २९ ओषधि-वितरण-केन्द्र खोले; जिनमें ३००२८ रोगियों को दवा दी गयी ।

(६) २६९ नये कुएँ खुदाकर, २६८ पुराने कुओं को गहरे कराकर, १६०-)॥ की बीज-बैल सहायता ग़रीब किसानों को देकर, कताई पिंजाई, लुढाई आदि के काम द्वारा २५८=)॥ की अन्न-सहायता देकर, अनाथ-रक्षा में १३२) लगाकर अकाल-सेवा का काम किया ।

(७) ६७ खाद के खड्डे खुदवाकर, खाद की विधि बताकर, नये धान्यों की खेती कर.के कृषि-सुधार का उद्योग किया ।

(८) कन्या-विक्रय, स्त्री-अपहरण, मृत्यु-भोज आदि कुरीतियों को मिटाने का प्रयत्न किया ।

(९) हवादार मकान व पशुओं के लिए

अलग मकान बनाने तथा नियमित दातुन, स्नान करने की आदत डालने की कोशिश हुई ।

(१०) एक दिन की व एक रात की पाठशाला द्वारा ७९ हरिजन बच्चों ने शिक्षा पायी । बागड़, परतापपुर, भीलूड़ा, बांसवाड़ा में क्रमशः ४७, ८७, ७०, तथा ५६ बच्चों ने तालीम पायी ।

संघ में छोटे-बड़े ३४ कार्यकर्त्ता रहे । कुल ६५०५-)॥ २ वर्ष में खर्च हुए ।

संघ ने त्रैवार्षिक योजना बनायी है जिसके अनुसार राज्य की पाँच प्रतिशत जन-संख्या को साक्षर बनाने, ५०० स्त्री-पुरुषों को कातना सिखाने, सर्वत्र खादी का प्रचार करने, संघ के क्षेत्रों में दारू व दूसरी कुरीतियाँ दूर करने, ग्राम-पंचायत, सहयोग-समितियाँ, नवयुवक-मण्डल, वाचनालय आदि स्थापित करने का प्रयत्न किया जायगा ।

सैर-सपाटा

पिछले महीने 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' बखेड़ा पत्र-पत्रिकाओं में बहुत देखने में आया, यहाँ तक कि कई पत्र-सम्पादकों ने साधारण शिष्टाचार तक की अवहेलना कर दी । श्री सुन्दरलालजी का बम्बई का भाषण तथा पूर्वभारतीय राष्ट्र-भाषा-परिषद् में हुए राजेन्द्रबाबू तथा डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के भाषण ही चर्चा के विषय रहे । सुन्दरलालजी पर हुई बौछारों का अत्यन्त सौजन्यपूर्ण तर्कसंगत उत्तर उन्होंने **'प्रताप'** (१३ जुलाई) में दिया है—जिसका इस अंक में उल्लेख है । **'जी० सा०'** के प्रस्तुत अंक में श्री जैनेन्द्र का पत्र 'राष्ट्रभाषा' कैसे बननी चाहिए, यह बतलाता है । उनके सुझाव सभी बुद्धिवादियों के अमल में लाने लायक हैं । श्रीयुत काका कालेलकर का **'सबकी बोली'** वाला मन्तव्य भी पठनीय है ।

जी० सा० द्वारा जो साहित्य में श्लीलता-अश्लीलता का प्रश्न उठाया गया था, उसे जाने किधर घसीट लिया गया और और मूल श्लीलता-अश्लीलता की चर्चा होने लगी और विषय उलझ-सा गया, बड़े-बड़े लोगों के मतभेद उस विषय में हैं । इस अंक में राय कृष्णदासजी की पंक्तियाँ बड़ी नपी-तुली हैं । **'हंस'** में प्रकाशित श्री कामेश्वर शर्म्मा के **"प्रवृत्ति और निवृत्ति"** के विचार इस विषय में समन्वयकारी हैं और समझ में आते हैं । इस सब हलचल की प्रतिक्रिया स्वास्थ्यकर ही होगी, ऐसा विश्वास है ।

मई-जून मास की **'आरती'** में श्री प्रभाकर माचवे की उनके चिन्तनशील लेख **'एक सांस्कृतिक समस्या'** की चिन्ता सद्भावनापूर्ण है । वस्तुतः विचार-भेद होने पर विकार और विचार का समन्वय होना ही श्रेयस्कर है । **'गुप्तजी : राष्ट्रीय कवि या जातीय ?'** लेख कुछ भाता नहीं, पर वात्स्यायनजी का **'नागरिक स्वतन्त्रता'** लेख पाठक को पकड़ता है । उसे पढ़कर हमें जानना चाहिए कि हम नागरिक कर्त्तव्य की कितनी अवहेलना करते हैं ! श्री हज़ारीप्रसादजी द्विवेदी की गद्य के ढंग पर लिखी या छपी मधुर लयमय अतुकांत कविता बड़ी दिलचस्प है—पर साथ ही वह अपनी एक पीड़ा——एक प्रश्न——एक समस्या पेश करती है—**'बोलो, काव्य के मर्मज्ञ !'**

जुलाई की **'कमला'** में श्री अलखमुरारी हजेला ने **'सहशिक्षा'** के समर्थन में अच्छी युक्तियाँ दी हैं । **'हिन्दी-साहित्य में नारी-भावना'** लेख और अधिक अध्ययन के बाद लिखा गया होता तो अच्छा होता ।

'विश्वमित्र' में **'वर्ण-व्यवस्था और उसके समर्थक'** लेख के विचार प्रगतिशील हैं, इसमें किसे सन्देह हो सकता है ! प्रो० शंकरसहाय सक्सेना के **'महात्मा गांधी के आर्थिक विचार'** भी पठनीय हैं ।

देश में **"घी-दूध की समस्या"** बड़ी विकट होती जा रही है । श्री प्रो० प्रेमचन्द मलहोत्रा, एम० ए० ने **'माधुरी'** में इसी नाम के लेख में उसे सुलझाने के कई काम के उपाय बताये हैं ।

क्या और कैसे ?:

ग़लत दिशा में

सर्वश्री कन्हैयालालजी मुनशी व इन्द्रजी के कांग्रेस से इस्तीफों का सवाल ग़ौर करने लायक है। हिन्दुस्तान के भीतरी बखेड़ों-दंगों का मुक़ाबला कैसे किया जाय, शरीर या शस्त्र-बल से अथवा आत्म-बल से, इस विषय पर मतभेद होने से ये इस्तीफे हुए हैं । मुनशीजी के सामने शायद विश्वास का प्रश्न उतना नहीं है जितना आचार का है। उनकी बुद्धि तो आत्म-बल या अहिंसा को ही बेहतर मानती है, लेकिन इस समय वह कारगर न होगी, या वे उसका प्रयोग कारगर तौर पर नहीं कर सकेंगे, ऐसा उन्हें लगता है। और भी बहुतों की ऐसी स्थिति होगी व हो सकती है। लेकिन आदर्श व सिद्धान्त के सवाल को एक ओर रख दें तब भी. व्यावहारिक दृष्टि से सोचने पर भी, क्या सचमुच शरीर-बल या शस्त्र-बल को इस समय संगठित किया भी जा सकता है और उसके फल-स्वरूप राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय एकता बढ़ायी या मजबूत की भी जा सकेगी ? 'अखंड हिन्दुस्तान' मोर्चे की आवाज जो मुनशीजी बुलन्द करना चाहते हैं उसमें मुसलमान बहुत कम शामिल होंगे। इसलिए नहीं कि सबको 'पाकिस्तान' ही पसन्द है, बल्कि इसलिए कि अपनी जातिवालों की बुराइयों का सामना करने की हिम्मत व जुरत रखनेवाले मुसलमानों में लोग ही बहुत कम हैं। ऐसी हालत में वह ज्यादातर हिन्दुओं का ही संगठन हो रहेगा । सो भी मुसलमानों का मुकाबला करनेवाला अर्थात हिन्दू-मुस्लिम भिड़न्त का ही रूप उसे मिलेगा । इस भिड़न्त से राष्ट्रीय एकता या 'अखंड हिन्दुस्तान' कैसे निर्माण होगा ? यह समझना कठिन है। यदि 'अखंड हिन्दुस्तान' संगठन से हिन्दुओं और मुसलमानों के दिल की कटुता निकलकर उनमें सद्भाव व सहयोग की वृत्ति पैदा हो तब तो वह अच्छी ही है; मगर इसके लिए तो कांग्रेस का मंच ही सबसे अच्छा है; उसे छोड़ने की जरूरत ही मुनशीजी को न होनी चाहिए। उन्हें अभी यह लगता है कि शरीर-बल व शायद शस्त्र-बल के संगठन से वे पाकिस्तान व उसके पुछल्ले उपद्रवों की रोक-थाम कर सकते हैं। मुझे यह पूरा अन्देश है कि इससे मुसलमान गुण्डों व शरारतियों की बखेड़ेबाज़ी बढ़ेगी, सो भी ज्यादा मजबूती के साथ व संगठित रूप से । अबतक के हिन्दू-संगठन की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मुस्लिम-संगठन ही ज्यादा मजबूत व व्यापक हुआ है। हिन्दू शोर ज्यादा मचाते हैं, मुसलमान संगठित ज्यादा होते हैं। फिर जिस संगठन का मूलाधार शरीर-बल या शस्त्र-बल है उसमें से प्रेम, एकता, समभाव के पैदा होने की कल्पना करना मानस-शास्त्र की व अबतक के दुनिया के इतिहास एवं अनुभव के खिलाफ़ है। एकता तो मन को ही शुद्ध, स्निग्ध, समभावी बनाने से हो सकती है। पहले हम अपने मन को ऐसा बना सकेंगे तभी तो दूसरे पर उनका असर पड़ेगा न ? जब हमी सामनेवाले को अपना बलवान शरीर या तेज तलवार दिखाते हैं तो उससे संयम, सहनशीलता, एकता की श्रीमुनशी जैसे विचक्षण पुरुष आशा रक्खें यह ताज्जुब की ही बात है। मेरी तो मजबूत राय है कि श्रीमुनशी का उद्योग गलत दिशा में है व इसका बुरा ही नतीजा निकलेगा । कांग्रेस में दुविधा व बुद्धिभेद पैदा होगा सो अलग—सो भी ऐसे वक्त जब कि कांग्रेस को एकता की सबसे ज्यादा जरूरत है। इससे हिन्दुओं का भी अहित ही होने की संभावना ज्यादा है।

बंगाल और राष्ट्र-भाषा

राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलन, कलकत्ता के अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसाद के भाषण से हमें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि—बंगाल ने अभीतक राष्ट्र-भाषा को नहीं अपनाया है, यद्यपि वह भारत के उन्नत वं अग्रगण्य सूबों में बहुत ऊँचा स्थान रखता है। न उसने राष्ट्रभाषा के प्रचार में ही वह उत्साह दिखलाया जो दक्षिण भारत

अथवा महाराष्ट्र व गुजरात में देखने में आता है। बंगाल इस विषय में उड़ीसा व आसाम से भी पिछड़ा हुआ है। जब यह मालूम हुआ कि 'वसुमती' व 'आनन्दबाजार-पत्रिका' जैसे बंगला के लब्धप्रतिष्ठ पत्रों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने के खिलाफ अपनी सम्मति प्रकट की है तब तो हमारे दुःख का ठिकाना न रहा। 'वसुमती' कहती है कि 'हम हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनने लायक़ भाषा नहीं मानते। हमारा विश्वास है कि जो बंगाल की परवा न करके हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का उद्योग कर रहे हैं उनका एक मात्र उद्देश है बंगालियों और बंगाल को क्षमता-भ्रष्ट कर देना। हाल में कलकत्ते में नये आयोजन से नयी चेष्टा की जा रही है···बंगालियों के लिए कोई कारण नहीं है कि इसमें उत्साह दिखाया जाय।" 'आनन्द-बाजार पत्रिका' लिखती है––"हम जोर के साथ कहेंगे कि राष्ट्रभाषा बनने का बंगला का जो हक है वह अनेक दृष्टियों से हिन्दी से अधिक है।······असल बात यह है कि भारत की नाना प्रादेशिक भाषाओं में बंगला ही सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। इसलिए बंगाली लोग बंगला को राष्ट्र-भाषा बनाने की माँग छोड़ नहीं सकते।"

ऐसे तंगखयाल बंगाली भाइयों के मत का खुद डा० चटर्जी ने ही खण्डन कर दिया है। वे कहते हैं––"कुछ बंगाली सज्जन, जिनमें ऐसे मनस्वी हैं जो कि न केवल बंगाल के परन्तु समग्र भारत के श्रेष्ठ नेता गिने जाते हैं, राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए बंगाल का दावा पेश कर रहे हैं। इनकी चेष्टा मेरे विचार से निरर्थक है।······हिन्दी का स्थान आकस्मिक नहीं है। केवल प्रचार का फल नहीं है। वैदिक, लौकिक, संस्कृत, पाली, शौरसेनी, प्राकृत, शौरसेनी अपभ्रंश, व्रजभाषा, खड़ी बोली हिन्दी––अन्तर्प्रादेशिक भाषाओं की इस परम्परा से हिन्दी आयी है। केवल साहित्य के कारण किसी भाषा का फैलाव नहीं होता। बंगला का आधुनिक साहित्य बहुत श्रेष्ठ है, यह ठीक है; पर हिन्दी के प्राचीन साहित्य का महत्त्व कुछ कम नहीं है।"

हिन्दी राष्ट्रभाषा का दावा लेकर जिस धरातल पर खड़ी है उसपर हिन्दुस्तान की कोई प्रान्तीय भाषा खड़ी नहीं रह सकती। वह धरातल साहित्यिक नहीं, राष्ट्रीय व व्यावहारिक है। भारत को एक राष्ट्र सिद्ध करने के लिए, उसके तमाम राष्ट्रीय व्यवहारों को आसानी से चलाने के लिए, देश के इस छोर से उस छोर तक जो सबकी समझ में आ जाती है, व जिसे टूटा-फूटा सभी प्रान्तों के लोग आज बोल सकते हैं, जिसे दक्षिण, महाराष्ट्र, गुजरात, असम, उड़ीसा-जैसे अहिन्दीभाषी प्रान्तों ने राष्ट्रभाषा के तौर पर मंजूर कर लिया है, ऐसी कोई एक भाषा अगर हिन्दुस्तान में है तो वह हिन्दी ही है। इस इतने बड़े सूर्य-प्रकाश जैसे सत्य को भी यदि बंगाल के कुछ बड़े लोग नहीं देख सकते तो कहना होगा—"सूर्यस्य किं दूषणम् ?" असल बात यह है कि बंगाल में अभी प्रान्तीय अभिमान पक्षपात की हद तक बढ़ा हुआ है। वह प्रान्तीय अभिमान जो हमारी राष्ट्रीय बुद्धि को कुंद व दृष्टि को धुँधला कर देता है, राष्ट्र-कार्य को तो बिगाड़ता ही है, दूर दृष्टि से देखने पर, प्रान्तीय हित को धक्का पहुँचाता है क्योंकि दोष उनके निर्णय में नहीं है, दृष्टि-बिन्दु में है। यदि हमारी मूल दृष्टि ही खराब हो गयी है तो उसमें हमें न देश का हित सही-सही दीख सकता है, न प्रान्त का, न अपने घर का ही।

समभाव से

भाई श्री बनारसीदासजी व जैनेन्द्रजी ने टीकमगढ़ में जो भाषा व लिपि-सम्बन्धी विचार-मन्थन किया और जिसका निचोड़ जैनेन्द्रजी ने अपने पत्र में दिया है, उससे मैं बहुतांश में सहमत हूँ। मेरी राय है कि इन मित्रों के सोचने की दिशा सही है व उनके नतीजे भी बहुत-कुछ सही हैं। हिन्दुस्तान के हरएक मसले को हमें हिन्दुस्तान की ३५ करोड़ जनता की दृष्टि से ही सोचना व हल करना चाहिए। हमारे सोचने की स्पिरिट में 'समभाव' रहना जरूरी है। अर्थात्

हम अपने को ३५ करोड़ में से एक हिन्दुस्तानी मानकर हमारे दूसरे भाइयों के सुख-दुःख व हिताहित का विचार खुद हमारे सुख-दुःख व हिताहित जैसा ही समझकर करें तभी हम सही नतीजों पर पहुँचेंगे। फिर हमारे अमल में भी वही समभाव की स्पिरिट होनी चाहिए। हम एक-दूसरे के प्रति ईमानदार रहने व जोर-जबरदस्ती से अपनी बात न मनवाने का दृढ़ संकल्प कर लें तो 'समभाव' अपने-आप हमारी स्पिरिट में आता रहेगा। यह 'समभाव' हमारी संस्कृति, राष्ट्रीयता, समाजवाद, गांधीवाद, अध्यात्मवाद, मानवता व व्यावहारिक न्याय, सभी तराजुओं पर ठीक उतरता है। मुझे खुशी है कि इसी दृष्टि व वृत्ति से टीकमगढ़ में चर्चा व निर्णय हुए हैं। इसके लिए मैं उन मित्रों को बधाई देता हूँ।

आलोचक-मण्डल

श्री कालिदास कपूर व श्री प्रेमनारायण टण्डन द्वारा प्रस्तावित आलोचक-मण्डल की योजना मुझे अच्छी लगी है। कुछ कठिनाइयाँ तो खुद प्रस्तावकों की निगाह में आ गयी हैं। अनुभव से योजना में सुधार किये जा सकेंगे। मुझे जो सबसे बड़ी मुश्किल मालूम पड़ती है वह है एक काम को लेकर उसके पीछे अपनी सारी ताकत व जीवन लगा देनेवालों की कमी की। यदि कपूरजी या टण्डनजी इस मज़बूती के साथ इस प्रस्ताव को रखते हों तो योजना की कमियों को मैं फिलहाल कोई महत्त्व नहीं देता। योजना की प्रस्तावना का यह वाक्य—'आलोचकों का कहना है कि मुफ्त में हम पूरा ग्रन्थ पढ़ने और आलोचना लिखने में अपना समय क्यों नष्ट करें?'—मुझे बहुत खटका। आलोचकों की यह टका-वृत्ति शोभनीय नहीं। इन मित्रों की आलोचनायें अगर पुरस्कार के ही बल पर मिलनेवाली हों तो मुझे इस आयोजन से विशेष आशा नहीं होती। जिस कार्य के मूल में सेवा का या त्याग का भाव नहीं है उसमें तेज, बल, व स्थिरता की आशा मुझे नहीं होती। हाँ, जो आलोचक पुरस्कार मिले बिना अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर सकते उन्हें अवश्य व चलाकर पुरस्कार या पारिश्रमिक दिया जाय। इसमें भी एहसान की भावना कतई न हो। जो लेखक व आलोचक सम्पन्न हैं; जिनके निर्वाह का दूसरा जरिया है, उन्हें लेखन-कार्य से एक पैसा भी न लेने का व्रत लेना चाहिए, बल्कि अपना श्रम, व ज़रूरत पड़ने पर पैसा, भी लगाकर साहित्य की व निर्धन साहित्य-सेवियों की सेवा—सहायता नहीं—करनी चाहिए। हिन्दी के हम लेखक कहलानेवाले जबतक निर्वाह-मात्र पर सन्तोष मानकर शेष धन या श्रम का उपयोग सेवा-भाव से नहीं करेंगे, न होने देंगे, तबतक हिन्दी-साहित्य में प्राणवान् व मौलिक साहित्य की आशा दुराशा-मात्र है। फाकेमस्त साहित्य-सेवियों की राख में से ही स्फूर्तिदायी साहित्य व साहित्यकारों का जन्म हो सकता है। इस निवेदन के साथ मैं इस योजना की हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

उपयोगी सुझाव

गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, से श्री मगनभाई देसाई ने 'जी०-सा०' के लिए उपयोगी सुझाव भेजे हैं। वे लिखते हैं—"जी०-सा० को मैं पढ़ता हूँ। ऐसा लगता है कि आपने हिन्दी साहित्यिकों में नवीन विचार की कुछ हलचल जगायी है। × × × कहीं आप साहित्य के प्रचलित अर्थ की तरफ़ तो अधिक नहीं झुकते हैं न? साहित्य के कलेवर की बनिस्बत उसकी आत्मा पर अधिक ज़ोर देने की बहुत जरूरत आपको नहीं मालूम होती? जीवन-साहित्य कहकर आप यही सूचित करना चाहते हैं, ऐसा समझूँ तो गलत नहीं न?

यह भी आशा रखनी उचित है कि 'आपके मासिक पत्र के द्वारा 'हिन्दुस्तानी' की एक सरल व रोचक शैली का निर्माण हो। मुझपर कुछ ऐसा असर है कि हिन्दी में अति आडम्बरी शैली बहुत-कुछ घुस गयी है। सम्भव है वह गलत भी हो। यदि सच हो तो क्या उसका सुधार भी 'जी०-सा०'का काम नहीं समझा जाना चाहिए?"

कलेवर की बनिस्बत साहित्य की आत्मा की

तरफ़ ध्यान देने, हिन्दुस्तानी भाषा की एक सरल रोचक शैली बनाने तथा आडम्बरी शैली में सुधार करने के सुझाव सभी हिन्दी-लेखकों के ध्यान देने योग्य हैं। साहित्य की आत्मा क्या है या क्या हो? 'सत्य' जिसके आधार पर सारा जीवन व सारा जगत् खड़ा है, वही साहित्य की आत्मा है व हो सकती है। सत्य का ज्ञान या प्रकाश, साहित्य का प्रकाश, सत्य की साधना साहित्य की साधना होनी चाहिए। सत्य जहाँ ले जाय वहाँ बेधड़क चले जाना, सत्य जो प्रेरणा करे वही निडर होकर बोलना व लिखना व वैसे आचरण की प्रेरणा करना साहित्यकार का काम है। सत्य जीवन का यह प्रकाश साहित्यकार जिस लैंप में रखकर संसार को भेट करेगा वह साहित्य का कलेवर होगा। कहना नहीं होगा कि शुद्ध व बलिष्ठ आत्मा ही लैंप में अच्छा प्रकाश दे सकेगी। इसलिए साहित्य के बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा साहित्य के मूल अधिष्ठान की तरफ़ हमारा ध्यान पहले जाना चाहिए। इस दृष्टि से देसाईजी का यह सुझाव बिल्कुल उचित व समय के अनुकूल है।

हिन्दी में आडम्बरी शैली के अस्तित्व से हम इनकार नहीं कर सकते। जीवन व साहित्य में आडम्बर तभी आता है जब सच्चाई या वास्तविकता से हम दूर पड़ गये हों। ज्यों-ज्यों हम सत्य के निकट आवेंगे अपने-आप सरल होते जायेंगे। हमारी साधना में यदि अहंकार है तो शैली रूखी बन जायगी, यदि प्रसन्नता है तो शैली रोचक हो जायगी। शैली को सुधारने के लिए भी हमें अपने मन की वृत्ति को ही सुधारना पड़ेगा। उसे सत्याभिमुख बनाना पड़ेगा और चित्त की समता, जिसमें से प्रसन्नता उपजती है, प्राप्त करनी होगी।

लेकिन हिन्दी-संसार के वर्तमान वातावरण में 'हिन्दुस्तानी' की शैली के बनने में बड़ी कठिनाई दीखती है। 'हिन्दी' व 'उर्दू' के विवाद ने हमारे संकुचित अहम् को इतना छुई-मुई बना दिया है कि सत्य की आवाज़ उसे सुहाती नहीं मालूम होती। संस्कृत के द्वारा जिस तरह पहले सारा भारत एक राष्ट्र था उसी तरह अब हिन्दुस्तानी' के द्वारा उसे फिर एक राष्ट्र साबित कर देना है, यह उच्च आकांक्षा भी उस 'अहम्' को विस्तृत नहीं होने देती है। यह अचेतन या सुप्त-अवस्था का लक्षण है। लेकिन सत्य की पुकार जिनके कान सुनते हैं व जिनके हृदय में उसका प्रकाश पड़ता है वे चुप या निष्क्रिय कैसे रह सकते हैं? फिर भी यह काम विकट ज़रूर है। हिन्दुस्तान के कई भागों में खासकर, दक्षिण में संस्कृत-प्रधान भाषायें प्रचलित हैं। इधर उत्तरी भारत में उर्दू का प्रचार ज्यादा है। हिन्दू-मुसलमान-वैमनस्य के कारण उर्दू-हिन्दी का सवाल हिन्दू-मुसलमान-सवाल बन गया है और इन झगड़ों से परे रहनेवाले लोग एक तरफ से 'जाति-अभिमान-शून्य' कहकर दुराये जाते हैं व दूसरी तरफ से अगर वह हिन्दू है तो मुसलमान व मुसलमान है तो हिन्दू भी उसकी सचाई व ईमानदारी पर पूरा विश्वास नहीं रखते। ऐसी कठिन दशा में उर्दू-हिन्दी के मेल से सरल शैली बनाना बहुत मुश्किल होगया है अब तो दोनों ही नहीं बल्कि सभी प्रान्तीय भाषाओं व देहात की बोलियों में से भी हम शब्द, मुहावरे आदि न लेंगे तो सच्ची 'हिन्दुस्तानी' की शैली नहीं बन सकती। शुरू में उसका रोचक होना कठिन होगा, क्योंकि वह खिचड़ी बोली होगी, जो कानों को खटकेगी। कैसी भी मुश्किल हालत हो आखिर काम तो करने ही से होगा। 'जी० सा०' तो उसी भाषा का हामी है जो ३५ करोड़ हिन्दुस्तानियों का काम चलावे। 'हिन्दुस्तानी' ही उसका नाम हो सकता है। लेकिन नाम के झगड़े में वह नहीं पड़ना चाहता। स्वरूप व उपयोग असली चीज़ है। 'जी० सा०' के मेहरबान लेखक ऐसी ही सरल शैली में लिखने की कोशिश करेंगे तो हिन्दुस्तान के इतिहास में अमर रहनेवाली सेवा करेंगे।

राजनैतिक दुनिया में

वाइसराय की नयी व बड़ी कार्य-कारिणी तथा डिफेंस कौंसिल बन गयी । उससे देश को संतोष नहीं हुआ । महात्माजीने ठीक ही कहा है कि उससे कांग्रेस की माँग पूरी नहीं होती । कायदेआज़म तो वाइसराय पर बहुत ही बिगड़ गये । मुस्लिम लीग में फूट डालने का गुनहगार वाइसराय को ठहरा दिया । विद्रोही मुस्लिम-लीगियों को 'ज़ाब्ता कार्रवाई' की धमकी दे डाली । निर्दल परिषद भी शायद ही संतुष्ट हो, क्योंकि उसकी माँग के मुताबिक रक्षा व अर्थ-विभाग हिन्दुस्तानी मंत्रियों को नहीं दिये गये । सरकार की ओर से यह सुधार युद्ध-परिस्थिति के कारण किया हुआ जाहिर किया गया है, न कि वैधानिक सुधार के अंग के तौर पर; फिर भी वीर सावरकर जैसों को उसपर फिदा होते हुए देख आश्चर्य होता है । सवाल यह नहीं है कि जो सदस्य लिये गये हैं वे कौन और कैसे हैं ? असली सवाल यह है कि नये मंत्रियों को नये अख्तियार क्या दिये गये हैं ? इस लिहाज से युद्ध-संचालन की दृष्टि से भी इन घोषणाओं का मूल्य बहुत कम है ।

इधर 'फारवर्ड ब्लाक' के भाइयों ने तो अपनी कार्य-कारिणी में यहाँतक कह दिया है कि सत्याग्रह में हमारा विश्वास नहीं और इसे बन्द कर देना चाहिए । महात्माजी ने बड़े दुःख और अनिच्छा के साथ सत्याग्रह शुरू किया । अग्रगामियों के तकाज़ों के बावजूद सत्याग्रह को काफी अर्से तक रोक रक्खा । इसके लिए गालियाँ तक खायीं । सभी जानते हैं कि यह सत्याग्रह बतौर आपद्-धर्म के चल रहा है । नैतिक ही क्यों न हो, लेकिन है तो यह लड़ाई ही । कोई भी लड़ाई उसी हालत में बन्द या स्थगित होती है जब या तो जीत हो जाय, या हार हो जाय । सत्याग्रह की लड़ाई में हार की जगह है नहीं, समझौता सरकार को इस समय पुसाता नहीं है । तब सत्याग्रह कैसे स्थगित किया जाय ? अफसोस है कि यह मोटी-सी बात भी महात्माजी के इन सलाहकारों की समझ में नहीं आयी ।

हाँ, एक और सूरत है जब सत्याग्रह बंद और स्थगित हो सकता है । अगर यह धर्म के भरोसे पर अधर्म किया जा रहा हो । लेकिन इसके लिए महात्माजी को किसी की सलाह की जरूरत नहीं है । उनकी अंतरिन्द्रिय काफ़ी जाग्रत और सचेत है ।

सत्याग्रह एक लड़ाई है; वह लड़ाई के कायदे और अनुशासन से ही चल सकती है । लड़ाई के समय में बुद्धिभेद पैदा करना, उसे कमजोर बनानेवाली सलाहें सार्वजनिक रूप से देना हमें तो 'कोर्ट मार्शल' के लायक गुनाह लगता है । लड़ाई में सिपाहियों की ज़रूरत ज्यादा होती है; हमारे देश में, दुर्भाग्य से, नेताओं और सलाहकारों की इफरात है !

लेखक और प्रकाशक का इकरारनामा

पिछली सूचना के अनुसार 'जी० सा०' के पाठकगण इस अंक में 'मण्डल' द्वारा उठाये हुए लेखकों और प्रकाशकों के इकरारनामे की चर्चा खोजेंगे; परन्तु अन्तिम विचार होने से पहले यह आवश्यक मालूम होता है कि इस विषय में रुचि रखनेवाले बाक़ी लेखक और प्रकाशक-बन्धु भी इधर ध्यान दें और अपने-अपने विचार भेज दें ताकि अगले अंक में निश्चय और विस्तारपूर्वक कुछ कहा जा सके ।

'सत्साहित्य-सेवक-समाज'

'सत्साहित्य-सेवक-समाज' ने सूचित किया है कि श्री पं० देवीदत्त शुक्ल और श्रीयुत 'निराला' जी ने भी अपनी एक-एक पुस्तक श्री 'हृदय' जी के परिवार की सहायतार्थ भेंट की है ।

ह० उ०

'मण्डल' की ओर से—

'आज लोकमान्य तिलक की इस पुण्य-तिथि (१ अगस्त) के दिन 'जीवन-साहित्य' नये वर्ष में अग्रसर हो रहा है और आज ही वर्धा में श्री० रिषभदासजी राँका की देखरेख में श्री लक्ष्मीनारायणजी 'भारतीय' ने 'मण्डल' की मध्यप्रांतीय शाखा के कार्य का शुभारम्भ किया है। बुजुर्गों के आशीर्वाद तथा मित्रों के सहयोग और सहायता से उनको पूरी सफलता मिलेगी ऐसा भरोसा है।

इसी महीने श्री० राजेश्वरप्रसाद सिंह (संचालक हिन्दी-साहित्य-एजेंसी, पटना) सारे बिहार के लिए 'मण्डल' के सोल सेलिंग एजेंट नियुक्त किये गये हैं। वे बिहार में 'मण्डल' के कार्य का संगठन और प्रतिनिधित्व करेंगे और इसी महीने 'मण्डल' के प्रधान कार्यालय के कार्य में हमारे सहयोगी श्री महादेव जोशी कलकत्ते में 'मण्डल' का एक केन्द्र स्थापित करने तथा उसे चालू कर देने के उद्देश्य से वहाँ पहुँच गये हैं।

इसी प्रकार प्रयाग और काशी में भी एक-एक केन्द्र स्थापित करने के प्रयत्न चल रहे हैं और संभव है, इसी महीने वहाँ के बारे में भी आप कोई शुभ समाचार सुन लें।

अब बम्बई, करांची, लाहौर आदि स्थानों में भी 'मण्डल' के केन्द्र स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इस तरफ कोई सुयोग्य और उत्साही तथा कर्मशील सज्जन ध्यान दें तो यह कोई कठिन काम नहीं है। 'मण्डल'-जैसी सजीव और लोकप्रिय संस्था के बढ़ते हुए कार्य में सफलता की ही सम्भावना हो सकती है।

आज की परिस्थिति में, कागज़ों तथा छपाई के दाम बढ़ जाने पर भी लोकोपयोगी विषयों पर कई नयी पुस्तकें प्रेस में छप रही हैं। **मेरी कहानी** का चौथा संस्करण प्रकाशित हो गया है। **दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह (म० गांधी)** भी इसी सप्ताह तैयार हो जायगा। **राष्ट्रीय गायन** तथा **भाई के पत्र** इस महीने के अन्त तक पाठकों के पास पहुँच जावेंगे।

'जीवन-साहित्य' के नये ग्राहकों तथा 'मण्डल' के पाठकों के लिए नयी सुविधाओं और रिआयतों का उल्लेख पिछले अंकों में किया जा चुका है। हम पाठकों का ध्यान फिर उधर आकर्षित करना चाहते हैं कि उनका लाभ उठाकर वे 'मण्डल' की पुस्तकें सुलभ मूल्य में तथा 'जीवन-साहित्य' बिना मूल्य प्राप्त करें।

अंत में 'जीवन-साहित्य' के उन ग्राहकों से निवेदन है जिनका चंदा जुलाई महीने में समाप्त हो गया। पिछले अंक में उनको सूचना दी थी कि अपना चंदा भेज दें। जो अबतक न भेज पाये हों उनको यह अंक बतौर याददिहानी के और भेज दिया जाता है; पर अगर इस महीने भी उनका चंदा नहीं आया तो आगे 'जी. सा.' अनिच्छापूर्वक बंद करना होगा।

इसी प्रकार इन ग्राहक-संख्या वालों का चन्दा भी अगस्त महीने में पूरा होता है :—

४३२, ५००, ५२३, ५२४, ५४९, ५५०, ५९३, ५९४, ५९५, ६२९, ६३०, ६३१, ६३३, ६३४, ६३६, ६३७, ६३८, ६४१, ६४२, ६४३, ६४७, ६४९, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ७३५, ७६९, ८०८, १०४९, १०५०।

इनसे हमारी प्रार्थना है कि ये भी अपना चंदा इसी महीने शीघ्र भेज देने की कृपा करें। चंदा न आने की हालत में हम उनको अगला अंक भेजने में असमर्थ होंगे।

मंत्री

बिड़ला जूट मैन्युफ़ैक्चरिंग कम्पनी, लि॰

के

जूट कार्पेट

ट्रेडमार्क—पद्म (लोटस)

हर प्रकार की सजावट के लिए

सबसे बेहतरीन चीज़

सस्ते, आकर्षक और मज़बूती के लिए प्रसिद्ध

दिल्ली, लाहौर, अमृतसर इत्यादि
मेसर्स, एम. डी. ज़िन्दल एण्ड सन्स,
मरीना होटल आर्केड, **नई दिल्ली.**

बनारस, कानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर
मेसर्स, खन्ना इन्डस्ट्रीज़,
बीबीहतिया, **बनारस सिटी.**

आगरा, अलीगढ़, मथुरा,
मेसर्स सुखलाल जमसावाल
१ ताजरोड **आगरा,**

देहरादून, मेरठ, मसूरी
मेसर्स, एस. एल. अग्रवाल ऐण्ड कम्पनी,
१३ जी. राजपुर रोड, **देहरादून.**

बरेली, मुरादाबाद, रामपुर
मेसर्स बी. डी. गोयल एण्ड सन्स,
बांस-मण्डी, **बरेली.**

नैनीताल, अल्मोड़ा, रानीखेत
मेसर्स, हरिदत्त एण्ड ब्रदर्स,
दी माल, **नैनीताल.**

सेलिंग एजेन्ट्स :

सब एजेण्ट और स्टाकिस्ट प्रत्येक जगह हैं।

बिड़ला ब्रादर्स, लिमिटेड.

मैनेजिंग एजेन्टस्,

८, रायल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता।

टेलीग्राम:—"जूटवीवर"

टेलीफोन:—कलकत्ता ५६५.

लोकतन्त्र के लिए शिक्षा ?

※ आज के इस जलते हुए सवाल का उत्तर आपके पास क्या है ?

※ विश्व में युद्ध, कलह और अशान्ति क्यों है ? इसका मूल कारण आप जानते हैं ?

※ आपका लाडला इतना दुखी और अव्यवस्थित क्यों है ? वह स्कूल जाना क्यों पसन्द नहीं करता ? घर को सर पर क्यों उठाये हुए है ? इन सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर आप जानते हैं ?

※ माता-पिता के कर्त्तव्य क्या है ? सच्चा शिक्षक और स्कूल क्या है, आप जानते हैं ? श्री हरिपद मैति कलकत्ता विश्व-विद्यालय के चित्त-विश्लेषण के अभ्यासी विद्वान् हैं। वे बालकों के कठिन प्रश्नों का उत्तर देते हैं। पर यह सब महत्वपूर्ण ज्ञान आपको—

बालहित

में प्रतिमास मिल जायेगा।

वार्षिक २) नमूना ≡) उदयपुर (मेवाड़)

दिल्ली में सब प्रकार की उत्तम छपाई और खास करके
हिन्दी पुस्तकों की छपाई
का काम
फेडरल ट्रेड प्रेस
नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७
में
बहुत अच्छा और सावधानी से किया जाता है
एक बार परीक्षा कर देखें
यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था
'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें
हमारे यहाँ छपती हैं।

रूबी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लि०

चेयरमेन--सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

आयोजित पूँजी—४५,००,०००) रुपये
भुगतान पूँजी--१४,४०,०००) रुपये

ज़िन्दगी, आग, जहाज़ और (मोटर आदि सब) दुर्घटनाओं का बीमा कराने में

सबसे सुरक्षित बीमा कम्पनी

इसमें बीमा कराइए या एजेंसी लीजिए

जहाँ हमारे प्रतिनिधि नहीं हैं, उन शहरों में जीवन-बीमा-विभाग के लिए एजेण्टों की आवश्यकता है

प्रार्थनापत्र भेजिए

↓

जनरल मैनेजर:—

८, रॉयल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता
या
बम्बई, कराची, रामपुर, लाहौर, मद्रास, नई दिल्ली, कानपुर, पटना शाखाओं को।

बाजारू कहानियों व गल्पों की मृगतृष्णा से आपको

'कहानी'

ही बचा सकती है।

इसकी विशेषताएँ हैं

(१) हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकारों की प्रगतिशील व मौलिक रचनाएँ।

(२) अंतर्राष्ट्रीय व अंतर्प्रान्तीय ख्यातिप्राप्त लेखकों की कहानियों का अनुवाद।

(३) कहानी, गल्प, एकांकी नाटक तथा उपन्यासों की रचना, उनकी शैली आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण विवेचनाएँ।

सभी समालोचकों ने एक स्वर से स्वीकार किया है कि

'कहानी' सामग्री तथा सस्तेपन दोनों दृष्टियों से बेजोड़ है।

'कहानी' के विशेषांक पर चन्द सम्मतियाँ

दी इंडियन पी० ई० एन—

'...इसमें जो कहानियाँ हैं, वे औसत दर्जे की कहानियों से कहीं श्रेष्ठ हैं।...इस विशेषांक की कहानियाँ पश्चिमी देशों के लेखकों की कहानियों से टक्कर लेती हैं...यह पत्रिका हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रही है...हिन्दी के प्रमियों को निश्चय ही इसे अपनाना चाहिये।

श्री जैनेन्द्र—

'···विशेषांक के सभी लेख मार्मिक हैं। उनके चुनने में गहरे विवेक की दृष्टि दीखती है...'

श्री सुदर्शन—

'···इतना कामयाब नम्बर आप इतनी कम क़ीमत में कैसे दे सकते हैं, यह आश्चर्य की बात है।...मैं आपको बधाई देता हूँ।'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—

'···छः आने में इतनी सामग्री देना तुम्हारा ही काम है। गेट-अप, कहानियों और लेखों और फिर उनकी तरतीब—सब विचार से अंक सर्वांग सुन्दर है।...'

श्री उषादेवी मित्रा—

'····'कहानी' पत्रिका का विशेषत्व है—अत्यल्प मूल्य में इस प्रकार उच्चकोटि की वस्तुओं को भेंट देना...'

श्री देवराज उपाध्याय—

'कथा-साहित्य संबंधी जितनी पत्रिकाएँ निकलती हैं, उनमें 'कहानी' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है...'

श्री उदयशंकर भट्ट—

'···पढ़कर चित्त उत्फुल्ल हो उठा...इस अंक की संपूर्ण सफलता के लिए आपको बधाई।'

श्री रवीन्द्र

'Cheap Sentimental कहानियों से मुझे बैर है, पर इस बार का विशेषांक देखकर तबियत खुश हो गई...'

श्री पहाडी—

'...'कहानी' के विशेषांक में जितनी श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है, उस टक्कर की एक भी कहानी व्यवसायी कहानी-पत्रों की फाइलों में शायद ही मिलेंगीं।'

इतनी उत्कृष्ट और लोकप्रिय पत्रिका का वार्षिक मूल्य केवल तीन रु० है। एक प्रति का चार आना।

कृपया आज ही ३) मनीआर्डर से भेज दें : पुस्तकालय २।।) भेज सकते हैं।

सरस्वती प्रेस, बनारस कैंट।

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रति दिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५००	रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,०००	,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५०	,,
१९३७ ई० में	३५,५६,५००	,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५०	,,
१९३९ ई० में	५०,११,७६८	,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५०	,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

शाखायें—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद दक्षिण, अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना।

कमला

[महिलाओं की अपनी मासिक पत्रिका]
संपादक—श्री बाबूराम विष्णु पराड़कर
सहायक—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

मैनेजर, 'कमला',
गायघाट, बनारस

नारी-जागरण का महान् सन्देश सुनानेवाली हिन्दी की प्रमुख सर्वोत्तम मासिक पत्रिका 'कमला के प्रकाशन से हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की दुनिया में एक अजीब तहलका मच गया है। हर एक उसकी गम्भीरता और उपयोगिता का कायल हो रहा है। यदि आपका विश्वास न हो तो एक प्रति मँगाकर देख लें। नमूने के लिए ।=) के टिकट भेजिए। वार्षिक मूल्य ४।) रखा है। आज ही चंदा भेजिए या नमूना मँगाइए।

छप गया ! छप गया !! छप गया !!!

काशी का

मकरंदीय दशवार्षिक पञ्चाङ्ग

सं० २००१ से २०१०तक

पञ्चाङ्गकर्त्ता पं० इन्द्रदत्त ज्योतिषी मूल्य २।।)

पुस्तक व पञ्चाङ्ग मिलने का पता—

भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस।

क्या आप किसी के पिता और पति हैं ?

यदि हाँ, तो

भाभी के पत्र

पढ़िए और अपनी स्त्री तथा कन्याओं को पढ़ाइए,

भूमिका-लेखक—कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब' बनारसी : लेखक-श्री 'व्यथितहृदय'

मूल्य सजिल्द १)

पता—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, ब्रांच, चौक, कचौड़ी गली, बनारस।

आपका व्यापार

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कलेन्डर
- कार्ड बोर्ड बक्स
- लेबिल आदि

पर ही निर्भर है

फोन नं० ६३२७

इसलिये
उपरोक्त सामग्री के
लिये—

मुरारी फ़ाइन आर्ट वर्क्स,
४, दरियागंज देहली

ब्रांच-
कटराबड़ियान
देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच-
कसेरट बाजार
आगरा

और हमारे

२० वर्ष के अनुभव

से लाभ उठाइए

हिन्दी
समालोचना
के
अग्रदूत
—❖—
मासिक
साहित्य संदेश
का ही
यह
❖
साहस
❖
है

शुक्ल-अंक का परिचय

प्रस्तुत अंक तीन खण्डों में है और सचित्र छपा है

परिचय—

१. परिचय	स्वर्गीय श्री रामचन्द्र शुक्ल
२. पंडित रामचन्द्र शुक्ल : जीवन-परिचय	बा० श्यामसुन्दरदास
३. आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल : एक झांकी	श्री केशवचन्द्र शुक्ल
४. स्वर्गीय आचार्य का अन्तिम दर्शन	श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'
५. उन चार वर्षों की याद में	श्री उदय एम० ए०

समीक्षा—

६. शुक्लजी की मानसिक भूमिका	श्री जैनेन्द्र
७. शुक्लजी और हिन्दी की परम्परा	श्री रामविलास शर्मा
८. आ० शु० और आई. ए. रिचर्ड्स	श्री नगेन्द्र एम० ०
९. हिन्दी आलोचना और आचार्य शुक्ल	श्री नन्ददुलारे बाजपेयी
१०. आलोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल	श्री रामस्वरूप शर्मा
११. आ० शु० और काशी नागरीप्रचारिणी सभा	श्री रामबहोरी शुक्ल
१२. शुक्लजी का आलोचकों में स्थान	श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी
१३. रामचन्द्र शु० : समालोचक और निबन्धकार	श्री नलिन विलोचन शर्मा एम.ए.
१४. प्रबन्धकार शुक्लजी	श्री सद्गुरुशरण अवस्थी
१५. शुक्लजी के मनोवैज्ञानिक निबन्ध	श्री गुलाबराय एम० ए०
१६. हिन्दी-साहित्य का इतिहास	श्री विश्वम्भरदयाल 'मानव' एम.ए
१७. आ० शु० की सर्वप्रथम मौलिक रचना	श्री शिवपूजन सहाय
१८. शु० के इंदौरवाले भाषण की कुछ विशेषताएँ	श्री प्रभाकर माचवे
१९. शु० के काव्य में रहस्यवाद की झलक	श्री गुलाबराय एम० ए०
२०. अनूदित बुद्धचरित	श्री गोपाल व्यास एम० ए०
२१. शुक्लजी के अनुवाद	श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़
२२. शु० की तीन भूमिकाएँ : जायसी, तुलसी, सूर	श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०, श्री सत्येन्द्र एम. ए. श्री गुलाबराय
२३. शुक्लजी की हिन्दी साहित्य को देन	श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्री नलिनीमोहन सान्याल, श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल, श्री उदयनारायण तिवारी और श्री प्रभाकर माचवे

आभार—इसमें अनेकों लेखकों के व्यक्तिगत पत्र संकलित हैं, संपादकीय

६ महीनों में चार विशेषांक

दो छप गये : दो और भी छपेंगे

✻ नमूना मुफ्त मँगाइए ✻

मूल्य ३) वार्षिक, विद्यार्थियों के लिए २) पता—साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा

साहित्य का एकमात्र उद्देश्य जीवन का निर्माण है !

अतः आप निर्जीव और घातक साहित्य की ओर न ललचावें।

साधुमना सन्तों, महापुरुषों और राष्ट्रनेताओं की वाणी

और विचार ही हमें अमृत प्रदान कर सकते हैं !

जीवन के बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, समस्त अंगों को बनानेवाला साहित्य

सस्ता-साहित्य-मण्डल से ही मिलेगा।

—: कुछ चुने हुए रत्न :—

द० अफ्रीका का सत्याग्रह	[महात्मा गांधी]
अनीति की राह पर	,,
आत्म कथा	,,
हमारा कलंक	,,
गांधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ	[सर राधाकृष्णन्]
मेरी कहानी	[जवाहरलाल नेहरू]
हिन्दुस्तान की समस्यायें	,,
रोटी का सवाल	[क्रोपाटकिन]
कांग्रेस का इतिहास	[डा० पट्टाभि सीतारामैया]
जीवन-सन्देश	[खलील जिब्रान]
खादी-मीमांसा	[बालूभाई मेहता]
लोक-जीवन	[काका कालेलकर]
दिव्य जीवन	[स्वेट मार्डेन]
बुद्धवाणी	[वियोगी हरि]
हमारे गाँवों की कहानी	[रामदास गौड़]
बापू	[घनश्यामदास बिड़ला]
स्त्री-पुरुष	[महात्मा टॉल्स्टॉय]
हम क्या करें ?	,,
प्रेम में भगवान्	,,
मेरी मुक्ति की कहानी	,,
गांधी-विचार-दोहन	[किशोरलाल मश्रुवाला]
विश्व-इतिहास की झलक	[जवाहरलाल नेहरू]
लड़खड़ाती दुनिया	,,
संघर्ष या सहयोग	[क्रोपाटकिन]
हमारे राष्ट्रनिर्माता	[रामनाथ 'सुमन']
समन्वय	[डॉ० भगवान्दास]
गीता-मंथन	[किशोरलाल मश्रुवाला]
विनोबा के विचार	[विनोबा]
जीवन-सूत्र	[टॉमस कैम्पिस]
सन्तवाणी	[वियोगी हरि]
गाँवों का सुधार-संगठन	[रामदास गौड़]
तीस दिन: मालवीयजी के साथ	[रामनरेश त्रिपाठी]

छप रही हैं—
१. महावीर-वाणी
२. भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन
३. युद्ध और अहिंसा
४. हमारी आज़ादी की लड़ाई

मण्डल के स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में

सस्ता-साहित्य-मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएँ—दिल्ली, लखनऊ, इन्दौर, नागपुर और कलकत्ता

Regd No L 4671

हिंदी का एक अभूत-पूर्व ग्रन्थ !

भारत के तपोनिष्ठ ब्रह्मर्षि

महामना मदनमोहन मालवीय

की पवित्र सेवामयी जीवनी का अभाव 'मंडल' की पुस्तकों में आपको खटका होगा। आपने अनुभव किया होगा कि महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं की आत्मकथाओं को पढ़ लेने पर भी महामना मालवीयजी की जीवन-गंगा में अवगाहन किये बिना जीवन अधूरा-सा लगता है। क्योंकि हमारे राष्ट्र के निर्माण करनेवालों में मालवीयजी का एक अनुपम स्थान है।

पर

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने

मूल्य अजिल्द : डेढ़ रुपया	तीस दिन मालवीयजी के साथ	मूल्य सजिल्द : दो रुपया

'जी० सा०' तथा 'मण्डल' के ग्राहकों को
केवल १=) में

यह पुस्तक भी महात्माजी की आत्मकथा की ही तरह रोचक व पावन है।

लिखकर

हिन्दी के इस बड़े अभाव की पूर्ति कर दी है।

मेरी कहानी

[पं० जवाहरलाल नेहरू]

के नये संस्करण में पंडितजी ने भारतीय राजनीति की ताजी घटनाओं पर भी दृष्टि डाली है। इस प्रकार अब वह अद्यतन (UP-TO-DATE) हो गयी है।

आज ही आर्डर भेजिए।

दाम तीन रुपये

सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखायें—दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर : वर्धा (नागपुर) : कलकत्ता

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय

तमसो मा ज्योतिर्गमय

जीवन साहित्य

वर्ष २ : अंक २

सितंबर : १९४१

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

मानव में देव

गुरुदेव आत्मा, सौन्दर्य व संस्कृति के कवि थे। वे केवल कल्पना-जगत् में नहीं उड़ते थे; अपने आदर्श को भूतल पर उतारने का उन्होंने जी-जान से प्रयत्न किया है। 'विश्वभारती' के द्वारा उन्होंने कवि व कर्मी का मेल संसार को दिखाया है।

उनकी प्रतिभा और उसके जीवन का विकास सभी दिशाओं में हुआ था। कविता, नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध-प्रबन्ध, सबमें उनकी प्रतिभा चमकी है; अपनी जमीदारी के प्रबन्धक 'श्रीनिकेतन' तथा 'विश्वभारती' के संचालक के रूप उनके जीवन ने अपना जौहर दिखाया है।

वे कलामूर्ति थे। काव्य-साहित्य के तो सम्राट् ही थे। संगीत, नृत्य, चित्र कला भी उनमें व उनके आश्रम में फूली-फली है। मृदुलता उनकी कला का कोमल प्राण, सौन्दर्य उनकी कला का देवता व मानवता उनकी कला का उत्कर्ष था।

उनके जीवन का, उनके सारे व्यक्तित्व का सन्देश है मेल—पूर्व व पश्चिम में मेल, प्राचीन व आधुनिक में मेल, कला व जीवन में मेल, कल्पना व कर्म में मेल, अध्यात्म व संसार में मेल।

गुरुदेव मानव में देव थे। उन्हें खोकर हमने मानवता, कला व संस्कृति के देवता को खो दिया है!

ह० उ०

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल

कनाट सर्कस
नई दिल्ली

विषय-सूची

१. एक ही नमस्कार में (कविता) ३७
[स्व० श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर]
२. 'इक़रारनामे' पर सम्मतियाँ ३८
[श्री हरिभाऊ उत्राध्याय]
३. श्रद्धाञ्जलि [श्री जैनेन्द्रकुमार] ४१
४. सापेक्षतावाद ४४
[श्री किशोरलाल घ० मश्रुवाला]
५. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ४७
[श्री प्रभाकर माचवे, एम. ए.]
६. पत्र-पत्रिकाओं में लेखकों के चित्र ४९
[डा० सत्यप्रकाश, डी. एस-सी.]
७. रवीन्द्रनाथ का हिंदी कविता पर प्रभाव ५१
[श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'निराला']
८. रवीन्द्रनाथ का युग-दर्शन ५४
[श्री सुधीन्द्र एम ए., साहित्यरत्न]
९. अर्घ्य (संकलित) ५७
१०. प्रस्तुत प्रश्न ५८
'खुली चिट्ठी'; खुले पत्र का सारभाग
११. कसौटी पर ६२
चंद्रिका (ह० उ०), खिलौना घर, कार्ल और अन्ना (श्री मुकुट बिहारी वर्मा); हिलोर (ब्रजेन्द्र); प्रजातन्त्र (कृष्ण); प्रेमचन्द (निरंजन)
१२. समालोचनार्थ प्राप्त ६५
१३. सहयोगियों में से ६६
शिक्षक का कर्त्तव्य (श्री महादेव देशाई); साहित्य और संस्कृति; (श्री बनारसीदास चतुवदी)
१४. प्रगति की ओर ६८
१५. जीवन-समस्याएँ ६९
१६. हिन्दी की हलचलें ६९
१७. क्या और कैसे ? ७०
मुसीबत की तोबा; अपनी-अपनी देन; गरीब लेखकों की ओर से; शोक-समाचार
१८. मण्डल की ओर से— ७२

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, ३९१ अपर चिनपुर रोड, कलकत्ता

एक पंथ दो काज

व्यापार में लाभ

और

सेवा-कार्य में सहायता

ये दोनों कार्य यदि हो सकें तो हरेक व्यक्ति करना चाहता है।
हमारे यहाँ की बनी हुई विशुद्ध औषधियाँ, रस, भस्म,
आसव, अरिष्ट, सुगन्धित तैल, पापड़ वगैरह
बेचकर आप भी व्यापार में लाभ
व सेवा-कार्य में सहायता पहुँचा
सकते हैं।

'सस्ता साहित्य मण्डल' के पाठकों व प्रेमियों
के लिए

एक और खुशख़बरी

कलकत्ता में भी 'मण्डल' की शाखा खुल गई

कलकत्ता नगर के 'मंडल' के प्रेमी पाठकों व हितैषियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि कलकत्ता में 'मण्डल' का प्रचार व बिक्री-संगठन करने के लिए श्री महादेव जोशी के व्यवस्थापकत्व में 'मण्डल' की शाखा खुल गई है। अभी फ़िलहाल शाखा का कार्यालय १३२।१ हरिसन रोड, (शुद्ध खादी भंडार के पास) में ही रहेगा।

आशा है 'मण्डल' के हितेच्छु बुजुर्ग, स्नेही मित्र तथा उदार पाठक 'मण्डल' के कार्य को उत्तम रीति से चलाने में अपनी सलाह, मार्गप्रदर्शन तथा सुझावों से सहायता करने की कृपा करेंगे।

मंत्री
सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

के नवीन प्रकाशन

सोवियत भूमि—ले० महापंडित राहुल सांकृत्ययान, मूल्य ५ रु० रूसके संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिये हिन्दी में अद्वितीय पुस्तक।

मूर्तिकला—ले० राय कृष्णदास, मूल्य १ रु० ४ आ०। भारतवर्ष की मूर्तिकला की आदि से अब तक की तात्त्विक व्याख्या।

चित्रकला—ले० रायकृष्णदास, मूल्य १रु० ४आ० चित्रकला पर अपने ढंग की सर्वोत्तम पुस्तक।

बाल मनोविज्ञान—ले० पंडित लालजी रामशुक्ल, मूल्य १ रु० ४ आ०। हिन्दी में बाल-मनोविज्ञान संबंधी सर्वश्रेष्ठ रचना।

मआसिरुल उमरा भाग १ और २—अनु० बाबू ब्रजरत्नदास, मूल्य ४ रु० प्रति भाग मुग़ल शासनकाल के सरदारों की सबसे प्रामाणिक जीवनियाँ।

बिहार में हिन्दुस्तानी—ले० पं० चन्द्रबली पांडेय, मूल्य ४ आ०। बिहार प्रांत में हिन्दी हिन्दुस्तानी समस्या की तात्त्विक व्याख्या।

कचहरी की भाषा और लिपि—ले० पं० चन्द्रबली पांडेय, मूल्य १२ आ०। अदालतों की भाषा और लिपि का विस्तृत विवेचन।

मध्य प्रदेश का इतिहास—ले० रायबहादुर डा० हीरालाल, बी० ए०, मूल्य १ रु० ८ आ० मध्य प्रदेश का सबसे प्रामाणिक और शोधपूर्ण इतिहास।

हिन्दी साहित्य का इतिहास—ले० पं० रामचन्द्र शुक्ल, मूल्य ५ रु० प्रवर्द्धित संस्करण। हिन्दी साहित्य का सबसे अच्छा और विस्तृत इतिहास।

सिक्खों का उत्थान और पतन—ले० पं० नन्दकुमार देव, मूल्य १ रु० ४ आ०। सिक्ख जाति के अभ्युदय और पतन का सर्वांग पूर्ण इतिहास।

नई कहानियां—सं० श्री राय कृष्णदास, पं० पद्मनारायण आचार्य, मूल्य १।) बारह सर्वोत्तम नई कहानियों का अत्यन्त रुचिपूर्ण संग्रह।

मोहें जो दोड़—ले० श्री सतीशचन्द्र काला, मूल्य २) मोहें जो दड़ो की खोदाई के आधार पर लिखी प्राचीन भारतीय सभ्यता के सम्बन्ध में विद्वत्तापूर्ण सचित्र पुस्तक।

रघुनाथ रूपक गीतांरो—सं० श्री महताबचन्द खारैड, मूल्य २)। डिंगल भाषा में भगवान रामचन्द्र का मंछ कवि कृत सुन्दर कवित्वपूर्ण वर्णन।

मुग़ल बादशाहों की हिन्दी—ले० पं० चन्द्रबली पांडेय, मूल्य ।।) मुग़ल बादशाह हिन्दी से प्रेम करते और हिन्दी में रचना करते थे, इसका स्पष्ट प्रमाण यह पुस्तक है।

मुल्क की जबान और फाजिल मुसलमान(उर्दू में)—संकलयिता शाह साहेब नासिरुद्दीन पुरी मूल्य ।=) हिन्दी भाषा और लिपि के सम्बन्ध में मुसलमान विद्वानों की सम्मतियाँ।

मिलने के पते—**प्रत्येक नगर के प्रतिष्ठित पुस्तक विक्रेता**

अथवा

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, बम्बई के भूतपूर्व गृह-सचिव

गुजरात के इस श्रेष्ठ कलाकार की
रचनाओं को सस्ते-से-सस्ते मूल्य में हमारी
‘सुलभ साहित्यमाला’ में
अवश्य पढ़िए । अब तक

मुन्शी-साहित्य के

दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं । मूल्य दस-दस आना इन भागों में
मुंशी का सबसे पहला ऐतिहासिक रोमान्स

पाटन का प्रभुत्व

निकला है । शरत् बाबू की सम्पूर्ण रचनाओं की तरह मुंशी की भी सम्पूर्ण रचनाओं को हम सुलभ साहित्य माला में निकालने का निश्चय कर चुके हैं ।

अन्य भाग भी शीघ्र निकलेंगे ।

शरत-साहित्य

का प्रकाशन भी हो रहा है । **शेष-प्रश्न** प्रेस में दे दिया गया है
श्री कान्त का चतुर्थ पर्व भी शीघ्र निकलेगा ।

राधा

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और नाट्यकार पण्डित उदयशंकर का यह भाव-नाट्य हाल ही प्रकाशित हुआ है । मूल्य दस आने

संचालक—हिन्दी ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग़, गिरगाँव, बम्बई

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—**प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)**—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४।।)

२—**वीरकाव्य संग्रह**—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कवितायें और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)।

३—**डिंगल में वीररस**—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कवितायें तथा तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना। सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १।।)

४—**संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य**—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालतेहुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक—पंडित ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ।।।)

५—**चित्ररेखा**—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १।)।

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखीहुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १।।)

बाल-साहित्य-माला
१. **वीरशतमन्यु** (कविता) मूल्य ।)
२. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)
३. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कवितायें। मूल्य ।-)
४. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)
५. **बालकवितावली** (कविता) मूल्य ।)

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १)।

पता— **साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।**

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रति दिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५०० रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,००० ,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५० ,,
१९३७ ई० में	३५,५९,५०० ,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५० ,,
१९३९ ई० में	५०,११,७६८ ,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५० ,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

शाखायें—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद (दक्षिण), अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना।

दिल्ली में सब प्रकार की उत्तम छपाई और खास करके

हिन्दी पुस्तकों की छपाई

का काम

फेडरल ट्रेड प्रेस

नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७

में

बहुत अच्छा और सावधानी से किया जाता है

एक बार परीक्षा कर देखें

यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था

'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें

हमारे यहाँ छपती हैं।

व्यापारिक ज्ञान, व्यापारिक शिक्षा और व्यापारिक विद्या की

परमोपयोगी पुस्तकें

हिन्दी महाजनी का नया बहीखाता

[दो भागों में]

प्रथम भाग : यह यू० पी० बोर्ड, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, तथा जयपुर, जोधपुर बीकानेर, कोटा, बूंदी राज्य के शिक्षा विभागों में द्वारा पाठ्य क्रम में स्वीकृत है। और अपने विषय की एक ही पुस्तक है, पाँचवाँ संस्करण मूल्य ।।-)

दूसरा भाग : इसका दूसरा भाग भी यू० पी० बोर्ड की हाई स्कूल और इंटर मीजियेट में स्वीकृत है। तीसरा संस्करण। ४८४ पृष्ठों के इस अद्वितीय ग्रंथ का मू०१।।।=)

प्रारंभिक व्यापार और टाइप-राइटिंग

विषय को सरल भाषा और सरल तरीकों से समझानेवाली सब सूचना से पूर्ण एक ही पुस्तक;

मूल्य ।।।-)

इन तीनों पुस्तकों की इस विषय के विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की है और पढ़ाई में बहुत प्रचलित हैं। आप भी अवश्य उन्हें पढ़कर ज्ञान प्राप्त कीजिए।

मिलने के पते—**प्रियतम-पुस्तक-भण्डार एण्ड कम्पनी**

(१) पिलानी

(२) जयपुर सिटी

बिड़ला जूट मैन्युफ़ैक्चरिंग कम्पनी, लि॰

के

जूट कार्पेट

ट्रेडमार्क—पद्म (लोटस)

हर प्रकार की सजावट के लिए

सबसे बेहतरीन चीज़

सस्ते, आकर्षक और मज़बूती के लिए प्रसिद्ध

दिल्ली, लाहौर, अमृतसर इत्यादि
मेसर्स, एम. डी. ज़िन्दल एण्ड सन्स,
मरीना होटल आर्केड, **नई दिल्ली.**

बनारस, कानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर
मेसर्स, खन्ना इन्डस्ट्रीज़,
बीबीहतिया, **बनारस सिटी.**

आगरा, अलीगढ़, मथुरा,
मेसर्स सुखलाल जमसावाल
१ ताजरोड **आगरा,**

देहरादून, मेरठ, मसूरी
मेसर्स, एस. एल. अग्रवाल ऐण्ड कम्पनी,
१३ जी. राजपुर रोड, **देहरादून.**

बरेली, मुरादाबाद, रामपुर
मेसर्स बी. डी. गोयल एण्ड सन्स,
बांस-मण्डी, **बरेली.**

नैनीताल, अल्मोड़ा, रानीखेत
मेसर्स, हरिदत्त एण्ड ब्रदर्स,
दी माल, **नैनीताल.**

सेलिंग एजेन्ट्स :

सब एजेण्ट और स्टाकिस्ट प्रत्येक जगह हैं।

बिड़ला ब्रादर्स, लिमिटेड.

मैनेजिंग एजेन्ट्स,
८, रायल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता।

टेलीग्राम:—"जूटवीवर"
टेलीफोन:—कलकत्ता ५६५.

नव वर्ष के विशेषांक में नवीनता

'कहानी' की भेंट

- युद्ध और शान्ति की रोमांचकारी कहानियाँ
- अद्वितीय गाम्भीर्य और हास्य
- आधुनिक प्रेम-कथायें
- निम्नवर्गों की मार्मिक गल्पें
- भारत और विदेशों की चुनी कहानियाँ
- कहानी-कला पर समीक्षात्मक लेख
- पद्यबद्ध रसमय कथायें
- कलात्मक रेखाचित्र, नखचित्र आदि के साथ

अनेकों सादे बहुरंगे मनोरम और कलापूर्ण चित्र।

इनके अतिरिक्त——————

भेंट में

- दो रुपये मूल्य का एक उत्कृष्ट उपन्यास

यह आठ आने मूल्य का कहानी-कला का ग्रन्थरूप विशेषांक और भेंट-पुस्तक केवल वे ही ग्राहक पा सकेंगे जो अपना चन्दा ४) मनीआर्डर से २५ सितम्बर तक भेज देंगे।

विशेषांक और भेंट-पुस्तक की सीमित प्रतियाँ छप रही हैं

इसलिये चार आने भेज कर अगस्त की कहानी में विवरण देखें या हमसे पूछें—

'कहानी' कार्यालय, बनारस कैंट।

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय; तमसो मा ज्योतिर्गमय; मृत्योर्माऽमृतंगमय।

सितंबर, १९४१
नई दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

दूसरा वर्ष
दूसरा अंक

एक ही नमस्कार में

एक मात्र ही नमस्कार में
प्रभो, एक ही नमस्कार में—
देह समस्त लुट पड़े मेरी
इसी तुम्हारे सुसंसार में!
सावन के घन सघन धरा पर
झुक जाते हैं ज्यों रस भर-भर
मन मेरा झुककर रुक जाये
प्रभो, तुम्हारे भवनद्वार में!
एकमात्र ही नमस्कार में
प्रभो, एक ही नमस्कार!
धारा बन नाना आकुल स्वर
मिल जायें निज को विलीन कर
मेरे सब गायन समाप्त हों
प्रभु; नीरव सागर अपार में!
एक मात्र ही नमस्कार में
प्रभो, एक ही नमस्कार में!
हंस उड़े मानस-यात्रा पर
वैसे ही अविरत निशिवासर
मेरा प्राण-हंस यह भगवन्!
चले उड़ महामरणपार में!
एक मात्र ही नमस्कार में
प्रभो, एक ही नमस्कार में!

स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अनु०-सुधींद्र

'इकरारनामे' पर सम्मतियाँ

मुझे खुशी है कि 'लेखक बनाम प्रकाशक' प्रश्न पर मेरा अनुरोध मान करके देश के महान् नेता, मेरे गुरुजन, आदरणीय मित्र व प्रिय साथियों ने प्रस्तावित इकरारनामे के मसविदे के सम्बन्ध में अपनी सम्मति व सुझाव भेजने की कृपा की है, जिसके लिए मण्डल उनका बहुत कृतज्ञ है। जिन-जिनने यह कष्ट उठाया है उनकी नामावलि इस प्रकार है—

(१) बाबू राजेन्द्रप्रसाद, (२) श्री किशोरलाल घ० मश्रुवाला, (३) काका कालेलकर, (४) बा० श्यामसुन्दरदास, (५) डा० सत्यप्रकाश, (६) पं० रामनरेश त्रिपाठी, (७) डा० धीरेन्द्र वर्मा, (८) श्री जैनेन्द्रकुमार, (९) प्रो० शंकरसहाय सक्सेना, (१०) श्री सद्गुरुशरण अवस्थी, (११) प्रो० दयाशंकर दुबे, (१२) श्री श्री गणेश पाण्डेय, (१३) श्री भानुकुमार जैन, (१४) श्री कृष्णानंद गुप्त, (१५) श्री ज्योतिप्रसाद 'निर्मल,(१६)डा० हरि राम चन्द्र दिवेकर, (१७) श्री रामनाथ 'सुमन', (१८) श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी और (१९) श्री रवीन्द्र।

इनके अलावा 'हंस' में श्री शि० सि० चौहान ने एक विस्तृत टिप्पणी दी है। और किसी पत्र-पत्रिका में इसपर कोई चर्चा हुई हो तो वह मेरे देखने में नहीं आयी है। इन नामों ही से पाठक यह जान लेंगे कि इनमें अधिकांश लेखक-वर्ग के हैं व कुछ प्रकाशक-वर्ग के। मतलब यह कि दोनों वर्ग के विचारशील व अनुभवी लोगों की सलाह का, जिनमें लेखकों की बहुतायत है, लाभ 'मण्डल' को मिला है। 'मण्डल' अवश्य ही इनकी सम्मतियों व सूचनाओं पर उनकी उपयुक्तता के अनुरूप ही ध्यान देकर आदरपूर्वक विचार करेगा और अपना निर्णय पाठकों के सामने रक्खेगा। इनमें सर्व-श्री डा०राजेन्द्रप्रसाद, काका कालेलकर, कि० घ० मश्रुवाला व 'सुमन' जी की सम्मतियों का ज़िक्र मेरे 'लेखक बनाम प्रकाशक' लेख ('जी० सा०' अप्रेल, १९४१) में आ चुका है। श्री जैनेन्द्रजी का समूचा पत्र ही पाठक जुलाई, ४१ के 'जी० सा०' में पढ़ चुके हैं। शेष की चर्चा अब यहाँ करनी है।

जो सम्मतियाँ मिलीं या प्रकाशित हुई हैं, उनके दो भाग हो जाते हैं—(१) आलोचना या सम्मति और (२) सुझाव। इस लेख में आलोचनाओं व सम्मतियों की ही चर्चा करने के लिए स्थान मिल सकता है। पहले आलोचना को लें। इनमें पहला नम्बर 'हंस' की टिप्पणी का आता है। उसे पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि चौहानजी ने बहुत जल्दी में व गुस्से में आकर वह टिप्पणी लिखी है जिससे उनके हाथों, शायद न चाहते हुए, मण्डल के साथ अन्याय हो गया है। मेरा खयाल है कि गुस्सा उतर जाने पर उन्हें खुद उसपर पछतावा हुआ होगा। उस टिप्पणी का सारा स्वर यहाँ से वहाँ तक ऐसा है कि सारा लेख उद्धृत किये बिना पाठकों को उसका परिचय कराना असम्भव है। फिर भी कुछ वाक्यों से पाठकों को उसकी वानगी मिल जायगी। मैंने अपने 'ले० बनाम प्र०' लेख में लिखा था—'मण्डल का उद्देश नफा कमाना नहीं, विशुद्ध साहित्य-सेवा करना ही है। अतएव लेखकों का शोषण करने की उसके मन में कल्पना भी नहीं आ सकती।' और 'लेखक उत्पादक है और प्रकाशक विस्तारक है। उत्पादक उच्च कोटि के जीवन का नहीं तो साधारण जीवन बिताने योग्य पारिश्रमिक पाने का अधिकारी तो अवश्य ही है।' इन वाक्यों पर चौहानजी टिप्पणी करते हैं—

"पहले अंश में एक पवित्र (pious) किन्तु मिथ्या भावना है, लेखकों की सद्भावना अपनी ओर खींचने के या बाजार की प्रतियोगिता में दूसरे प्रकाशकों को पछाड़कर आगे बढ़ने के उद्देश से तथा दूसरे अंश में पाश्चात्य पूँजीवाद के उपरोक्त फार्मूला (अर्थात् मज़दूर को पेट भरने लायक वेतन देना अपने ही हक में अच्छा होता है) का हिन्दी रूपान्तर है।…पहले अंश में यदि लेखक के शोषण और नफ़े से तोबा किया

गया है तो दूसरे अंश में नफ़े में से लेखक को भी थोड़ा-सा हिस्सा देने का आश्वासन है। अर्थात् नफे का ज्यादा भाग तो प्रकाशक की जेब में जाना ही चाहिए यह पहले से ही मान लिया गया है।"

इसके बाद मुझपर यह आक्षेप करते हुए कि मैंने 'इस प्रश्न का हल लेखक के दृष्टिकोण से न कर प्रकाशक के दृष्टिकोण से किया है; यद्यपि वे स्वयं लेखक हैं और ऐसी हानिकर व अपमानजनक शर्तें खुद शायद ही मंजूर करेंगे' वह 'मण्डल' की नीति पर नहीं नीयत पर इस तरह हमला करते हैं—"पहले संस्करण के बाद के सभी संस्करणों का मुनाफा मण्डल की तिजोरी में ही जाता है और उसमें से लेखक को कुछ नहीं मिलता।"

"तो भी सचाई पर पर्दा कैसे डाला जाय ? विचारार्थ एक मसविदा पेशकर स्वयं मंत्रीजी ने यह पर्दा उठा दिया है। हम आभारी हैं। इस पर्दे के पीछे शोषण करने और मुनाफ़ा उठाने की भावना ही अपने भैरव रूप में लेखकों को निगलने के इन्तज़ार में मुँह खोले बैठी है कि कब बाहर के पवित्र श्लोकों से अंकित रागनामी पर्दे के धोके में आकर लेखक भीतर पाँव रखें, और कब वह उन्हें उदरस्थ कर लें। पूँजीवादी विज्ञापन-कला का मुख्य सिद्धान्त है कि वह लोगों के अन्दर भय की यह भावना उत्पन्न करदें कि अमुक चीज़ का सेवन किये बिना उनका जीवन खतरे में है, या कि उसको व्यवहार में लाकर ही वे सभ्य समझे जा सकते हैं आदि, और ऊपर से यह एहसान भी कि अमुक कम्पनी ने मानव जाति की रक्षार्थ अमुक वस्तु तैयार कर महान् उपकार किया है। मुनाफे का उद्देश्य छिपा ही रहता है। उसे कभी उघाड़ना चाहिए ? कभी नहीं, पूछने पर नकारना ही चाहिए, तभी तो दूसरों से व्यापार में बाजी मारी जा सकती है। सस्ता साहित्य मण्डल ने पूँजीवादी विज्ञापन-कला का यह फार्मूला भी सीख लिया है।"

अखीर में, अपनी सम्मति का निचोड़ चौहानजी ने इन शब्दों में पेश किया है—

"इस प्रकार इकरारनामे का यह मसविदा मृगमरीचिका के समान धोखे की टट्टी है।..."

"मंडल जैसी पुरानी संस्था जिस मसविदे को पेश कर रही है उससे तो ज्ञात होता है कि वह लेखक-वर्ग को कतई रियायतें देने को तैयार नहीं है।"

जबकि वे शुरू से ही यह मानकर चले हैं कि मंडल मुनाफा कमानेवाली, शोषण करनेवाली, धोखा देनेवाली पूँजीवादी संस्था है, तो इसका क्या जवाब दिया जाय सिवा इसके कि चौहानजी ने मंडल को सही आँखों से नहीं देखा है। मेरी राय में यह आलोचना की स्वस्थ पद्धति नहीं है। इसमें मानसिक रुग्णता की शंका होती है। फिर चौहानजी के अलावा किसी ने भी मंडल की दानत पर ऐसी शंका नहीं प्रकट की है। जिस चर्चा को छेड़ने के लिए कई महानुभावों ने मंडल को सराहा व बढ़ावा दिया है उसी के लिए चौहानजी ने मंडल को न जाने क्या-क्या कह डाला है ? यदि मण्डल नफा कमानेवाली संस्था होती तो उसे अबतक १८०००) का घाटा न उठाना पड़ता ? इतनी सस्ती पुस्तकें क्यों दी जातीं ? बाद के संस्करणों में कई पुस्तकों के दाम क्यों घटाये जाते ? कुछ पुस्तकों पर तो व्यवस्था खर्च भी नहीं लगाया गया है, केवल कागज व छपाई की लागत के दाम पर ही बेची जाती हैं।

प्रो० शंकरसहाय सक्सेना ने 'मंडल' के पारिश्रमिक के आधार पर कुछ नुक्ताचीनी की है, जिसे भी यहाँ दे देना उचित है—

"सस्ता साहित्य मंडल ने वेतन के इस (जीवन बिताने योग्य पारिश्रमिक) आधार को नहीं अपनाया। श्री हरिभाऊजी के लेख व प्रस्तावित इकरारनामे को देखकर तो यही कहना पड़ता है कि मंडल इस दिशा में हिन्दी के अन्य प्रकाशकों से एक कदम भी आगे नहीं है।" उन्होंने मेरे इस कथन को भी भ्रमपूर्ण बताया है कि हिन्दी के अन्य प्रकाशक मौलिक की लिखाई

॥), ॥=) व अनुवाद के ।), ।=) प्रति पृष्ठ तक देते हैं, पर साथ ही वे स्वीकार करते हैं कि "जहाँ-तक मंडल का प्रश्न है उससे धोखे की कल्पना नहीं की जा सकती और न उसके स्थायित्व में ही सन्देह किया जा सकता है ।"

सक्सेनाजी का यह कहना बिल्कुल ठीक है कि मंडल ने अभी मेरे जीवन-वेतन के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया है; मण्डल के सामने यह सारा प्रश्न ही विचारार्थ रक्खा जानेवाला है । और प्रकाशकों से मण्डल आगे हो या न हो, उसने पारिश्रमिक की न्यूनतम दर अपने यहाँ तय कर रक्खी है, जो शायद और जगह नहीं है ।

अब सम्मतियों को भी देख लें । हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साहित्य-विभाग की ओर से श्री ज्योतिप्रसादजी 'निर्मल' लिखते हैं—

"मेरी समझ में इकरारनामा ठीक है । सम्मेलन के ३० वर्ष के जीवन में किसी भी लेखक और सम्मेलन के बीच पुस्तकों के सम्बन्ध में इकरारनामा नहीं हुआ । केवल नैतिक दृष्टि से ही काम होता रहा है । अबतक किसी भी लेखक को सम्मेलन के प्रकाशन-व्यवसाय के सम्बन्ध में कोई शिकायत नहीं हुई । लेकिन इकरारनामा आवश्यक है ।"

श्रद्धेय बा० श्यामसुन्दरदासजी धारा ३ (अ) और (ब) में कुछ संशोधन सुझाते हुए काशी से लिखते हैं—"अन्य सब मुझे ठीक जान पड़ता है ।"

छात्र-हितकारी पुस्तकमाला प्रयाग के श्री गणेश पाण्डेय लिखते हैं—"इकरारनामा पढ़ा । मेरी राय में यह इकरारनामा बहुत ठीक है । इसमें मैं सुधार की कोई गुंजाइश नहीं समझता । इसमें दोनों के हितों का पूरा ध्यान रक्खा गया है । आपने यह मसविदा प्रकाशित कर लेखकों और प्रकाशकों का बड़ा हित किया है । इसमें सभी बातें स्पष्ट कर दी गयी हैं जिनसे भविष्य में दोनों के बीच किसी प्रकार की गड़बड़ी पैदा होने की गुंजाइश नहीं रह जायगी ।"

प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डा० धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं—" 'लेखक बनाम प्रकाशक' शीर्षक लेख मैंने ध्यान से पढ़ा । उसके मूल सिद्धान्तों से मैं सहमत हूँ । पारिश्रमिक की दर भी मौलिक के लिए १) व अनुवादक के लिए ॥) वर्तमान स्थिति को देखते हुए ठीक ही है ।···इकरारनामे के कुछ स्थल यदि और अधिक स्पष्ट किये जा सकें तो अच्छा हो ।"

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग से पं० रामनरेशजी त्रिपाठी लिखते हैं—"जी० सा० के······जो इकरारनामा छपा हुआ है उससे मैं पूर्ण सहमत हूँ । इकरारनामे के अनुसार व्यवहार चलाने से लेखकों और अनुवादकों को प्रत्यक्ष लाभ होगा ।"

कानपुर से प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी लिखते हैं—" 'ले० बनाम प्र०' लेख को मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा । मेरा तो विश्वास है कि लेखक और प्रकाशक के बीच इरारनामे की जो रूपरेखा जी० सा० ने उपस्थित की है वह सभी प्रकार पूर्ण है और उससे लेखक और प्रकाशक दोनों का ही लाभ होगा । इस प्रकार की योजना भावी साहित्य की वृद्धि में अवश्य सहायक होगी । अतएव इस सुझाव से मैं पूरी तरह सहमत हूँ ।"

प्रयाग से प्रो० दयाशंकर दुबे ने लिखा है—"इकरारनामे की शर्तें अच्छी हैं । लेखकों की दशा सुधारने का सस्ता-साहित्य-मंडल जो प्रयत्न कर रहा है वह दूसरे प्रकाशकों के लिए अनुकरणीय है ।"

प्रयाग विश्व-विद्यालय के डाक्टर सत्यप्रकाश लिखते हैं—"जो इकरारनामा छपा है वह सर्वथा निर्दोष न होते हुए भी परम व्यावहारिक है ।"

"टीकमगढ़ से श्री कृष्णानन्द गुप्त लिखते हैं—"····शीर्षक लेख मैंने बड़ी दिलचस्पी से पढ़ा है । लेखक और प्रकाशक के बीच जो इकरारनामा है उसमें मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि लेखक की ओर से उसमें कोई शर्त नहीं रखी गयी है । इस इकरारनामे में लेखक ही प्रकाशक के नजदीक पूर्ण रूप से बाध्य जान

पड़ता है । परन्तु लेखक के प्रति प्रकाशक का भी कुछ कर्तव्य होगा अथवा नहीं और यदि होगा तो क्या, इसका कुछ उल्लेख इकरारनामे में नहीं ।"

माधव कालेज, उज्जैन के डा० दिवेकर लिखते हैं—"लेखक-प्रकाशकों के बीच में समझौते की आपकी जी० सा० में प्रकाशित योजना ठीक है । यह मेरा विषय नहीं । मैं तो समझता हूँ कि यदि पुस्तक उत्तम है तो प्रकाशक भी मिल जाता है । पर इस विषय में मुझे अनुभव नहीं ।"

"श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी मथुरा से लिखते हैं—"आपने 'जी० सा०' में लेखक व प्रकाशकों के सम्बन्ध को उठाया है । यह बहुत शुभ है । मैं 'जी० सा०' को इस स्तुत्य प्रयत्न के लिए बधाई देता हूँ ।"

डा० सत्यप्रकाश, प्रो० सक्सेना, श्री रामनाथ सुमन, श्री भानुकुमार जैन, श्री रवीन्द्र और श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी ने विस्तृत पत्र लिखकर सुझाव भेजे हैं । इन सबको स्थानाभाव से 'जी० सा०' में प्रकाशित नहीं किया जा सकता । हाँ यह सुझाया गया है कि तीन सुयोग्य व्यक्तियों की समिति उन सबपर विचार करके जिस निर्णय पर पहुँचे, उसे अवश्य प्रकाशित किया जावे । पाठक-गण इसकी प्रतीक्षा करने की कृपा करें ।

ह० उ०

श्रद्धाञ्जलि

प्रिय सम्पादकजी,

इसी ७ को रविबाबू हमारे बीच से उठ गये ! आज रविबाबू के साहित्य नहीं स्वयम् उनपर ध्यान जाता है । साहित्य का अन्तरंग क्या है ? उसको मैं संस्कृति कहता हूँ । रविबाबू के निधन पर मन में कुछ ऐसी जिज्ञासा उठ खड़ी हुई जो साहित्य के अन्तरंग में जाना चाहती है ।

वह विश्वकवि थे और दुनिया के बौद्धिक से अधिक आध्यात्मिक प्रहरी थे । मानवता के आदर्श को उन्होंने ऊँचे रक्खा । किसी राष्ट्रीयता या जातीयता से अस्त नहीं होने दिया ।

यूरोप में युद्ध-घमासान मचा है । जाने उसमें से क्या भविष्य निकलेगा ! भविष्य की उज्ज्वलता का विश्वास खोने का हक किसी को नहीं । फिर भी वर्तमान को देखकर जी काँपता ही है । इस रक्तस्नान में से निकलकर मानवता क्या रुख लेगी, कहा नहीं जा सकता । पर रविबाबू से मन में दूसरा ही सवाल उठा है । जर्मनी रूस पर विजय पाने के लिए लाखों जानें खो रहा है और लाखों ले रहा है । अस्त्र-शस्त्र की हानि की तो गिनती ही क्या है ? लेकिन रविबाबू के निधन के बाद पत्र को देखने से जान पड़ता है कि उन्होंने एक मुल्क के नहीं, तमाम दुनिया के हृदय को जीता है । यह कैसे सम्भव हुआ ?

आज यही बड़ा सवाल है । जीतने की ठान ठानकर जब कोई चलता है तो देखा जाता है कि हर क़दम पर प्रतिरोध ह । मुल्क तो मुल्क आदमी से भी सीधे गर्दन नहीं झुकवायी जा सकती । शक्ति का ज़ोर दूसरी तरफ़ भी प्रतिरोध के ज़ोर को चलने देता है । कोई जीते जी बस में नहीं आना चाहता । ऐसे विजेता मुर्दों की खोपड़ियों पर खड़े होकर ही अपने को विजेता कह सकता है और उन खोपड़ियों के नीचे सुलगता हुआ वैर छिपा रहता है जिसमें से उस विजेता का कभी आगे जाकर शत्रु पैदा होता है । हमारी आँखों के आगे शक्ति का युद्ध चल रहा है, जहाँ चप्पा-चप्पा ज़मीन सैकड़ों-हज़ारों की जान बहाने पर ही जीती जा सकी है; फिर भी ज़मीन जीती जा सकी है, आदमी नहीं और वह विजय जाने किस छन पराजय बन जायेगी ! इसमें सन्देह है कि उस प्रकार की विजय विजेता के लिए भी गौरव की बात है ।

दूसरी ओर यह विजय देखता हूँ, जहाँ आपस में स्पर्धा है, कि हम अपनी श्रद्धा अधिक गाढ़ी दिखा सकें, जिस श्रद्धा के समर्पण में राजा-प्रजा, राजनीतिक और साहित्यिक सब एक हो गये हैं। पत्रों में देखा कि सरकार के प्रथम प्रतिनिधि वाइसराय के साथ सरकार के प्रथम विद्रोही गांधीजी की श्रद्धांजलि छपी है।

उस विजय के विस्तार की ओर मुझे नहीं देखना है। उसकी प्रकृति से ही मुझे काम है। और मैं मानता हूँ कि इस प्रकार की विजय चाहे फिर उसकी व्याप्ति कितनी ही स्वल्प हो, सैनिक विजय से चाहे फिर वह कितनी ही महान हो, मेरे निकट अधिक क़ीमती है। कोई चाहे साम्राज्य बना दिखाये और पृथ्वी-खण्ड के तमाम भूपतियों को परास्त करके एक-छत्र चक्रवर्ती क्यों न बन जाये, पर वह बिल्कुल दूसरी चीज़ है। वह विजय के पहले प्रकार से एकदम भिन्न है और उसकी समता नहीं कर सकती।

रवीन्द्रबाबू के उपलक्ष से मेरा ध्यान उसी पद्धति की ओर जाता है जिससे दूसरे के हृदय को जीता जाता है। मैं सचमुच मानता हूँ कि सैनिक बहादुरी के बड़े-से-बड़े कारनामे से बड़ा करिश्मा वह मालूम होता है जहाँ कि एक आदमी स्वेच्छापूर्वक दूसरे के आगे माथा झुकाता है; जहाँ जो माथा झुकाता है, वह अपने झुकने के कारण अपने को उतना ही धन्य भी अनुभव करता है। इस दुनिया में जहाँ अहंकारों की लड़ाई है, वहाँ इससे बड़ी और स्थायी वजह हो क्या सकती है कि आदमी अपने अहंकार को ऐसा जीते कि दूसरा कृतार्थ-भाव से आप ही उसके आगे झुक जाये। मैं मानता हूँ कि यह नैतिक विजय है।

हाथ की ताकत को हम जानते हैं, उसके असर को जानते हैं। बुद्धि की ताकत को भी हम जानते हैं और वह यूरोप की लड़ाई में देखी जा सकती है। पर रवि बाबू के उदाहरण में जो ताक़त काम कर रही है, वह दैहिक नहीं है, वह अस्त्र-शस्त्र की नहीं है और वह चतुराई की भी नहीं है। वह उनसे भिन्न है और अमोघ है। मैं उसको आत्मा की ताक़त कह सकता हूँ।

वह नहीं दीखती लेकिन कैसे कहा जाये कि वह नहीं दीखती? क्योंकि वह नहीं तो रवि बाबू के प्रति विश्व के हार्दिक शोकोद्गार में दूसरी और क्या चीज़ दीखती हुई मानी जा सकती है? कोई आतंक से विजय पाये, उन्होंने स्नेह से हृदयों को जीता और जो जीता गया, उसे पता न चला कि वह विजित है, बल्कि उसने भी वैसा ही आह्लाद अनुभव किया कि जैसे वह स्वयं विजेता हो। और यह सच है क्योंकि सचमुच उसने अपने अहंकार पर विजय पायी है।

एक कथा सुनी थी, कि एक मुनि से धोबी उलझ पड़ा। मुनि ने भी लिहाज़ न की। ऐसे जब मुनि पर मार पड़ी तो, उन्होंने ईश्वर को पुकारा। भगवान ने सेवकों को बुलाकर कहा—देखो, किसी मुनि पर संकट है, जाकर रक्षा करो। सेवक चला गया। लौटा, तो भगवान ने पूछा—क्या हुआ? सेवक ने कहा कि महाराज, दोनों की हाथापाई में मैं तो जान ही न सका कि कौन मुनि है और कौन धोबी?

यही बात है। असल युद्ध है मानव के भीतर के देवता का और दानव का। रवि बाबू की साधना देव-मार्ग की थी। इसीसे मैं मानता हूँ कि उसमें स्थायित्व है। मनुष्य जाति के विकास के इतिहास में उसकी गणना होगी। वह ऊँचा उठानेवाली है। उससे अहंकार को उत्तेजन नहीं मिलता। स्नेही की व्यथा ही और गंभीर हो रहती है। उससे आदमी में वज़न बढ़ता है और आपाधापी कम होती है।

प्रचार और अखबार के ज़माने में सहसा जान पड़ता है कि जीवन के महत्त्व-सम्पादन का उसे छोड़ दूसरा रास्ता नहीं है। जैसे नामवरी ही महत्ता है; पर रवीन्द्र के उदाहरण से यह प्रकट हो जाना चाहिए कि यह भ्रम है। अखबारी शोर सत्य को डुबाने के लिए और विज्ञापनवाली प्रसिद्धि असलियत को ढके रहने के लिए है। पर, सत्य के अपने ही नियम हैं और

महत्त्व अन्त में प्रकट होता ही है । प्रचार और डंके का शोर अपने सिवा कुछ भी और न सुनने देने की कितनी ही कोशिश किया करे, हृदय की मौन-वाणी हृदय को एक अलक्ष्य तार के सहारे मिल ही जाती है । उसमें रव कम है, इसी से प्रभाव अधिक है । शाब्दिकता कम है, इसीसे हार्दिकता उसमें से अनायास स्फुरित होती है ।

रवि बाबू की कविता के पीछे मैं मानता हूँ कि स्नेह की और सहानुभूति की वही गहन व्यथा थी । उसी सुर से उनके शब्द पाठक के हृदय में एक झनकार छोड़ जाते थे और पाठक अनायास उनका ऋणी बनता था । इसकी अपनेपन की गाँठ इस सहानुभूति के सन्देश से जैसे घुल रहती थी, और अपने को खो रहने से बड़ी आत्मोपलब्धि क्या है, उससे बड़ा दूसरा आह्लाद क्या है ?

मनुष्य की इस सहानुभूति पर तरह-तरह के अहंकारों की मर्यादा लदी होती है । कोई अपने सहधर्मी को प्रेम करता है, किन्तु उस प्रेम में ही शर्त बजती रहती है कि वह विधर्मी को न मिले । कोई देशवासी को स्नेह करता है, पर बस देश से बाहर के वासी को कहीं वह न पहुँच जाये । ऐसे जाति, संप्रदाय राष्ट्र-धर्म और इस तरह के नाना भेद-भिभेदों में मानव सहानुभूति का प्रवाह उलझकर रह जाता है । शायद रविबाबू इन उलझनों से उभर सके थे । वह हिंदुस्तानी थे और हिंदुस्तान गुलाम है; फिर भी उनमें क्षमता थी कि हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में अंग्रेज में जो प्रभुता का दंभ है, वह उनकी दृष्टि से नीचे रह जाये और उस अंग्रेज को वह अपना सहज स्नेह दे सके । मेरी कल्पना है कि रवि बाबू के उन्नत मस्तक को देखते किसी अंग्रेज को इस अहंगर्व में मदद नहीं मिली कि यह हमारा गुलाम है । इस तरह स्वयम् अंग्रेज़ को स्वतन्त्रता (क्योंकि सच पूछा जाये तो अंग्रेज आज स्वतंत्र नहीं हैं) का तथ्य अपनाने में उनसे मदद मिली । अंग्रेज़ आज उनसे सच्ची अंतर्राष्ट्रीयता सीख सकता है । वह चाहे तो उनके उदाहरण से अपनी संकीर्ण अंग्रेज़ियत से उद्धार पा सकता है ।

मैं मानता हूँ कि राष्ट्रीयता से अलग शुद्ध इन्सानियत का सदा पक्ष लेकर रवीन्द्र ने राष्ट्र और राष्ट्रीयता की बड़ी सेवा की । इसी से वह सच्चे राष्ट्र-प्रेमी थे, स्वयम् में स्वच्छ और अच्छे बनकर वह एक ही साथ सच्चे बंगाली, सच्चे हिंदुस्तानी और सच्चे विश्व-नागरिक हो सके । अंग्रेजी पर किसी से कम उनका अधिकार न था, फिर भी सदा उन्होंने बंगला में लिखा—जो भाषा कि उन्हें सहजप्राप्त थी । अपनी जमीन से, परम्परा से, अतीत से अपने को विच्छिन्न नहीं किया । किसी भाँति उन्हें कम आधुनिक नहीं कहा जा सकता, पर उन्हीं से हम उपनिषद-काल की झाँकी पा सकते हैं, युग उनसे बिछुड़ नहीं सकता, क्योंकि युग-युगानुमोदित सत्य में उनका अधिष्ठान था ।

हमारी राजनीति हिंसा को लेकर चले और अपने तात्कालिक प्रयोजन साधने की सोचा करे पर उसकी प्रगति उन मूलभूत आधारों से टूट नहीं सकती, जिनकी सत्यता का साक्ष्य अनादि काल से द्रष्टाओं की एक सतत परम्परा द्वारा हमको मिलता रहा है । प्रेम से विकास सधा है और हिंसा के ज़ोर से किसी वर्ग का प्रयोजन भले सधता दीखे मानवता के हित की तो उससे हानि ही हो सकती है । इससे उन्नति का मार्ग वही है जहाँ दूसरे के व्यक्तित्व का दमन नहीं किया जाता, अपने ही विकारों के शमन द्वारा दूसरों से साम्य और ऐक्य साधा जाता है । उसका नाम है अहिंसा; और संस्कृति यदि प्रगति कर सकी है या करेगी तो अहिंसा के ही द्वारा ।

अपनी इस प्रतीति द्वारा रवि बाबू की स्मृति में एक ऋणी मानव के नाते मैं अपनी श्रद्धा भेंट करता हूँ ।

दिल्ली
१२-८-४१

सप्रणाम आपका
जैनेन्द्रकुमार

सापेक्षतावाद

[किशोरलाल घ० मश्रुवाला]

सत्य, धर्म, सदाचार, नीति आदि अनेक विषयों में सापेक्षतावाद की दृष्टि से शंका उठाने की अेक वृत्ति इस ज़माने में कुछ ज़ोर से पैदा हुई है। जैनदर्शन के स्याद्वाद अथवा अनेकान्तिकवाद का ही वह अेक भिन्न रूप है। तलवार और सुई अेक दृष्टि से अेक ही चीज़ हैं और दूसरी दृष्टि से जुदी-जुदी चीज़ें हैं। इसलिअे, उन्हें एक कहने का आग्रह रखनेवाला भी ठीक कहता है, और भिन्न कहनेवाला भी ठीक कहता है, और दोनों गलत भी कहते हैं। इसलिअे निरपेक्ष दृष्टि से हमें न उन्हें अेक कहना चाहिअे, न भिन्न। यह इस तर्कश्रेणी का छोटा-सा रूप है। इसी तरह सापेक्षतावादी कहते हैं कि किसी आचार, विचार या उच्चार के विषय में हम निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते कि वह सत्य, धर्म, नीति आदि से युक्त है या असत्य, अधर्म, अनीति आदि से; क्योंकि सत्य, नीति, धर्म आदि का कोई निरपेक्ष नाप है ही नहीं। इस विचार से जब मैंने श्लील और अश्लील साहित्य में भेद करने की अपनी अेक दृष्टि पेश की, तब अनेक विद्वान् लेखकों ने मेरे नाप पर आपत्ति उठायी, और करीब-करीब यह सिद्ध कर बताया कि श्लील-अश्लील की मर्यादा समझने के लिअे हमारे पास कोई साधन ही नहीं है।

साहित्य-परीक्षण मेरा विषय नहीं है, और इत्तिफाक से ही मेरे सर पर यह चर्चा आ पड़ी। मुमकिन है कि मेरे उस लेख में कुछ विचार-दोष भी हो। और विचार-दोष न हो तो भी अन्य विचारकों का मुझसे प्रामाणिक मतभेद भी हो सकता है। कई विषय इस प्रकार के होते हैं कि जो सदैव चर्चास्पद ही रहते हैं, और कुछ हद तक चर्चा हो जाने पर अपना मत प्रकट करके मौन धारण करने में हरेक का सयानपन होता है। अपना कोई सम्प्रदाय बनाने की दृष्टि रखे बिना यदि अैसी चर्चा होती है, तो मतभेद होते हुअे भी परस्पर आदर और मैत्री का नाता कायम रहता है। इस दृष्टि से श्लील-अश्लीलता के विषय में मेरी विचारश्रेणी पर आपत्ति उठानेवाले मित्रों को जवाब देने की दृष्टि से कुछ लिखना मुझे उचित मालूम नहीं होता। यह लेख तो उस चर्चा में प्रकट किये गये सापेक्षतावाद का ही कुछ विचार करने के लिअे लिखा गया है। मेरे लेखों में हमेशा यह प्रयत्न रहता है कि विचारधारा चलाने की हमारी पद्धति स्वतंत्र, स्पष्ट और साफ हो और अनुभव के क्षेत्र में आनेवाली हो। कोई कल्पना, मान्यता, पूर्वाग्रह या वाद के आधार पर यथासम्भव न बनी हो। और जो निरपेक्षता अनुभव की मर्यादा से बाहर हो, उसे भी व्यवहार के लिअे काल्पनिक ही कहना चाहिअे।

यह बात सही है कि कई बातें अेक देश और काल याने परिस्थिति में सत्य, धर्म, नीति आदि से युक्त मानी जा सकती हैं, और दूसरी में विरुद्ध। लेकिन अैसी बात सिर्फ नैतिक विषयों में ही नहीं है। मामूली स्थूल पदार्थों के गुण-वर्णन में भी अैसा ही होता है। उबलता हुआ पानी, उबलते हुअे लोहे के रस की दृष्टि से बहुत ही ठंडी चीज़ है और जमाया हुआ पानी (बर्फ़) जमाये हुअे आक्सिजन के आगे बहुत गर्म पदार्थ कहा जा सकता है। फिर भी, किसी भी मनुष्य का बर्फ की गरमी से अपनी सर्दी उड़ाना या उबलते हुअे पानी को छूना सम्भव नहीं है। मनुष्य मात्र के लिअे निश्चयपूर्वक बर्फ़ बहुत ठंडा ही है, और उबलता हुआ पानी बहुत गर्म ही। ठंड और गर्मी सापेक्ष गुण होते हुअे भी मनुष्य की अपनी सहनशक्ति के नाप से बर्फ अति-शीतलता के प्रदेश में है और उबलता हुआ पानी अति-उष्णता के। अपने शरीर की उष्णता को नजर में रखकर उसने एक मापदण्ड बना दिया है और व्यवहार के लिए वही माप उसके लिए काफी ही नहीं, बल्कि अनिवार्य भी है। मनुष्यों की प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है, और हरेक का ठंड और

गर्म का निर्णय कुछ-कुछ भिन्न हो सकता है। लेकिन यह भेद अेक छोटे से न्यूनतम और अधिकतम स्थानों के बीच में ही रहता है। उदाहरणार्थ, खुशनुमा सर्दी की व्याख्या ४०° से ७०° अंश के बीच में हो सकती है, और गर्मी की ८०° से १००° अंश के बीच में। अैसा कोई आदमी मिलना संभव नहीं कि जो ३०° अंश उष्णता को असह्य गर्म बतावेगा, अथवा १३०° अंश की उष्णता को गर्म न समझेगा। और अनुभव से यह भी कहा जा सकता है कि साधारण तौर पर मनुष्य का सर्दी-गर्मी के फेरफारों की सुखपूर्वक बरदाश्त करने की मर्यादा ६५° से ८५° अंश तक की है। बहुतेरे ६५° से नीचे कुछ ही सर्दी महसूस करेंगे, और ८५° के ऊपर गर्मी। तब मोटेरूप में और आम जनता को नज़र में रखकर यह कहने में आपत्ति नहीं कि हवा में शीतोष्णता की सुखप्रद मात्रा ६५° से ८५° अंश है। इसलिअे 'बराबर-हवा-गर्मी' (अेयर कंडिशंड) मकानों में अक्सर ७०° से ७५° अंश तक गर्मी रखने का इंतज़ाम किया जाता है। ६५° और ८५° जैसे हम कुछ निश्चित आँकड़े दे सकते हैं, क्योंकि हमने अेक थर्मामीटर बना रक्खा है। पर जब थर्मामीटर की भाषा मालूम न हो तब भी मनुष्य का स्वानुभव का अेक अंक-शून्य मापदण्ड होता है। अंकों की परिभाषा में वह नहीं बोल सकता। लेकिन इसके माने यह नहीं कि मोटेरूप में उसे उसकी कोई कल्पना ही नहीं। हरेक को उसकी कल्पना है तभी तो दो मित्र मिलते ही 'आज बहुत गर्मी है, आज ज्यादा सर्दी है, आज बहुत अच्छा दिन मालूम होता है, अब ठंड उड़ गयी, अब गर्मी पड़ने लगी है' आदि कहते हैं। हरेक का ठंड-गर्मी का नाप कुछ अंश में अलग-अलग होते हुअे भी, अेक मोटे तौर पर समान अनुभव है, और उस समान अनुभव पर वे व्यवहार कर सकते हैं। यह सब भाषा सापेक्ष गुणों के बारे होते हुअे भी सभी ने अेक समशीतोष्ण माध्यम माना है, और अेक दूसरे को समझने के लिअे वह काफी मालूम होता है।

इस जमाने के वैज्ञानिकों ने ताप के निरपेक्ष शून्यांश का भी अेक स्थान माना है। पानी के शून्यांश से ३७३° अंश वह नीचे है। लेकिन संभव है कि आये जमाने में वह भी सापेक्ष ठहराया जाय। लेकिन मानव व्यवहारों में आज का भी निरपेक्ष शून्यांश का माप-दंड रोज के कामों में उपयोग में लाया नहीं जा सकता। रोज के कामों में तो शीतोष्णता का जल पर जो असर होता है, उसी को नजर में रखकर बनाया हुआ थर्मामीटर इस्तेमाल किया जाता है, और वह काफी उपयोगी मालूम होता है।

इसी तरह क्या सत्य है क्या असत्य, क्या नीति है क्या अनीति, क्या सदाचार है क्या दुराचार, क्या श्लील है और क्या अश्लील आदि में निरपेक्ष सत्य, नीति, सदाचार, शील आदि की व्याख्या खोज सकें तो भले ही वह प्रयत्न किया जाय। लेकिन उसके अभाव में, चाहे वह विशिष्ट देशकाल के मानवों के लिअे ही क्यों न हो, यदि हम एक व्यवहारोपयोगी साधारण मानवों के अनुभव के क्षेत्र में आनेवाले मापदंड की व्याख्या बना लें, तो वह काफी है।

कला या साहित्य के अेक नमूने का अेक बिलकुल ही बालबुद्धि, मूढ़ अथवा अत्यंत स्थिरबुद्धि ज्ञानी के दिल पर क्या असर होता या नहीं होता, ये दोनों सिरे छोड़ देने चाहिअे। वे थर्मामीटर के शून्यांश और २१२° हैं। जिस तरह साधारण मानवों के लिअे सुखपूर्वक उपभोग्य सर्दी-गर्मी ६५° से ८५° के बीच में की है, उसी तरह उनके लिअे निर्दोष कला और साहित्य की अनुभव के क्षेत्र में आनेवाली अेक मर्यादा बनायी जा सकती है,और वह व्यवहार के लिअे काफी है।

मैंने श्लील-अश्लील ठहराने की जो व्याख्या बनायी, वह व्यवहारोपयोगी है या नहीं, इसका विचार किया जाय। साहित्य और कला का उपभोग करनेवाले कोई अत्यन्त बालबुद्धि, मूढ़ या अत्यन्त स्थिरबुद्धि ज्ञानी नहीं होते। वे संसार में रचे-पचे हुअे साधारण लोग होते हैं। उनके दिल में कुछ न कुछ भाव पैदा करने के लिअे

ही साहित्य और कला का सर्जन होता है। उसे करनेवाले भी कुछ न कुछ भावों से हिले हुअे होते हैं। भाव ज्ञानतन्तुओं द्वारा होनेवाला अेक शारीरिक फेरफार है। शरीर पर अनेक तरह के परिणाम हो सकते हैं। उनमें से अेक परिणाम काम-प्रकोप का भी है। यह कोई काल्पनिक वस्तु नहीं है, प्रत्यक्ष अनुभव की चीज़ है। अेक साहित्य या कला का सर्जन करने तथा उपभोग करनेवाले सौ या हजार साधारण मनुष्यों के दिल पर उसका क्या असर होता है अथवा होना संभव है, इसका पता लगाना मुश्किल नहीं है। (मैं जान-बूझकर 'प्रकोप' शब्द लिख रहा हूँ, और उसी अर्थ में जैसे पित्त-प्रकोप कफ-प्रकोप आदि इस्तेमाल किये जाते हैं।) यदि साधारण जन कहे जानेवाले कर्ता और भोक्ता में से किसी को भी वह काम-प्रकोप करानेवाली चीज़ है अथवा होना सम्भव है तो वह अश्लीलता के क्षेत्र में आनेवाली चीज है।

इसी तरह साधारण जनों के लिअे उपयुक्त होनेवाली सदाचार-दुराचार, नीति-अनीति, सत्य-असत्य आदि की व्याख्याएँ बनाना मुश्किल नहीं। उदाहरणार्थ,आत्म-बल (सोल फोर्स या स्पिरिचुअल फोर्स) और नीति-बल (मौरल फोर्स) का इस तरह भेद और लक्षण किया जा सकता है : जो बल एक मनुष्य को किसी उद्देश की सिद्धि के लिअे अपने सुख-संपत्ति और प्राण तक का बलिदान देने की शक्ति देता है, वह आत्म-बल है। और जो बल एक मनुष्य को सुख-संपत्ति की प्राप्ति और प्राण की रक्षा करने के प्रयत्नों में कुछ मर्यादा बाँधकर, प्रलोभन होते हुअे भी उस मर्यादा को न छोड़ने की ताकत देता है, वह नीति-बल है। इसपर से कह सकते हैं कि सत्य और नीति वे चीज़ें हैं जो क्रमशः आत्म-बल और नीति-बल, याने मनुष्य की बलिदान और संयम शक्ति, को बढ़ाती हैं और असत्य तथा अनीति वे जो उन्हें घटाती हैं। ये व्याख्याएँ वैज्ञानिक की दृष्टि से सापेक्ष जरूर हैं। लेकिन इसलिअे वे बेकाम की नहीं। ये नाप हमारे अनुभव की कक्षा में आते हैं, और सब समझ सकते हैं।

हमारे धार्मिक साहित्य और कला में भी अश्लील चीज़ें भरी पड़ी हैं। उन्हें धार्मिक श्रद्धा के साथ जोड़ दिया गया है इसलिअे सज्जन और सदाचारी भक्त भी उनका गौरव करते हैं, और उसकी अश्लीलता के प्रति दुर्लक्ष करते हैं जो विचारन्यूनता का ही एक परिणाम है। सुना है कि वारांगनाएँ भी तो धार्मिक साहित्य और कला की चीज़ें ही अपने ग्राहकों के आगे पेश करती हैं। उनका हेतु निश्चय काम-प्रकोप कराने का ही होता है, और वे इन चीज़ों को उसके लिअे उपयुक्त समझती हैं, तभी तो इनका आश्रय लेती हैं। दंभी और पाखण्डी गुरु क्यों अपनी शिष्याओं के साथ कृष्ण-गोपी का अनुकरण करते हुअे पाये जाते हैं? धर्म के नाम पर साहित्य और कला में अश्लील चीज़ें पैठी हुई हैं, तभी तो वे उसका अनुचित लाभ उठाते हैं। ये चीज़ें धार्मिक साहित्य और कला में होने के कारण ही मैं उन्हें शुद्ध, निर्दोष, या श्लील कहने के लिअे तैयार नहीं हूँ; बल्कि मैं कहूँगा कि कृष्ण-गोपी और दूसरे भी देवों के अैसे शृंगार-वर्णन और उसे युक्त मनानेवाले तत्त्व-विचार ने हमारी संस्कृति और समाज में बहुत कुछ अपवित्रता और गंदगी फैला दी है, और हमारे समाज को बहुत गिराया है।

यह प्रतिपादन करने के लिअे कि "अैसा साबित किया जा सकता है कि जो कुछ होता है वह ठीक ही है" हमें सापेक्षतावाद का उपयोग न करना चाहिअे। मेरी राय में उसका उपयोग सिर्फ समभाव से दूसरे पक्ष का दृष्टिबिन्दु समझने के लिअे और उसकी या हमारी कहाँ भूल होती है, यह खोजने के लिअे है। स्याद्वाद का भी उपयोग यही है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

[प्रभाकर माचवे]

उनके व्यक्तित्व में उनकी कविता घुली-मिली है। जैसा व्यक्तित्व, वैसा काव्य : सीधा-सादा, बाह्यावरण से मुक्त, नियमित, छन्दोभंग से सतर्क, सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिये सदैव विनत श्रद्धा की अखंड ज्योति साथ लिये हुए, प्रदीर्घ मुक्तक की सृष्टि के लिए आवश्यक मधु-मक्खी जैसीअनवरत श्रम-पूजा—ये ही कुछ शब्द हैं जिनमें हम चाहें तो उस महाप्राण व्यक्तित्व को बाँधें।

एक बार किसी को गुप्तजी के ग्रंथों की संख्या देखकर विनोद में सूझा था कि यदि उनकी सब रचनाओं की एक-एक प्रति लेकर उसका 'पिरा-मिड' बनाएँ और अगर गुप्तजी उसके पास बैठें तो निश्चय वह पुस्तक-राशि उनसे ऊँची निकल जायेगी। न केवल संख्या और परिमाण में, वरन् सांख्य और परिणाम में भी उनकी कृतियों की ऊँचाई उनसे बड़ी है। और कवि को 'मनीषी परिभूः स्वयम्भू' इसीलिए कहा गया है।

हिन्दी-पत्रों में चर्चा उठती है कि गुप्तजी हमारे राष्ट्रीय कवि हैं या जातीय या प्रान्तीय! बड़ी अज्ञानमूलक चर्चा है। गुप्तजी हमारे कवि हैं, यानी इस ऐतिहासिक या भौगोलिक काल-विभाजन से परे मानवता का जो तत्त्व है उसके वे कवि हैं। गुप्तजी ने राष्ट्रीय तो अधिकांश लिखा ही है। 'भारत-भारती' अभी भी भारत की भारती है, 'प्रालेतारिया' आख्यानक है। साहित्य-सम्मेलन की साहित्य-परिषद के सभापति पद से कहा गया था कि गुप्तजी और प्रेमचन्दजी का युग बीत गया! बीत गया हो, गुप्तजी तो अब भी वैसे ही हैं, और युग के साथ हैं। या उनकी गिरफ्तारी ही पर कहें, वे अधिक युग के साथ हैं। 'जातीय' उन्हें कहना उनके साथ अन्याय होगा। हिन्दू वीरों के और नायकों के चरित उन्होंने अधिक गाये हैं, मगर ईसा पर भी कविताएँ लिखी हैं; हसन-हुसैन पर भी शायद लिख रहे हैं; और उमर खय्याम का भी अनुवाद किया है। और मुन्शी अजमेरी आपके कैसे अभिन्न थे यह कौन नहीं जानता? जिसे संस्कृति मात्र में रुचि होती है, उसे यह-या-वह संस्कृति कोई माने नहीं रखती, उसे सब एक-सी वंद्य हैं। प्रान्तीयता उन्हें छू तक नहीं गयी; सब प्रांतों के वीरों उन्होंने पर रचनाएँ लिखी हैं—बाजीप्रभु, सिद्धराज, पलासीर युद्ध (अनुवाद)!

गुप्तजी पर प्रायः यह आक्षेप लगाया जाता है कि वे गद्यात्मक हैं। मैं स्वयम् विद्यार्थीकाल में निरी कोमल-कान्त-पदावलीवाली निरर्थक भावुकता की छाया-माया को कविता समझता था, गुप्तजी को ऊँचा कवि मानने के लिए तैयार नहीं था। मगर फिर मैंने पढ़े अभिजात (क्लासिक) कवि। इनके अलावा मैंने अंग्रेजी में 'पोप' भी पढ़ा, मराठी में चन्द्रशेखर और मोरोपंत, और गुजराती में नान्हालाल। मुझे याद आता है, आदरणीय सन्मित्र श्री शान्तिप्रसाद वर्मा ने एक बार 'हंस' में मैथिलीशरणजी की बड़ी अच्छी तुलना उर्दू के विख्यात 'मुसद्दस'-कार हाली से की थी। गुप्तजी में वे ही सब गुण हैं जो एक अभिजात, आख्यान-कार में आवश्यक हैं। आख्यान पद्यबद्ध करते समय कई कड़ियाँ निरी वर्णनात्मक-इतिवृत्तात्मक हो जाना स्वाभाविक ही है। परन्तु 'जयद्रथ-वध' से 'यशोधरा' या 'द्वापर' में आकर, इतिवृत्तकार की गद्यात्मकता से और भावुक छायावादी की निरर्थकता से बचने की एक यत्नसाध्य सतर्कता दीखती है। और जो कविता को स्वप्निल और आसमानी ही बनाये रखना चाहते हैं, उन्हें यह सतर्कता गद्यात्मक जान पड़ सकती है। परन्तु जग-जीवन गद्य है, युग कठोर है, और क्या स्वप्न-पूजा ही कवि-कर्म रहेगा? कवि-कर्म तो विशाल शिल्प कृति है; और गुप्तजी की कौन-सी कृति किसी गुहास्थित विराट् मूर्ति-अंकन से कम अध्यवसाय और एकनिष्ठता से भरी है?

चिरगाँव का यह अचिर काव्य-स्रष्टा जन्म से वणिक्-कुल का, धर्म से वैष्णव और व्यवसाय

से एक प्रेस का संचालक है। वह स्वयम् अपना प्रकाशक है। पर आज की आर्थिक भगदड़ की दुनिया में आप किस वणिक् से निम्न पंक्तियां की उपेक्षा कर सकते हैं ?

दोनों ओर प्रेम पलता है !
काम नहीं, परिणाम निरखता,
यही मुझे खलता है।

'साकेत' में उर्मिला को प्राधान्य देने पर गांधीजी ने गुप्तजी को प्रेमभरा उलहना दिया था। पर गुप्तजी की महानता शायद इसी में है कि जैसे रामायण में उर्मिला, उसी प्रकार जीवन में जो उपेक्षित, दलित, वंचित-मुंचित वर्ग है उसको अपनी रचना में उन्होंने सम्मान का स्थान दिया है—'किसान' 'अछूत'।

खद्दर का घुटनों तक का कुर्त्ता, बुंदेलखण्डी पगड़ी, ऐनक तो कभी पढ़ते वक्त लगाते। बीच में तो खशखशी दाढ़ी भी रख ली थी। अत्यधिक नम्रता से भरी बातचीत, परन्तु पुस्तकों पर सम्मतियाँ देते समय निर्मम संयतता – यह नहीं कि आशीर्वाद पर प्रशंसा की चाहे-जैसी पंक्तियाँ लिख दें। कुशाग्र-जिज्ञासु, अभ्यासी वृत्ति, मितभाषी, 'भज्जा' से बोलते समय प्यारी बुंदेलखंडी बोल-भाषा का प्रयोग। प्रथम दर्शन में एक भोला गँवई किसान। पर इस किसान ने 'किसान' काव्य की कृषि की।

गुप्तजी के अनुज का उल्लेख किये बिना, उनपर शब्द-चित्र पूरा बनता नहीं; क्योंकि सियारामशरण का अपना व्यक्तित्व है, तो भी उनपर अपने अग्रज की पूरी छाप है। सियारामशरण में मैथिलीशरण से अधिक आधुनिकता है। दोनों ध्येयवादी हैं। 'है हमारे अर्थ बस आदर्श ही आराध्य।' दोनों की निर्मल-हृदयता उनकी बाह्य सादगी और ग्रामीणता में इस प्रकार प्रसुप्त है, जैसे चट्टानों में छिपा हुआ उत्स या झाड़ियों में ओझल बेतवा।

हाल में गुप्तजी के साथ जो कुछ हुआ है, सब जानते हैं। इससे मुझे गुप्तजी की 'व्यास-स्तवन' नामक कविता की एक कड़ी याद आ रही है—

करने को तव सन्मार्ग लुप्त
हैं हुए यत्न बहु प्रकट-गुप्त।
वे हुए किन्तु निष्फल, निषिद्ध,
हो क्योंकर सत्य, असत्य सिद्ध।

वरन् हथकड़ियाँ और कविता की कड़ियाँ– इनकी साझेदारी पुरानी है और कवि की वाणी के लिए कैद कैसी ? कविता की कड़ियों के लिए कोई हथकड़ियाँ बनाये ऐसे संशोधक या वैज्ञानिक की अभी दुनिया में कमी है।

गुप्तजी बन्दी हैं। पर गुप्तजी के जो चाहनेवाले हैं, आप और हम, क्या उनके कारावास की खबर को चुपचाप पी डालें ? साहित्य-सम्मेलन के लिए यह एक गौरव का इतिहास होना चाहिए कि उसके सभापति कारावासी रहें : गतवर्ष संपूर्णानन्द, इस वर्ष गुप्तजी, आगामी वर्ष राहुल सांकृत्यायन। सम्मेलनवालों ने इस खबर को सुनकर एक अक्षर भी वक्तव्य प्रकाशित किया ? और हम सम्मेलनों में व्यासपीठ पर चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं—

हिन्दी राष्ट्रभाषा है !

राष्ट्र-भाषा की जय ! राष्ट्रकवि की जय !!

शांति-प्रार्थना

समुखे शांतिपारावार : भासाओ तरणी, हे कर्णधार !

तुमि हबे चिरसाथी
लओ, लओ हे, क्रोड़ पाति
असीमेर पथे ज्वलिबे ज्योतिर ध्रुवतारका
मुक्तिदाता, तोमार क्षमा, तोमार दया
हबे चिरपाथेय चिरयात्रार

हय जेन मर्तेर बन्धन क्षय
विराट विश्व बाहु मेलि लय
पाय अन्तरे निर्भय परिचय
महा अजानार !

—रवींद्रनाथ ठाकुर—

पत्र-पत्रिकाओं में लेखकों के चित्र

[डॉ० सत्यप्रकाश]

मैं समझता हूँ कि जिस प्रकार प्रत्येक नवयुवक लेखक की प्रवृत्ति होती है, आज से १३-१४ वर्ष पूर्व मेरी भी आकांक्षा थी, कि लेखों के साथ मेरा भी चित्र पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो। परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के उपरान्त नव-उपाधि-विभूषित विद्यार्थियों के हृदय में भी एक लालसा होती है कि वे अपने स्नातक-वेश में अर्थात् गाउन में चित्र खिँचवावें। एम० एस-सी० होने के बाद मैंने भी इस लालसा की पूर्ति की। 'प्रतिबिम्ब' नामक कविता संग्रह में मैंने अपने इस स्वरूप को मुद्रित भी करा डाला। उसके बाद मेरा पहला चित्र 'सुधा' के एक विशेषांक में एक लेख के साथ छपा। इन दो अवसरों के उपरान्त चित्रों और प्रतिच्छायाओं से मुझे ऐसी उपेक्षा हो गयी कि आजतक मेरी प्रवृत्ति चित्र खिचवाने और उनको छपवाने की ओर नहीं होती।

एक और अवसर ऐसा आता है जब लोग चाव से अपना चित्र खिंचवाते हैं, और वह अवसर है अपनी सहचरी के साथ विवाह का। पर कभी-कभी पत्नी का आग्रह होने पर भी मैं अबतक इस प्रलोभन से बच सका हूँ। यूनिवर्सिटी और कुटुम्ब के सामूहिक चित्रों में औरों की खातिर मुझे अवश्य सम्मिलित होना पड़ा है। गत वर्ष एक महा विपदा आयी थी। पूना साहित्य-सम्मेलन की विज्ञान-परिषद् का मैं अध्यक्ष बनाया गया। मैं जानता था कि ऐसे अवसरों पर बचना कठिन है; हुआ भी ऐसा ही। यह मेरी प्रतिच्छायाओं का एक छोटा-सा इतिहास है। "सुधा"-वालों के पास १२ वर्ष पुराना मेरा ब्लाक है, और वह आजतक छपता आ रहा है। लोगों के आग्रह भी विचित्र होते हैं। मेरे पास अपना अकेला कोई चित्र नहीं, मेरे रूप में कोई विशेषता नहीं—किसी का सुन्दर चित्र छाप दीजिए, मेरे चित्र का स्थान रिक्त रहने दीजिए आदि उल्टी-सीधी बातें कहकर पीछा छुड़ाना पड़ता है। न मेरे पास चित्र होगा, और न यह विपदा उपस्थित होगी—इस सिद्धान्त ने मेरी बहुत कुछ रक्षा की है।

हिन्दी-पत्रिकाओं में लेखों के साथ चित्र छापने की प्रथा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। विशेष लेखकों के परिचय-सहित चित्र 'सरस्वती' 'प्रभा', 'शारदा' आदि पुरानी पत्रिकाओं में यदा-कदा पहले भी छपते थे, पर उतनी प्रचुरता से नहीं, जितनी कि आजकल। हिन्दी की पत्रिकाओं के इतिहास में 'माधुरी' और 'चाँद' ने विशेष परिवर्तन उपस्थित किया। 'माधुरी' में दुलारेलाल-जी ने नये और पुराने लेखकों को धूम-धाम से जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। तब से अब मैं देखता हूँ कि लेखों के साथ लेखकों के चित्र प्रचुरता से छापे जाने लगे हैं।

लेखकों के चित्र छापने से कई लाभ भी हैं। लेख के पीछे लेखक का एक व्यक्तित्व होता है, और यह व्यक्तित्व लेखक के स्वरूप से भी प्रतिभासित होता है। ऐसी अवस्था में लेखक का चित्र देखकर हमें लेख और लेखक के व्यक्तित्व में समन्वय करने का अवसर प्राप्त होता है। एक रहस्यवादी कवि के चित्र से छिछोरापन या छैलापन व्यक्त होने पर हम सहसा यह धारणा बना सकते हैं कि इसने रहस्यवाद को अपने जीवन का विषय नहीं बनाया है, उसकी रचना हृदय से प्रवाहित नहीं हुई, उसकी मुखाकृति रचना में समन्वय नहीं पा रही है। लेखक के चित्र का वातावरण भी इस प्रकार के अनुमानों में कुछ सहायता दे सकता है। निसर्ग-प्रेम से परिप्लावित कविता या लेख के साथ सजे-सजाये ड्राइंगरूम की सामग्री से सम्पन्न चित्र हृदय को आघात पहुँचाता है। हमारे लेखकों में विरोधाभास की सामग्री अधिक पायी जाती है। कवियों में यह बात पराकाष्ठा को पहुँच गयी है। तारों की विरदावली गानेवाले कितने कवि ऐसे हैं जो तारों को देखकर सहसा मुग्ध हो जाते हों! संभवतः उन्होंने नीलाकाश और तारों का

विवरण रजाई में दुबके हुए कमरे में खाटपर लेटे-लेटे लिखा हो। कुएँ पर जल भरनेवाली युवती की अपेक्षा उन्हें ताँगे पर जाती हुई विश्व-विद्यालय की बाला अधिक आकर्षक प्रतीत होती होगी, फिर भी कवि और चित्रकार अब भी प्रथावश पहले का ही अधिक चित्रण करते आ रहे हैं। लेखों के साथ छपे हुए लेखकों के चित्र इस प्रकार के विरोधाभासों के अध्ययन में कभी-कभी सहायता दे जाते हैं।

पर यह बात सदा ठीक नहीं उतरती। यदि किसी पत्रिका के संचालक ने लेखक का एक चित्र प्राप्त कर लिया और उसका यदि एक बार ब्लाक तैयार हो गया तो वह चित्र वर्षों छपता रहता है। ऐसा होने से कभी-कभी मनोरञ्जक घटनाएँ भी देखने को मिल जाती हैं। मेरे पिताजी (श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय) के कुछ वर्षों पूर्व तक मूँछें थीं। बाद को मूँछों को तिलाञ्जलि दे दी गयी। पर पत्रिकाओं के चित्रमय जगत् में बहुत दिनों बाद तक ये मूँछें ही छपती रहीं। हमारे एक लेखक को बड़े-बड़े बाल रखने का शौक था, और उस समय चित्र खिंचवाने का भी, बाद को उनके बाल छोटे हो गये, और संभवतः नये चित्रों के ब्लाक बनवाने का अवसर भी नहीं मिला। फलतः उनका मुंडन हो जाने के उपरान्त भी चित्रों में उनके सुन्दर केश छपते रहे। दूसरे एक मित्र कुछ दिनों पहले दुबले-पतले थे, पर आगे चलकर उनका उदर उनके वश से बाहर हो गया। पत्रिका के संचालक के पास अब भी वही पुराना चित्र है (चित्र का ब्लाक है) और वह छपता आ रहा है। एक सूट-बूटधारी सज्जन बाद को खद्दरधारी हो गये। राहुल सांकृत्यायन जी ने संन्यास-वेश त्यागकर गृहस्थ-धर्म धारण कर लिया, पंतजी ने लम्बे केशों को विदाई दे दी, पर अबतक छपनेवाले बहुत से चित्रों में उनका ही पहले का ही रूप है।

स्वर्गीय ० श्रीधर पाठकजी के मस्तक पर एक स्पष्ट गुलथी थी; पर चित्रकार से आग्रह करके उन्होंने उसे मिटवा दिया। वृद्धावस्था में भी उन्हें अपने यौवन का चित्र छपवाना संभवतः अधिक रुचिकर रहा। प्रत्येक प्रौढ़ आयु के लेखक की यह आकांक्षा रहती है कि चित्र में तो कम-से-कम वह युवा प्रतीत हो। यदि चित्रकार उनके बुढ़ापे को छिपाने में सफल न हुआ, तो उसे कुशल कलाकार माना ही नहीं जाता। मानों लेखों के साथ चित्रों का छपवाना भी अपने विवाह का विज्ञापन देना है।

हिन्दी-साहित्यिक जगत् में फोटो-एजेन्सी का सर्वथा अभाव है। पत्रिकाएँ लेखकों के नये-पुराने चित्रों देकर अपने को 'सचित्र' बना लेती हैं। इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि प्रमुख लेखकों के नये-से-नये चित्र प्राप्त हों जिनसे उनके जीवन के अध्ययन में सहायता मिले। पत्रिकाओं में पारस्परिक सहयोग हो, और एक चित्र के पाँच-छः ग्राहक मिल जायें, तो कुछ फ़ोटो-प्रेमी ऐसे चित्रों को प्राप्त करने में सहायता दे सकते हैं। इसका व्यवसाय भी चल सकता है। गुप्त, हरिऔध, जैनेन्द्र, पन्त, महादेवी, निराला, उग्र, वर्मा, वाजपेयी, बच्चन आदि के ताज़े फ़ोटोग्राफ न केवल पत्रिकाओं के हाथ बेचे जा सकते हैं, प्रत्युत अन्य साहित्य-प्रेमी और साहित्यिक चित्रों संस्थाएँ भी इन्हें ले सकती हैं। लेखकों के के एलबम भी फिर सस्ते तैयार हो सकते हैं।

ताज़े चित्र किस प्रकार के हों, इस बात में भी सावधानी रखनी चाहिए। उग्रजी के इधर कुछ चित्र पत्रिकाओं में देखने को मिले—उनमें एक विशेष जीवन है। निराला के साथ भी परिहास किया गया है—उनकी नंग-धड़ंगी वक्षीय बस्ट भी कौतूहलजनक है। इस सम्बन्ध में कोई नियम तो नहीं बनाया जा सकता; पर हाँ, इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चित्र सुरुचिपूर्ण हों, और जीवन की विशेषताओं को व्यंजित करनेवाले हों, अथवा उनमें और कोई विशेषता हो। किस अवसर का चित्र खींचा जाय, यह जानना कलाकार का काम है, और हमें आशा है कि हमारे फ़ोटो-कलाकार अपनी कुशलता का अवश्य परिचय दिया करेंगे।

रवीन्द्रनाथ का हिन्दी कविता पर प्रभाव

[सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला']

उपसर्ग से धातु का अर्थ जिस तरह भी परिवर्तित हो, 'प्र' का प्रयोग प्रकृष्ट अर्थ में भी आता है। प्रभाव को यहाँ हम विशद भाव में लेते हैं। सापेक्षता के बिना किसी भी वस्तु या विषय का अस्तित्व, विकास, परिणति, विवेचन सिद्ध नहीं हो सकता। हिन्दी-काव्य के लिए इसी तरह, प्रतिभा, विकास, अध्ययन, पर्यवेक्षण, विशालता, सूक्ष्मता, कला, सौन्दर्य आदि गुणों के आधार रवीन्द्रनाथ की किरणों की सापेक्षता आवश्यक थी। महत् की तरफ़ खिचने के प्राकृतिक नियम को लघु तोड़ नहीं सकता।

प्राचीन हिन्दी अर्थात् ब्रजभाषा-अवधी की जैसी सम्पत्ति प्राचीन बंगाल में नहीं, इसीलिए, अथवा उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार राम और कृष्ण की भूमि की संस्कृति की रक्षा के लिए या कान्यकुब्ज और इन्द्रप्रस्थ की बाहरी सभ्यता को अपनी सभ्यता मानकर उसके चिन्ह अपने में डाल रखने के कारण, बंगला हिन्दी से प्रभावित हुई थी। अंग्रेजी आधिपत्य के होने पर किस तरह साहित्यिक रुचि बदली—इसके विवेचन को विद्वानों की नज़र कर हम इस विषय पर उतरते हैं कि हिन्दी नये रूप से निखरती हुई, बंगला की सहकारिता लिये हुए रस, ध्वनि अलंकार आदि की पुरानी परिपाटी छोड़कर कला की नयी आँखों से देखती है। बंगला की अनुवादातिशयता के प्रमाण पार कर हम कहेंगे हिन्दी की आधुनिक छायावादी कविता अपनी मौलिकता से पल्लवित होती हुई भी रवीन्द्रनाथ की किरणों का राज्य पार नहीं कर पाती, यह अधिकांश आलोचकों का मत है। इसमें सन्देह नहीं कि इन आलोचकों की आँखों में जितनी छायावाद की चकाचौंध है, उतना रवीन्द्रनाथ की रचना का प्रकाश नहीं; ये बंगला के जितने गहरे पानी में रवीन्द्रनाथ की छप्परवाली नाव खेते हैं, उतने में नाव चलती ही नहीं—घिसटती है; जो अंग्रेजी की लकड़ी टेककर रवीन्द्रनाथ की कविता की मंजिल तै करते हैं, ये असाध्य-साधन करते हैं। जो मर्मज्ञ हैं, उन्होंने देखा है, फूल की शोभा वृन्त पर है। फिर भी प्रभाव पड़ता है, जैसे कालिदास का जयदेव पर, बिलकुल बदला हुआ, शेक्सपियर का कीट्स पर; रवींद्रनाथ का हिन्दी की कविता पर सुन्दर दिव्य स्वप्न की तरह।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखक कहते हैं, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ की 'चित्रांगदा' का अनुवाद पहले हुआ गोपालराम गहमरी द्वारा। इसके पश्चात पं० रूपनारायणजी पाण्डेय ने 'राजा-रानी' का पद्यात्मक अनुवाद किया। पं० गिरिधर-जी शर्मा 'नवरत्न' ने कवीन्द्र की कुछ स्फुट कविताओं का अमित्र छन्द में अनुवाद किया। इसी समय सुप्रसिद्ध कलावेत्ता साहित्यिक राय कृष्णदासजी की 'साधना' निकली। इसकी मौलिकता ने हिन्दी-भाषियों को मुग्ध कर दिया। यह गद्य-काव्य है, पर काफी सफल। हिन्दी के इतिहास-लेखकों का कहना है, इसपर रवीन्द्रनाथ की अंग्रेजी 'गीतांजलि' का प्रभाव प्रत्यक्ष है। इसके साथ-साथ हिन्दी के नवीन काव्य के प्रवर्तक कवि 'प्रसाद' जी का हिन्दी में आगमन होता है। पहले 'प्रसाद' जी ब्रजभाषा में कविता लिखते थे; रवीन्द्रनाथ के नोबेल पुरस्कार मिलने के बाद से या कुछ पहले से रहस्यवादी रचनाएँ करने लगे।

कुछ उद्धरण देता हूँ—

रवीन्द्रनाथ—

"महाराज, कोनो राज्य कोनो दिन
पारे नाइ तोमारे धरिते;
समुद्रस्तनित पृथ्वी, हे विराट,
तोमारे भरिते
नाहीं पारे,
ताइ, ए धरारे
जीवन-उत्सव-शेषे दुइ पाये ठेले
मृत्पात्रेर मत जाओ फेले।

तोमार कीर्तिर चेये तुमि जे महत्,
ताइ तव जीवनेर रथ
पश्चाते फेलिया जाय कीर्तिरे तोमार, बारम्बार।
ताइ
चिन्ह तव पडे आछे तुमि हेया नाइ"

—'प्रसाद' जी का ऐसा ही भाव—

"चढ़कर मेरे जीवन-रथ पर
प्रलय चल रहा अपने पथ पर,
मैंने निज दुर्बल पदबल पर
उससे हारी होड़ लगाई।'

एक दूसरा भाव रवीन्द्रनाथ और सुमित्रानन्दन पंत का

रवीन्द्रनाथ—

"द्विधाय जड़ितपदे कम्पवक्षे नम्रनेत्रपाते
नाहि चल सलज्जित वासरशय्याते
स्तब्ध अर्धराते।"

पंत—

"अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात,
विकम्पित मृदु उर पुलकित शान्त,
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ितपद नमितपलक दृगपात,
पास जब आ न सकोगी प्राण,
लाज की छुईमुई-सी म्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण,

एक और भाव रवीन्द्रनाथ की इसी उर्वशी से—

मुक्तवेणी विवसने विकसित विश्ववासनार
अरविन्द, माझखाने पादपद्म रेखेछ तोमार
अतिलघुभार।

पंत--

अये, वेदनाविकच विश्व का मानस-शतदल
छान रहे हो कुटिल काल-कृमि से घुस पल-पल।

रवीन्द्रनाथ से मैंने कुछ अनुवाद किया है; अपनी कविता में कुछ भाव लिये हैं। उन्हें मनोयोग से पढ़ने के कारण मेरे अज्ञातभाव से भी रवीन्द्रनाथ के भाव आगये होंगे। एक उद्धरण—

कितने ही बन्दों में कितने छंदों में वह लडी गई,
कितने ही ग्रन्थों में कितने पन्थों में है पढ़ी गई।

हिन्दुस्तान के यथार्थ जातीय कवि रवीन्द्रनाथ ही कहे जा सकते हैं। इनमें भारतीय भावों का मार्जन इतने अच्छे ढंग से हुआ है जिसकी हद नहीं। सौन्दर्य, दर्शन, प्रेम आदि का जो निर्झर रवीन्द्रनाथ की कविता से झरता है वह अनुकरणीय है। हिन्दी का विकास अपने ढंग से होने पर भी छायावाद में रवीन्द्रनाथ का प्राधान्य स्वीकार करना ही होगा। मैं छन्दों की बात लेता हूँ—

बहती जाती साथ तुम्हारे स्मृतियाँ कितनी,
दग्ध चिता के कितने हा-हाकार।
नश्वरता की थीं सजीव जो कृतियाँ कितनी,
अबलाओं की कितनी करुण पुकार॥

—निराला

यह छन्द असल में अंग्रेज़ी का है इसे रवीन्द्रनाथने भी अपनाया है। प्रसाद जी, पंतजी और महादेवीजी के छन्द हिन्दी की अपनी विभूति से विकसित हैं।

ब्रजभाषा का—

बेगि चलु, बेगि चलु, जाति जामिनि घटति
कुंज में केलि कर अमिय रस घूटबो

का खड़ी बोली में जहाँ तक का मुझे स्मरण है प्रयोग नहीं हो पाया था—

रवीन्द्रनाथ का—श्रावण घन गहन मोहे
गोपन तव चरण फेले
निशार मत नीरव ओहे,
सवार दीठि एड़िये एले,

मेरा—प्रात संघात के सिन्धु के तीर मैं
गिनता रहूँगा न कितने तरंग हैं,
धीर मैं ज्यों समीरण कंचन तरण,
दे मैं कंचन वरण।
लाभ छना इन्धन हृदय तल जले अनल
भक्तिनत नयन मैं चलूँ अविरत सबल,
पार कर जीवन प्रलोभन समुपकरण।

ऐसे अनेक छन्द दिये जा सकते हैं। रवीन्द्रनाथ के असाधारण छन्द कौशल को मैंने अपनी साधारण शक्ति के अनुसार सँभालने का प्रयत्न किया। दूसरी जगह से भी छंद लिये, अपने भी तैयार किये। सात, बारह, सोलह, आठ,

दस, चौदह, छः मात्राओं के गाने भी काव्य के छन्दों के अतिरिक्त लिखे। गीतों की रचना में रवीन्द्रनाथ के विवेचन के अनुसार भी काम करने की कोशिश की है। काव्य के छन्द का एक उदाहरण और दूँ—

रवीन्द्रनाथ के शा-जहान से—

'ए कथा जानिते' तुमि भारत-ईश्वर शा-जहान,
कालस्रोते भेसे जाय जीवन-यौवन धन-मान।
शुधु तव अन्तरवेदना
चिरन्तन होये थाक सम्राटेर
छिल ए साधना।
राजशक्ति वज्रसुकठिन
सन्ध्यारक्त-राग-सम तन्द्रा-तले हय होक लीन
केवल एकटि दीर्घश्वास
नित्य-उच्छ्वसित होये सकरुण करुण आकाश
एइ तब मने छिल आश।
हीरा-मुक्ता-माणिक्येर घटा
येन शून्य दिगन्तेर इन्द्रजाल इन्द्रधनुच्छटा,
जाय यदि लुप्त होये जाक,
शुधु थाक,
एक विन्दु नयनेर जल
कालेर कपोल-तले शुभ्र समुज्वल
ए ताजमहल।

मेरे "सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति" से—

वैभव विशाल,
साम्राज्य-सप्त-सागर-तरंग-दल-दन्त-साल,
है सूर्य छत्र,
मस्तक पर सदा विराजित लेकर आतपत्र,
विच्छुरित छटा,
जल-स्थल-नभ में विजयिनी वाहिनी
विपुल घटा
क्षब्द क्षणभर पर,
बदलती इन्द्रधनु इस दिशि से उस दिशि सत्वर,
वह महासद्म,
लक्ष्मी का शतमणिलालजटित ज्यों रक्तपद्म,
बैठे उसपर,
नरेन्द्र-वन्दित ज्यों देवेश्वर।

रवीन्द्रनाथ के स्वर का प्रभाव भी हिन्दी कविता पर पड़ा है। मेरी 'गीतिका' की भूमिका में रवीन्द्रनाथ के स्वर का थोड़ा-सा विवेचन है जैसा उन्होंने स्वयं किया है।

कला की विवेचन थोड़े समय में नहीं हो सकता। इसपर एक जगह शायद लिख चुका हूँ, चिरन्तनता के साथ सामयिक कला भी है। दोनों का वही सापेक्ष सम्बन्ध है। भिन्न-भिन्न साहित्य के विकास के साथ कभी-कभी कला का भी भिन्न विकास हुआ है; मन के साथ एक क्रम, एक परम्परा भी है। फिर, दृश्यमान संसार के अनेकानेक पेड़ों, पत्तियों, फूलों, फलों की तरह उसकी रूपरेखाएँ भी अलग-अलग हैं। भाव-भाषा के अलग-अलग प्रकाशन। लेकिन, तने, डालों, पत्तियों, फूलों और खुशबू की तरह विषय का सम्बन्ध होना चाहिए और क्रम-विकास। फिर भी कोई नियम कला के विकास में लगाया नहीं जा सकता। रवीन्द्रनाथ इसके बहुत बड़े आचार्य हैं। उनके इस ज्ञान का भी प्रभाव हिंदी पर पड़ा है।

शैली को मैं यह कहकर छोड़ता हूँ कि हर आदमी की अपनी शैली होती है। रवीन्द्रनाथ की गद्य-पद्य की शैलियाँ अनेक हैं। अब भी एक सम्बन्ध उनमें दृष्टिगोचर होता है। इस शैली का, मुमकिन, हिन्दी में वैसा समावेश न हो सका हो, इसके सम्बन्ध में कवीन्द्र स्वयं कह चुके हैं, यह बंगला की विशेषता है। दार्शनिकता, समाजोन्नयन, विश्वमानवता आदि से रवीन्द्रनाथ की साधना हिन्दी में यथेष्ट प्रतिफलित हुई है। इन विषयों पर इतना कहा गया है कि श्रोता अच्छी तरह परिचित होंगे। भारत तथा संसार के कवि-गुरु आज हममें नहीं हैं। उनके प्रति मैं अपनी श्रद्धांजलि देता हूँ।[1]

---

[1] ऑल इण्डिया रेडियो, लखनऊ के सौजन्य से।

रवीन्द्रनाथ का युग-दर्शन

[सुधीन्द्र]

रवीन्द्रनाथ आज शरीर से नहीं हैं, परन्तु अपने बहुसंख्यक अमर गीत जो आज वे हमें देकर चले गये हैं, हमारे युग की चिरनिधि होकर भी युग-युग तक को आलोक देते रहेंगे। कविगुरु ने जीवन-पर्यन्त अपनी कविताओं द्वारा यह पदार्थ-पाठ दिया कि कवि वस्तुतः युग और युग-युग का समन्वयकार होता है। वह जिस युग में साँस लेता है, उसका स्पन्दन वाणी में व्यक्त करते हुए भी युग-युग तक की बात कहता है। तुलसी, कबीर, सूर आदि महाकवियों के चरणचिन्हों का ही कवींद्र रवींद्रनाथ ने अनुसरण किया। उनकी कविताओं और गीतों से युग-जीवन को जो प्राणरस मिला है, उसका यहाँ हम थोड़ा पान करना चाहते हैं।

आज जिसकी रक्षा के लिए भारत ही नहीं, समस्त आक्रान्त राष्ट्र आक्रामक राष्ट्रों से जूझ रहे हैं उस स्वाधीनता का मंगल और सुन्दर रूप उन्होंने अपने जिस गीत में प्रतिष्ठित किया है वह यह है :

चित्त जेथा भयशून्य, उच्च जेथा शिर,
ज्ञान जेथा मुक्त, जेथा गृहेर प्राचीर
आपन प्रांगणतले दिवस-शर्व्वरी,
वसुधारे राखे नाइ खण्ड क्षुद्र करि,
जेथा वाक्य हृदयेर उत्समुख ह'ते
उच्छ्वसिया उठे, जेथा निर्वारित स्रोते
देशे देशे दिशे दिशे कर्म्मधारा धाय
अजस्र सहस्रविध चरितार्थताय;
[जहाँ हो चित्त भयों से शून्य,
जहाँ ऊँचा हो जन का भाल,
ज्ञान हो जहाँ मुक्त निर्बन्ध
अमल-अकलंक रहे चिरकाल;
जहाँ आँगन ही में दिन-रात
नहीं यह घर-घर की प्राचीर
करे छोटे-छोटे से खण्ड
हृदय विस्तृत वसुधा का चीर
हृदय के तल से हो उच्छ्वसित
जहाँ उद्‌गार उठें 'अनिवार
सहस्रों फल करती चरितार्थ
बहे दिशि-दिशि कर्मों की धार]

आज की भयाक्रान्त नतभाल, रुद्धज्ञान, द्वेष-जर्जर राष्ट्र-जनता के लिए उनके गीत की ये पंक्तियाँ अप्रतिम आदर्श की स्थापना करती हुई स्वतन्त्रता का सच्चा छायाचित्र प्रदान करती हैं।

आज जो महा 'वीर' अपने विपुल पराक्रम और ध्वंसक अस्त्र-शस्त्रों से संसार में सर्वनाश बरसा रहे हैं, उनकी आत्मा से कवि रवि ठाकुर ने सीधे-से शब्दों में ही दो बातें पूछी हैं :

(१) **प्रभुगृह हते आसिल जेदिन वीरेर दल**
सेदिन कोथाय छिल जे लुकानो विपुल बल ?
कोथाय वर्म्म, अस्त्र कोथाय,
क्षीण दरिद्र अति असहाय
चारिदिक हते एसेछे आघात अनर्गल
[जिस दिवस प्रभु-गेह से था
चला वीरों का सबल दल,
रे, छिपा उस दिन पड़ा था
यह कहाँ उनका विपुल बल ?
वर्म, अस्त्र कहाँ पड़े थे ?
दीन-क्षीण मलिन बड़े थे ?
सब दिशा से थे हुए उनपर
प्रखर आघात अविरल]

(२) **प्रभुगृह माझे फिरिल जेदिन वीरेर दल**
सेदिन कोथाय लुकाल आबार विपुल बल !
धनुशर-असि, कोथा गेल खसि
शांतिर हासि उठिल विकशि'
चले गेल राखि सारा जीवनेर सकल फल
[लौट आया जिस दिवस
प्रभु-गेह वीरों का सबल दल,
छिप गया उस दिन कहाँ पर
फिर वही उनका विपुल बल ?
धनुर्बाण कहाँ गये गिर ?
शांति की स्मिति खिल उठी फिर !
चल दिये सब छोड़ पीछे
अखिल जीवन के सकल फल]

विश्वविजयी (?) अलक्षेन्द्र और नेपोलियन के अनुसारी हिटलर के बड़े-बड़े योद्धा आज क्या अन्तःकरण में इनका उत्तर देंगे ?

युग के उपेक्षित दीन-दलित जनों के प्रति तो उस विश्वकवि का हृदय शतसहस्र धाराओं में पिघल निकला था :

हे मोर दुर्भागा देश ! जादेर करेछ अपमान
अपमाने होते हबे ताहादेर सबार समान
मानुषेर अधिकारे
वंचित करेछ जारे
सम्मुखे दांडाये रेखे तवु कोले दाओ नाइ स्थान !

[हे मेरे हतभाग्य देश तुम !
करते हो जिनका अपमान
अपमानित होकर तुमको भी
होना होगा उन्हीं-समान
मानव का अधिकार छीन कर
दिया जिन्हें है दीन-हीन कर
खड़ा उन्हें सम्मुख रखकर भी
देते नहीं क्रोड़ में स्थान !]

मानुषेर परशेरे प्रतिदिन ठेकाइया दूरे
घृणा करियाछ तुमि मानुषेर प्राणेर ठाकुरे
विधातार रुद्ररोषे
दुर्भिक्षेर द्वारे बसे
भाग करे खेते हबे सकलेर साथे अन्न-पान

[तुमने मानव-स्पर्श नित्य जो
दूर किया कर-कर अभिमान
किया घृणा से अपमानित है
मानव प्राणों का भगवान
पर विधना के रुद्ररोष पर
रे, अकाल के द्वार बैठकर
सबके साथ बाँटकर करना तुम्हें पड़ेगा भोजन-पान]

छुआछूत का पाप देवता को अपमानित करने के बराबर जघन्य है और इसके लिए उन्होंने अपने पुण्यपावन राष्ट्र की भी विगर्हणा की है :

तोमार आसन हते जेथाय तादेर दिल ठेले
सेथाय शक्तिर तव निर्वासन दिले अवहेले
चरणे दलित हये
धुलाय से जाय बये
सेइ निम्ने नेमे ऐसो नहिले नाहिरे परित्राण

[तुमने निज आसन से जिनको
गिरा दिया है जहाँ धकेल
वहाँ शक्ति अपनी ही तुमने
निर्वासित कर दी है ठेल
है चरणों से आज दलित वह
रहा धूल में हो लुंठित वह
आओ नीचे उतर नहीं तो
तुमको मिल न सकेगा त्राण]

शतेक शताब्दी धरे नामे शिरे असम्मानभार
मानुषेर नारायणे तवुओ करो ना नमस्कार !
तवु नत करि आँखि देखिबारे पाओ ना कि
नेमेछे धूलार तले हीन पतितेर भगवान !

[युग-युग से तुम लिये भार-सा
सिर पर असम्मान अविराम
तो भी उस नर-नारायण को
करते हो तुम नहीं प्रणाम
पलभर अपने झुका विलोचन
पाते हो अब भी क्या देख न ?
आया है वह उतर धूल में
हीनों-पतितों का भगवान]

नर-नारायण के प्रति उनका यह श्रद्धासिक्त नमस्कार क्या युग की बड़ी-से-बड़ी वन्दना नहीं है ?

कवि ने एक गीत में तो अपने प्रभु के चरणों का वास उन्हीं दीनातिदीन, हीन जनों में देखा है :

जेथाय थाके सबार अधम दीनेर हते दीन
सेइखाने जे चरण तोमार राजे
सबार पिछे, सबार नीचे, सब-हारादेर माझे

[हैं जहाँ अधम दीनातिदीन
हैं वहाँ तुम्हारे चरण आज
सबके पीछे, सबके नीचे,
जनगण में हे राजाधिराज !]

और रिक्तभूषण, दीनदरिद्र जनों में ही उन्होंने अपने राजाधिराज की अवतारणा की है, संगीहीनों के संग में ही उसको देखा है :

रिक्तभूषण दीनदरिद्र साजे—
सबार पिछे, सबार नीचे, सब हारादेर माझे ।
संगी हये आछ जेथाय संगिहीनेर घरे

सेथाय आमार हृदय नामे, ना जे
सबार पिछे, सबार नीचे, सब हारादेर माझे ।

[घूमते जहाँ तुम हतभूषण
निर्धन-दरिद्र-सा वेश साज
सबके पीछे, सबके नीचे
जन-जन में हे राजाधिराज !
झुककर न कभी मेरा अन्तर
जाता संगीहीनों के घर
प्रतिपल जिनके संगी बन तुम
सर्वदा रहे उनमें विराज]

समाज-विधान में रवीन्द्रनाथ ने 'कर्मयोग'—श्रम—की प्रतिष्ठा की है । दिन-रात घोर परिश्रम करके पसीना बहानेवालों ही ने समाज की सुखसमृद्धि के लिए अमृत अर्जित और संचित किया है, और इसीलिए भगवान का सच्चा स्थान और सच्ची पूजा श्रम ही में अधिष्ठित है—यह वे नहीं भूलते । उसके आगे 'भजन-पूजन-साधन-आराधना' सब उपेक्षणीय हैं :

भजन पूजन साधन आराधना समस्त थाक् पडे
रुद्धद्वारे देवालयेर कोणे केन आछिस् ओरे ?
अंधकारे लुकिये आपन मने,
काहारे तुइ पूजिस संगोपनें ?
नयन मेले देख् देखि तुइ चेये
देवता नाइ घरे

[भजन-आराधन पूजा-पाठ
पुजारी, दूर हटा सब ठाठ !
द्वार देवालय के कर बन्द
अँधेरे कोने में मतिमंद !
बंद कर आँखें अपनी आप
पूजता रे किसको चुपचाप ?
देख तो आँखें अपनी खोल
देवता है कब घर में, बोल ?]

तिनि गेछेन जेथाय माटि भेङे
करछे चाषा चाष,—
पाथर भेङे काटछे जेथाय पथ,
खाटछे बारो मास ।

[गया है वहाँ अरे, भगवान
जोतता धरती जहाँ किसान
बनाने मार्ग जहाँ मजदूर
कर रहा पत्थर चकनाचूर]

अंत में, 'मुक्ति' के लोभी पुजारियों को उन्होंने मुक्ति का वास्तविक मार्ग-निर्देश किया है :

मुक्ति ? ओरे मुक्ति कोथाय पाबि ?
मुक्ति कोथाय आछे ?
आपनि प्रभु सृष्टि-बाँधन प'रे
बाँधा सबार काछे ।
राखोरे ध्यान, थाक्‌रे फुलेर डालि,
छिड़ुक् वस्त्र, लागुक् धूलाबालि,
कर्म्मयोगे ताँर साथे एक हये
घर्म्म पड़ुक् झरे

[मुक्ति ? है कहाँ पुजारी मुक्ति ?
मिलेगी कहाँ विचारी मुक्ति ?
सृष्टि-बंधन में सबके साथ
बँधा है जब संसृति का नाथ ?
बंद कर ध्यान, हटा ये फूल,
वस्त्र धर दे, लगने दे धूल
कर्म में उसके सँग हो एक
अरे, बहने दे स्वेद-प्रसेक]

कुछ ही महीनों पहले प्रकाशित 'गांधी-महाराज' कविता में 'अहिंसा-धर्म' की उनकी अडिग आस्था व्यञ्जित हुई है । उसके सभी अवयव—दीनों का शोषण न करना, अपरिग्रह, निर्भीकता, मन-वचन-कर्म की शुद्धता और सरलता, कष्टसहिष्णुता, तप आदि को उन्होंने मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया है :

गांधी महाराजेर शिष्य
केउ बा धनी, केउ बा निःस्व
एक जायगाय आछे मोदेर मिल;
गरीब मेरे भराइ ने पेट
धनीर काछे हइ ने तो हेट
आतंके मुख हय ना कभु नील

[गांधी महाराज के अनुचर
कोई धनी, दीन कोई, पर
एक बात ऐसी है जिसमें बने हुए हम सभी अभिन्न—
मार दीन को पेट न भरते
धनिक-चरण पर माथ न धरते

देख-देख आतंक कभी हम हो जाते भयभीत न खिन्न]

सिधे भाषाय बलि कथा,
स्वच्छ ताहार सरलता,
डिप्लमेसिर नाइको असुविधे
[बात सरल-सीधी कहते हम
भाषा जिसकी शुद्ध स्वच्छतम
कभी न होते दाँवपेंच या कूटनीति के कारोबार]
दले-दले हरिण बाड़ि
चलल् जारा गृह छाड़ि
घूचल् तादेर अपमानेर शाप
चिरकालेर हातकड़ि जे
धूलाय खसे पड़ल निजे
लागल् भाले गांधीराजेर छाप
[दल के दल हम जब घर तजकर
आ जुड़ते हैं जेल-मार्ग पर
धुल जाता है तब पलभर में
अपमानों का सब अभिशाप
युग-युग की हथकड़ी खिसककर
गिर जाती है धरा धूल पर
लग जाती आकर ललाट पर
गांधीमहाराज की छाप !]

यही 'गांधी-महाराज की छाप' उनकी अनेक कविताओं में है।

निःसहाय-निर्बल प्राण को जीवन के जटिल पथ पर प्रेरित करनेवाले मन्त्र-रूप उनका गीत 'एकला चल रे' और दुःखित तथा थके हुए प्राणियों को सजीव सन्देश-रूप उनका अमर गान—'दुःसमय'—तो हमारे युग ही को नहीं, युग-युग को उनका सर्वश्रेष्ठ सन्देश होगा।

रवीन्द्रनाथ की कविताओं के अध्ययन से वह बात प्रत्यक्ष हो जाती है कि जबतक कवि या द्रष्टा युग की याचना को, प्यास को, जिज्ञासा को तृप्ति नहीं देता, तबतक वह युग-युगानुमोदित सत्य की ओर उन्मुख भी नहीं हो पाता।

कविगुरु रवींद्रनाथ ने युग की माँग को न भुलाते हुए युग को युग-युग का सन्देश दिया है उन्होंने युग के स्वर को उपेक्षित नहीं किया, वरन् उसे गाया, उसे उद्घोष दिया, बल दिया।

युग किसी कवि को अपने क्रोड़ में छिपा लेना नहीं चाहता, यदि वह बीते हुए युग-युग की बात कहने और आनेवाले युग-युग को आलोक देने में युग की ओर दृष्टिभर डालना न भूले। रवीन्द्र वास्तव में युगदर्शी कवि थे, इसीलिए युग-युग उन्हें नहीं भुला सकेंगे।

अर्घ्य

पूर्व

'रवीन्द्रनाथ ठाकुर की मृत्यु से वर्तमान युग का सबसे बड़ा कवि, सच्चा राष्ट्रवादी और मानवता का प्रेमी उठ गया !' **महात्मा गाँधी**

'गुरुदेव की मृत्यु से आज हम अकेले और अन्धकार में रह गये हैं। भारत का महान् ज्योतिर्मय नक्षत्र आज अस्त होगया।' **जवाहरलाल नेहरू**

'एक महान माली चल बसा ! परन्तु उसका लगाया सौन्दर्य के गीत का पौधा अनन्त काल तक खिलता रहेगा।' **सरोजनी नायडू**

'कवीन्द्र के उठजाने से मानवता को भारी क्षति हुई।'

—महाराजा नेपाल

'वह वृद्ध तपस्वी अब नहीं रहा ! संसार अब उसके श्रेष्ठ शिक्षापूर्ण वचन नहीं सुन सकेगा। पूर्वी सभ्यता ने तो अपना एक महान् गुरु खो दिया।' **चांग काई शेक**

पश्चिम

'भारत का एक सबसे बड़ा सुपुत्र उठ गया।'

लार्ड लिनलिथगो

'रविबाबू अपनी लेखनी और आदर्श जीवन के कारण विश्व के गौरव थे।' **मि० एमरी**

'उन्होंने अपने विचारों और लेखों द्वारा भारत के अमूल्य खजाने को संसार की दृष्टि में लाने की चेष्टाएँ की।" **लॉर्ड हैलिफैक्स**

'रविबाबू का अध्ययन करके ही हम जान सके कि यूरोप को अभी भारत से क्या-क्या सीखना है।' **'मैञ्चेस्टर गार्जियन'**

प्रस्तुत प्रश्न

खुली चिट्ठी

'प्रगतिशील साहित्य' नामक मेरे लेख (जी० सा०: जून, ४१) के उन वाक्यों से, जो कि लेखक के मेरे आदर्श से सम्बन्ध रखते हैं, नाराज होकर श्री कान्तिचन्द्र सौनरिक्सा ने आवेश में एक लम्बी खुली चिट्ठी छपने के लिए भेजी है। मैंने चाहा था कि कान्तिचन्द्रजी खुद थोड़े में मतलब की बातें लिखकर भेज देते। अस्वस्थता से वे ऐसा न कर पाये। सारा पत्र कुछ ऐसा अटपटा है कि उसका सारांश निकालना कठिन है। अतएव उन्हीं की सूचना के अनुसार उनके ज़रूरी प्रश्नों का उत्तर देने या शंका-समाधान करने का प्रयत्न करता हूँ।

उस लेख के जिन अंशों पर कान्तिचन्द्रजी ने आपत्ति की है वे दरअसल इन दो प्रश्नों के उत्तर में लिखे गये हैं— (१) हिन्दी-साहित्यिकों की कद्र नहीं होती व (२) हिन्दी में कोई रवीन्द्र नाथ, गांधी, गोर्की क्यों नहीं है? दूसरे शब्दों में हिन्दी में युगान्तरकारी लेखक क्यों नहीं है? दोनों के मैंने दो जवाब दिये हैं (१) हिन्दी के अधिकांश लेखक रुपयों के लिए लिखते हैं व (२) आधुनिक हिन्दी में अनुभूति व साधना की बनिस्बत कल्पनाओं व निराधार भावों का प्राबल्य है। इसी आशय को मैंने उन वाक्यों में ज्यादा खोलने की कोशिश की है। अच्छा हो कि पाठक मेरे उन वाक्यों को 'जी० सा०' में एक बार फिर पढ़ लें, क्योंकि उन्हें सौनरिक्साजी ने अपनी खुली चिट्ठी में 'हिंसा से भरा' कहा है और लिखा है कि 'आपने हिन्दी व उसके गरीब लेखक का अपमान किया है।' सौनरिक्साजी ने मेरे उन वाक्यों का निष्कर्ष अपनी भाषा में इस प्रकार दिया है—

"(१) हिन्दी का लेखक पुरस्कार या पारिश्रमिक को सफलता की कसौटी समझता है और उसे पारिश्रमिक की पुकार करने का कोई हक नहीं है और पारिश्रमिक की बात करना कम-से-कम साहित्यिक पाप है, अपराध है, क्योंकि (२) वह रवीन्द्र, गोर्की, गांधी नहीं है, वह रोटी खानेवाला जानवर है, इन्सान नहीं; इन्सान वह जो रोटी न खाए; वह साहित्यसेवा नहीं कर सकता—यानी वह लेखक नहीं है। (३) कल्पना मिथ्या है (४) हिन्दी में रवीन्द्र, गांधी, गोर्की नहीं हैं और इसका कारण यह है कि हिन्दी में साहित्य, कल्पना और निराधार भावों को महत्व दिया जाता है; जीवन, साधना और अनुभूति को नहीं, और अधिकांश हिन्दी-लेखक रोटी के लिए लिखते हैं, उसके ऊपर उठकर नहीं रहते।"

अब पाठक ही सोचें कि मेरे इस वाक्य से कि 'हिन्दी के अधिकांश लेखक पुरस्कार या रोटी के लिए लिखते हैं उसके ऊपर उठकर नहीं रहते।···और यह कहाँ की सेवा है जो हर घड़ी पुरस्कार का हिसाब लगाती है व अपनी भूख का रोना रोती है?' यह निष्कर्ष कैसे निकला कि 'हिन्दी-लेखकों को पारिश्रमिक की पुकार करने का कोई हक नहीं है और पारिश्रमिक की बात करना कम-से-कम साहित्यिक पाप है, अपराध है'। इसका आशय तो सिर्फ इतना ही है कि पैसे के लिए लिखने से हम ऊँचे दरजे के साहित्यिक नहीं बन सकते। जिसे साहित्यसेवा करनी है वह पैसा मिले या न मिले अपना काम करेगा ही। जो दिये बिना नहीं रह सकता वह देगा ही—धन-जन-सम्बन्धी कोई बाधा उसे रोक नहीं सकती और यह तो कोई भी बेवकूफ न कहेगा कि लेखक हवा खाकर साहित्य लिखे। उसका काम अगर अपनी रचना का पुरस्कार या पारिश्रमिक लिये बिना नहीं चलता है तो वह ज़रूर ले। मगर अपनी सेवा को उसपर अवलम्बित न रक्खे। मेरे इस आशय से अधिक 'जो पुरस्कार लेता है वह रोटी खानेवाला जानवर है······' आदि—आदि जो कुछ उन्होंने मान लिया है उसके जिम्मेदार वे खुद हैं—मैं किसी तरह नहीं। हाँ, यह मेरी राय जरूर है कि जिनकी गुज़र-बसर का दूसरा

जरिया है उन्हें लेखन-कार्य से पैसा नहीं लेना चाहिए। पैसा हमें उतना ही लेना चाहिए जितना रोटी कपड़े के लिए ज़रूरी है, संग्रह के लिए नहीं। निर्वाह, सुख और विलास इनमें से हमें—सेवा-भाव रखनेवालों को—निर्वाह के लिए ही पैसा लेने का हक होना चाहिए। तुलसी, कबीर, सूर, किससे पुरस्कार लेने या माँगने गये थे? यदि अपनी विशेषता के द्वारा हमने अपना व्यक्तित्व बना लिया है तो पैसा हमारे पास दौड़ता चला आवेगा—नहीं भी आया तो उसके अभाव में जो कष्ट होगा वह हमें दीन व लाचार नहीं बना देगा—हमारे जौहर को अधिक ही खिलावेगा।

सौनरिक्साजी आगे लिखते हैं—

"**मैं हिन्दी के अधिकांश ही नहीं लगभग ९५% जीवित लेखकों से परिचित हूँ। यहाँ लेखकों से मेरा अभिप्राय केवल मात्र, पहले, दूसरे, तीसरे दर्जे के साहित्यिकों से है जो किसी-न-किसी रूप में मान्य एवं प्रतिष्ठित हैं। इन साहित्यकारों में से आज तक मैंने किसी के भी मुँह से लेखक की सफलता पुरस्कार की कसौटी से आँकते नहीं सुनी।**" जानकारी का यह यह दावा मुझे तो बढ़ा-चढ़ा ही लगता है। लेकिन अधिक जानकार ही इसपर ठीक निर्णय दे सकते हैं। फिर बच्चनजी के इण्टर क्लास में सफर करने और बढ़िया-से-बढ़िया सूट-टाई पहनने का उदाहरण देकर आप लिखते हैं 'दुनिया में किसी भी चीज़ की एक कसौटी हो सकती है, तो वह है उसका मानवीय महत्त्व ('Human values')।' मेरी राय में उन भावों और विचारों का अधिक मूल्य नहीं है जो लेखक के अपने जीवन व आचार से मेल नहीं रखते। इसके बाद 'साहित्य-सेवा किसे कहते हैं?' यह प्रश्न पूछकर भिन्न-भिन्न उद्देश्य से की जानेवाली साहित्य-सेवा का ज़िक्र करके आपने सेवा-कार्य की यह व्याख्या दी है—"**सेवा-कार्य वह है जो नितांत रूप से परहित हो जिसमें अपना या अपनेपन का लगाव न हो, जिसमें निरपेक्ष कर्त्तव्य का भाव हो, ख्वाह उससे खुद आपको कोई नुकसान या फ़ायदा हो।**" इसे मैं अपनी भाषा में यों कहना चाहूँगा जो कर्म अपने सुख (physical comfort) या स्वार्थ के उद्देश्य से न किया गया हो वह सेवा है। इस सेवा के फलस्वरूप पैसा मिलना हो तो ले लेना एक बात है और न मिले तो उसकी शिकायत करना दूसरी बात है। पहली बात सेवा-भाव के विपरीत नहीं है।

फिर आपने गांधी, जवाहरलाल, रवीन्द्रनाथ आदि जिन-जिन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं का पुरस्कार लिया है उनका हवाला देकर प्रश्न किया है—"**यदि साहित्य और जीवन का धन से कोई सम्बन्ध नहीं या वैसा नहीं जैसा आप चाहते हैं, तब क्यों 'जीवन-साहित्य' व 'मण्डल' की पुस्तकों का मूल्य रखा गया है, वे क्यों बेची जाती हैं, क्यों नहीं आप अपनी पुस्तकें मुफ्त बाँटकर हिन्दी-साहित्य-सेवा का अधिकतम श्रेय लूटकर लोक-हृदय पर अपने लेखकपन और सेवकपन की अमिट छाप लगाकर श्रेष्ठतम साहित्यिक बन जाते, ताकि गांधी, गोर्की व रवीन्द्र के साथ आप अपना नाम गिना सकते?**" मेरी राय में ये उदाहरण बेमौजू हैं; क्योंकि इन्होंने रुपया लिया भले ही हो पर कमाने के लिए नहीं लिखा। फिर जो पैसा मिला भी है उसका उन्होंने सार्वजनिक उपयोग किया है। 'जी० सा०' का मूल्य? लागत से भी कम है और 'मण्डल' की पुस्तकें भी लागत मात्र पर बेची जाती हैं। कुछ पुस्तकों पर तो लागत में व्यवस्था-खर्च भी नहीं जोड़ा गया है, महज़ कागज़ व छपाई के दाम लिये गये हैं। जहाँतक मुझसे सम्बन्ध है मैंने पैसे को लक्ष्य बनाकर अबतक कुछ नहीं लिखा है। जो पैसा मिला है उसका उपयोग गांधी-सेवा-संघ का सदस्य बनने के पहले तक निर्वाह-मात्र में किया है और बाद में सार्वजनिक कामों में। मेरी राय में अपनी आवश्यकताओं को कम-से-कम रखना और आवश्यकता भर के लिए, अपने परिश्रम के फलस्वरूप पैसा लेना कोई बुराई नहीं। सेवा का अर्थ सबको मुफ्त बाँटना नहीं है।

आगे चलकर आपने प्रश्न किया है कि रोटी **के ऊपर उठकर कैसे लिखा जाता है, क्या भूखे पेट रहकर ?** मेरा जवाब यह है कि 'अगर **रोटी** न मिली तो उसका रोना न रोकर और फिर भी अंगीकृत कार्य न छोड़कर। जो इस आँच में तप सकेगा वही सेवा-क्षेत्र में अपनी छाप छोड़ेगा। दुनिया का सिर उसके चरणों पर झुकेगा। भूखे मरने की नौबत आने पर जिन्होंने सेवा-कार्य छोड़ दिया वे अपनी साधना और तप में कच्चे साबित हुए, इसमें कोई सन्देह नहीं।

आगे आपने लिखा है कि **"प्रकाशन-संस्था को साहित्यसेवी कहनेवाले ऐसे प्रकाशक अवश्य हैं जो कतिपय लेखकों से पुस्तकों का अनुवाद कराते हैं और अनुवादक की जगह केवल नाम अपना ही देते हैं; जो अपने पत्र का सम्पादन किसी गरीब निरीह प्रतिभाशाली हिन्दी-लेखक से कराते हैं, उसे कुछ दे देते हैं, और सम्पादक की जगह सिर्फ़ अपना ही नाम देते हैं। उस बेचारे का नाम सहायक में भी नहीं देते। क्या यह अहिंसा और सत्य के अनुरूप है ? यह नैतिक पतन लेखक का है या प्रकाशक का ?"** दोनों का हो सकता है। जो अनुचित रूप से दबा हो उसका भी और जिसने अनुचित रूप से दबाया हो उसका भी। अगर लेखक व प्रकाशक ने ऐसा ठहराव बिना दबाव के राजी-रजामन्दी से किया है तो वह नैतिक पतन नहीं समझा जा सकता। फिर आप लिखते हैं कि हिन्दी के ९९% साहित्यिकों को जिनमें से अनेक आपके 'जी० सा०' में स्थान पाते हैं केवल एक शिकायत है—**"हिन्दी का प्रकाशक शोषक है, हिन्दी का सम्पादक अयोग्य है।"** यदि यह शिकायत सही है तो हिन्दी के प्रकाशकों का बहिष्कार होना चाहिए और हिंदी-सम्पादक निकाल दिये जाने चाहिएँ। इसके बाद आपने भिन्न-भिन्न लेखकों के आदर्श, सिद्धान्त और महत्त्व की भिन्नता का वर्णन करके पूछा है—**"तब, उपाध्यायजी, आपको या किसी को क्या अधिकार है कि आप या वह 'क' को लेखक मानें और 'ख' को नहीं, 'स' से कहें तुम ऐसी बात लिखो, ऐसी नहीं, तभी हम तुम्हारी चीज़ छापेंगे। लेखक अच्छा है या बुरा, इसका निर्णय आप—प्रकाशक और सम्पादक—को नहीं करना, यह पाठक, समालोचक, और समय आप ही कर लेते हैं, और कर लेंगे।"** मेरी राय में प्रत्येक व्यक्ति को अपने मत के अनुसार 'क' को लेखक मानने व 'ख' को न मानने का अधिकार है और 'स' से यह कहने का भी कि ऐसी बात लिखो और ऐसी नहीं। लेखक अच्छा है या बुरा ऐसा निर्णय अपनी रुचि के अनुसार करने का प्रत्येक को अधिकार है। पाठक, समालोचक व समय की तरह प्रकाशक और सम्पादकों को भी अपनी अपनी दृष्टि से निर्णय करने का अधिकार अवश्य है।

साहित्य-सृजन कोरी कल्पनाओं के आधार पर नहीं, अनुभूति के आधार पर होना चाहिए, मेरे इस विचार के विरोध या खंडन में दुनिया भर के साहित्यिकों के नाम व कृतियाँ गिनाकर चार-पाँच पृष्ठ आपने लिखे हैं। मुझे खेद है कि लेखक ने मेरे इन वाक्यों को ध्यान से पढ़ा ही नहीं। कल्पनाओं के पहले 'कोरी' और हिलोरों के पहले 'मस्त' विशेषणों की तरफ उन्होंने ध्यान देने की कोई जरूरत ही नहीं समझी। मैं कोई साहित्यिक नहीं हूँ, फिर भी इतना तो जानता ही हूँ कि साहित्य-सृजन में कल्पनाओं और भावनाओं का बड़ा स्थान है। मैंने तो उन कल्पनाओं और भावों पर आपत्ति की है जो जीवन की अनुभूति से सम्बन्ध नहीं रखतीं। ऐसी दशा में इस विषय पर अपनी खुली चिट्ठी में लेखक ने जो कुछ लिखा है वह सब अप्रस्तुत है। फिर आपने प्रश्न किया है **"हिन्दी क्या सूर, तुलसी, पंत, प्रसाद, प्रेमचन्द जैसे लालों के होते हुए भी विश्व के किसी साहित्य से हेय है ?"** बेशक सूर-तुलसी का साहित्य सारे संसार के साहित्य में अद्वितीय है और पंत, प्रसाद, प्रेमचंद पर हिन्दी-साहित्य को गर्व है। फिर भी यह निर्विवाद सत्य है कि आधुनिक हिन्दी-साहित्य में गांधी, गोर्की व रवीन्द्र का स्थान खाली है।

इसके आगे 'पं० जवाहरलालजी ने जनता के हृदय को छुआ है' मेरे इस कथन के विरोध में भी आपने बहुत लम्बा-चौड़ा मज़मून लिखा है। मेरे उदाहरणों का तात्पर्य स्पष्ट है। मैंने तो उनके द्वारा इस बात की ओर ध्यान दिलाया है कि जिसमें विशेषता और व्यक्तित्व होता है उसकी चीज़ लोकमान्य व लोकप्रिय होती है। जनता के प्रति जिसकी जितनी समवेदना अधिक होगी, अपने प्रति और अपने जीवन के प्रति जो जितना ही अधिक सच्चा होगा उसकी कृति उतनी ही लोक-हृदय पर अधिकार करेगी—एक काल के लिए नहीं, सर्वकाल के लिए। यदि इस मूलभाव को सौनरिक्साजी ग्रहण कर लेते, तो वे बहुत-सी अप्रासंगिक बातें लिखने के कष्ट से बच जाते। हाँ, आपकी यह शिकायत सही है कि **"गांधीजी अपनी हरएक चीज गुजराती में और नेहरूजी अंग्रेजी में लिखते हैं। हिन्दी को सदैव उनकी जूठन ही मिलती है।"** लेकिन गांधीजी तो गुजराती-भाषी हैं। हाँ, जवाहरलालजी के बारे में यह शिकायत बिलकुल सही है। लेकिन मैंने भी तो जवाहरलालजी की गिनती साहित्य-सेवियों में कब की है? उनका नाम गिनाने से मेरा मतलब इतना ही जतलाना था कि साहित्यिक कला के साथ अगर प्रबल व्यक्तित्व भी हो, तो वही युग-निर्माता साहित्यिक हो सकता है। ऐसे साहित्यिक का स्मरण और उसके अभाव को महसूस कराने के लिए मैंने गांधी, गोर्की, रवीन्द्र का नाम लिया। मेरे सारे कथन का निचोड़ यह है कि जबतब किसी का व्यक्तित्व नहीं बनता और रोटी का रोना रोने की गुंजाइश किसी के लिए रहती है, तबतक वह गांधी गोर्की, रवीन्द्रनाथ के टक्कर का साहित्य-सेवी नहीं बन सकता। संसार की कोई दलील औरकोई उदाहरण इस सत्य का खंडन नहीं कर सकता। ह० उ०

'खुलेपत्र' का सारभाग यह है—

"हिंदी या विश्व की अन्य किसी भाषा का कोई भी महान और सम्मानित साहित्यकार साहित्य की सेवा नहीं करता, न कभी किसी ने की। किसी ने अपने पेट के लिए लिखा, किसी ने अपने नाम भर के लिए अपनी प्रतिभा का उपयोग किया, किसी ने अपने आत्म-संतोष के लिए, किसी ने अपने विचार फैलाने के लिए, किसी ने भगवान के लिए—या अपनी मुक्ति के लिए,··· सबने लिखा अपने निजी स्वार्थ से, साहित्य की सेवा करने की दृष्टि, के प्रयोजन, के ध्येय से नहीं।"

"शेक्सपियर ने नाटक मेरे और आपके और दुनिया के लिए नहीं लिखे थे, थियेटर में खेलने और उससे अपनी रोटी कमाने के लिए लिखे थे। फ़िरदौसी ने शाहनामा सोने की एक लाख अशर्फ़ियों के लिए लिखा था। कालिदास ने विक्रमादित्य से धन-सम्मान पाने के लिए काव्य और नाटक रचे थे। वे साहित्यकार, जो विश्व के सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं, अपने पेट के लिए हीलिखते थे, प्रत्यक्ष में या परोक्ष में। रवीन्द्र भी अपने भूखों मरते शांति-निकेतन—जो उनका अस्तित्व और प्राण और आदर्श और स्वर्ण स्वप्नों का जीवित शरीर है—के पोषण के लिए जगह-जगह नृत्य और नाटक प्रदर्शित करने निकले थे!"

"सभी देशों में, सभी युगों में, सभी साहित्यों में, सभी धर्मों में, जीवन के सभी विभागों में अच्छे और बुरे दामन-चोली से साथ चलते हैं। जहाँ प्रेमचन्द के 'गोदान' का महत्त्व है, वहाँ 'क़िस्सा तोता-मैना' और 'चन्द्रकान्ता संतति' का भी; 'गीतांजलि' का जितना महत्त्व है, उतना ही चावड़ी में गा-गाकर बेचनेवालों की 'भजनावली' का भी, मैं तो कहूँगा कि 'साकेत' से अधिक 'राधेश्याम की रामायण' प्रचलित है, लोक-हृदय के निकट है और उसका महत्त्व है।"

"नेहरूजी की ओर यदि वह खिंचता भी है, तो इसलिए नहीं कि नेहरू अच्छा लिखते हैं, कलाकार हैं, साहित्यकार हैं, वरन इसलिए कि वे एक महान् पुरुष हैं, सब उनकी बात करते हैं, बड़ाई करते हैं, वे प्रसिद्ध हैं—यानी उसके हृदय में नेहरू के प्रति वीर पूजा, श्रद्धा, विस्मय का एक भाव रहता है—जो उसे नेहरू से दूर रखता है, उसने उसके हृदय को छुआ तक नहीं।"

कसौटी पर

बीमारी के इन दिनों में बिस्तर पर लेटे-लेटे अचानक "चन्द्रिका"[1]—कहानियों की एक पुस्तक—समालोचनार्थ मेरे हाथ में आ गयी। उसकी भूमिका पढ़ने से मालूम हुआ कि उसमें स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध के विषय में कुछ नवीन दृष्टि-बिन्दु से विचार किया है तो मैंने समग्र पढ़ डाला। यह पुस्तक कहानी कहने के लिए नहीं लिखी गयी, नारी जीवन के कुछ पहलू खास तौर पर हमारी निगाह में लाने के उद्देश्य से लिखी गयी है। अबतक हमारे समाज में यह धारणा चली आ रही है कि सभी के प्रेम का आलंबन अकेला उसका पति ही है दूसरे से प्रेम का खयाल करना पातिव्रत को भंग करना है। इसके विपरीत 'चन्द्रिका' की कहानियों में यह विचार पेश किया गया है कि स्त्री पति-परायणा रहते हुए भी दूसरे से प्रेम रख सकती है और उसमें कोई दोष की बात नहीं। इस दृष्टि से ये कहानियाँ उन सब व्यक्तियों को पढ़ लेनी चाहिएँ जो इस नये दृष्टि-बिन्दु को जानना या समझना चाहते हों।

हमारे समाज के सामने सचमुच यह सवाल बड़ी तेजी से आ रहा है कि दाम्पत्य-जीवन और स्त्रियों की दृष्टि से पत्नी-जीवन की मर्यादा क्या हो? प्रेम और प्रणय या भोग इन सबका पत्नी के लिए एक ही अधिष्ठाता पति हो या भिन्न-भिन्न? प्रेम, प्रणय या भोग से ऐसी घुली-मिली वस्तु है जो उससे कभी अलग नहीं हो सकती या भोग और प्रणय का अधिष्ठान एक रहते हुए भी प्रेम के आलम्बन अनेक हो सकते हैं? प्रेम के अनेक और स्वतन्त्र आलम्बनों की कल्पना सचमुच वास्तविक है या ये प्रणय और भोग के भिन्न-भिन्न स्वरूप या विकार हैं? ये विचारणीय प्रश्न हमारे सामने हैं जिनका जवाब और सन्तोष-जनक जवाब हमारे मानस-शास्त्रियों और समाज-शास्त्रियों को देना है। पुरुष और स्त्री का जो परस्पर-आकर्षण है उसमें क्या शुरु से आखिर तक प्रणय ही की भावना काम करती रहती है या उसमें प्रेम के लिए भी कोई स्थान है? यदि सब प्रणय-ही-प्रणय है ऐसा मानें तो फिर भाई और बहिन, पिता और पुत्री के प्रेम को भी क्या प्रणय का ही एक अविकसित रूप माना जाय? प्रेम और प्रणय यदि दो हैं तो इसकी विभाजक रेखा क्या समझनी चाहिए? इसी तरह विवाह और प्रेम तथा विवाह और गृह या समाज-व्यवस्था का परस्पर कितना नाता है या होना चाहिए, यह भी एक सवाल पैदा होता है। यदि समाज में स्त्री और पुरुष दोनों का समान दर्जा है—यह सिद्धान्त सही है तो फिर प्रेम और प्रणय के क्षेत्र में स्त्री को वही समानता मिल सकती है और मिलनी चाहिए यह उसका फलितार्थ निकलता है। केवल पश्चिम के स्वतंत्र या भोग-वादी मतों के अनुसार ही नहीं बल्कि पूर्वीय समभाव की दृष्टि से भी इस पहलू पर रोशनी पड़ने की ज़रूरत है। यदि आत्मभाव या समभाव ही पूर्वीय संस्कृति की नींव है तो उसके तमाम समाज और जीवन-व्यापार समभाव ही से चलने चाहिएँ। इस दृष्टि से विचार करें तो हमारे वर्तमान दाम्पत्य जीवन व प्रेम तथा प्रणय-संबंधी रुढ़ कल्पनाओं और भावों की जड़ें हिलती नज़र आती हैं। क्या वह वांछनीय है?।

ह० उ०

खिलौना-घर (उपन्यास) : अनुवादक—प्रो० विश्वमोहनकुमारसिंह एम० ए०; प्रकाशक—हिन्दुस्तानी प्रेस, बाँकीपुर (बिहार); मूल्य ।।।)

यह इब्सेन के सुप्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास, 'डॉल्स हाउस' का अनुवाद है। भूमिका में विस्तार से इब्सेन की जीवनी, उसके समय, उसकी कला

---

[1] लेखक—श्री रामस्वरूप व्यास; प्रकाशक—नारी-जागरण कार्यालय, इलाहाबाद, मिलने का पता—सतयुग-आश्रम, नं० २८, बहादुरगंज, इलाहाबाद, पृ० सं० ९६, दाम ।।।)

और 'खिलौना-घर' की कथा का विवेचन देकर अनुवादक ने अपनी अध्ययन-प्रियता का परिचय दिया है। उपन्यास मनोरंजक है और वस्तुतः एक समस्या है। हेलमर और नोरा बड़े प्रेमी पति-पत्नी हैं; लेकिन एक ज़रा-सी बात का—वह भी ऐसी बात जो एक मात्र अपने प्रियतम हेलमर की प्राण-रक्षा के लिए की गयी थी—रहस्योद्घाटन होते ही हेलमर समाज की निन्दा के भय से बचाने के बजाय उसपर बिगड़ उठता है ! यहीं नोरा को आत्मभान होता है। पति-प्रेम का उसका भ्रम मिट जाता है और उसकी आत्मा कह उठती है—'वह स्त्री है तो क्या ? पहले वह मनुष्य है, तब पत्नी और माता है।' और सोचती है, 'जब वह मनुष्योचित अधिकारों का उपभोग नहीं कर सकती तो पत्नी होकर क्या ?' इसी उधेड़बुन में वह पति और बच्चों को भी छोड़ देती है। दूसरी ओर क्रौगस्टड और लिण्डेन हैं। इनमें पहले मित्रता थी, पर आवश्यकतावश उन्हें एक दूसरे से जुदा रहना पड़ा। बहुत दिनों बाद जब मिले तो एक को स्त्री का और दूसरे को पुरुष का अभाव था; अतः एक-दूसरे के स्पष्ट ज्ञान के साथ बीतों को बिसारकर वे ऐसे विवाह-सम्बन्ध में आबद्ध होगये, जिसके सुखप्रद होने की छिपी संभावना है। इसका भावार्थ यह हुआ कि "प्रेम और परस्पर के स्पष्ट ज्ञान पर स्थित विवाह ही शुद्ध विवाह है," अथवा वर्तमान सामाजिक प्रथा में पति के लिए पत्नी मानो एक गुड़िया के समान है और गृहस्थी एक खिलौना-घर। हमारे विचार में यह समस्या का अतिरंजित रूप है और वास्तविक बात है समाज की मर्यादा—जिसके पालन के लिए, समाज द्वारा स्वीकृत नियमों को रक्षार्थ, कभी-कभी अपने प्रियजनों के साथ भी मनुष्य को कठोर बनना पड़ता है। अनुवाद यों तो योग्य हाथों हुआ है, पर भाषा कहीं-कहीं विशृंखल है और 'पेंचा' जैसे शब्दों से बिहारीपन छलक पड़ता है।

कार्ल और अन्ना : अनुवादक—प्रो० देवराज उपाध्याय, एम० ए०; प्रकाशक—सरस्वती प्रेस, बनारस; पृष्ठ ९३; मूल्य ।।)

यह जर्मन उपन्यासकार लियनहार्ड फ्रैंक के उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद है। इसमें भी गार्हस्थ्य-जीवन का एक अजीब चित्रण किया गया है। युद्ध के साथ बन्दी बने हुए दो व्यक्ति निर्जन स्थान में एकसा जीवन बिताते हुए अपनी बीती बातों को कह-कहकर ही मन बहलाते हैं। उनमें एक जो विवाहित था, अपने विवाहित जीवन के अनुभव और दृश्य सुना-सुनाकर अपना बोझ हल्का करता रहता था। इस सिलसिले में अपनी पत्नी के अंग-प्रत्यंग तथा हर समय के हाव-भाव तक का विस्तार से वह वर्णन कर गया, जिसे सुनते-सुनते उसका साथी निर्दोष भाव से उसकी पत्नी की ओर अनुरक्त हो गया और वह भी वैसे ही सुख-स्वप्न सेने लगा। संयोगवश वह पहले मुक्त हुआ; और तत्काल सीधा मित्र-पत्नी के पास पहुँचा और उसके पतित्व का दावा किया। पत्नी भी कैसी भोली कि आखिर उसपर विश्वास करके उसीको पति मानने लगी ! बाद में पति आया; पर उसकी पत्नी दूसरे की होचुकी थी। पति इसपर स्वभावतः कुपित हुआ और आवेश में आया; पर पत्नी ने बीच में पड़कर कहा, "मैं उसके बिना जी नहीं सकती। मेरी हत्या कर डालो।" तब वह कटे वृक्ष की भाँति बैठ गया और पत्नी अपने नये पति के साथ चल दी। यह जीवन कहाँ तक स्वाभाविक है, इसमें हमें सन्देह है। प्रकाशक ने शुरू में ही दिया है कि 'सम्भव है कुछ पाठकों की सुरुचि-भावना के प्रति यह पुस्तक बलात्कार करे।" इसलिए इसमें ऐसी किसी बात के लिए तो तैयार थे; परन्तु हम प्रकाशक की इस बात से सारी पुस्तक पढ़ लेने के बाद भी सहमत नहीं हो सके कि "जीवन की अनिवार्यताओं का कोई जवाब नहीं है।" हमारी समझ में यह संयम से स्वच्छन्दता की ओर प्रेरणा है, जो कभी वांछनीय नहीं। इसी कारण हम इसे 'अमर कृति' मानने को भी तैयार नहीं हैं। बल्कि ऐसी पुस्तकों से बहुत लाभ हो सकता है, इसमें भी हमें तो सन्देह ही है।

मुकुटबिहारी वर्मा

हिलोर (१२ कहानियों का संग्रह) : लेखक-श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी; प्रकाशक—गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ; मूल्य १); पृष्ठ-संख्या १८२, क़ाग़ज़ और छपाई उत्तम।

इस संग्रह की सभी कहानियाँ पवित्र, उज्ज्वल और आदर्श प्रेम पर आधारित हैं। कहानियों में गति है, भाव निखरे हुए हैं, विचार निखरे हुए हैं, शैली नवीन है। और फिर भगवती बाबू की कहानियों के बारे में एक शब्द ही काफ़ी होगा कि वे उत्कृष्ट कला का जागता हुआ नमूना हैं।

'हिलोर' के प्राक्कथन में प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर श्री अमरनाथ झा ने लिखा है—कहानी लिखने में बड़ी विलक्षण योग्यता उपेक्षित है। और मैं समझता हूँ झा साहब ने जिस योग्यता की ओर इशारा किया है, वह प्रस्तुत कहानीकार में पूर्णरूपेण विद्यमान है। इस संग्रह की कहानियों में सर्व-श्रेष्ठ कहानी है, झाँकी; इसके चरित्र, वार्तालाप, भाव, भाषा और वातावरण अन्य कहानियों से अधिक मँजे हैं। 'उस क्षण का सुख', 'अपमान', 'हत्यारा', त्याग और 'टिकुली' क्रमशः अन्य कहानियों से आगे हैं।

कथाकार भगवतीप्रसाद अपनी अन्य रचनाओं की ही तरह 'हिलोर' की कहानियों में भी स्पष्टतया खुले हुए हैं और उनकी ये कहानियाँ भी हिन्दी कथा-साहित्य में उनकी अन्य रचनाओं की तरह अपना अलग स्थान रखती हैं। फिर भी एक बात है, उनका यथार्थवाद अभी उतना सामने नहीं है जितना होना चाहिए। सब मिलाकर संग्रह सफल है।

ब्रजेन्द्र

प्रजातन्त्र : लेखक—श्री बा० रा० मोडक : अनुवादक—श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे; प्रकाशक-ग्रन्थमाला कार्यालय, बाँकीपुर; पृष्ठ २४४; १॥)

प्रस्तुत पुस्तक प्रजातन्त्र शासन-पद्धति पर एक गम्भीर और अध्ययनपूर्ण प्रयत्न है। प्रजातंत्र का विकास, उसकी विशेषताएँ, प्रजातन्त्र-पद्धति का स्वरूप, व्यवस्थापक सभाएँ, मन्त्रिमण्डल, दलबन्दी, स्थानिक स्वराज्य, संस्था, आदि प्रजातन्त्र के प्रायः सभी अंगों की विस्तृत विवेचना के बाद प्रजातन्त्र के गुणदोषों पर विस्तार से विचार किया गया है और अन्त में व्यक्तिवाद, समाजवाद और डिक्टेटरशिप की पद्धतियों का प्रतिपादन करते हुए प्रजातन्त्र के भविष्य पर प्रकाश डाला गया है। इस तरह पुस्तक को सर्वांग-संपूर्ण बनाने का सुन्दर प्रयत्न किया गया है। प्रतिपादन-शैली में बहुत सरसता नहीं, लेकिन शास्त्रीय विषय की भाषा के अनुरूप ही है, यद्यपि कुछ स्थलों पर भाषा संस्कृतबहुल और अधिक क्लिष्ट शब्दों के कारण जटिल हो गयी है।

आजकल के अनेक विचारक कहते हैं कि समाजवाद प्रजातन्त्र का सर्वोच्च विकास है, पर लेखक समाजवाद के चकाचौंध में नहीं पड़ा। वह समाजवाद के दोषों से अच्छी तरह परिचित है और उसने समाजवाद की आलोचना करते हुए उचित साहस से काम लिया है। "समाजवाद से सरकार पहले से भी बनिया बन जायगी।" "पूँजीवाद भी सरकार के हाथों में जाकर और बलवान बन गया है।" "समाजवाद से एक अति प्रबल प्रचण्ड, सर्वाधिकारी नौकरशाही निर्माण होगी। यह नौकरशाही प्रयत्न प्रभावशाली और सर्वाधिकारी बनकर राष्ट्रहित की दृष्टि में बाधक बन जाती है।" "समाजवाद प्रजातन्त्र के सिर पर एक जोखम है।" उसने केवल भारी स्थापनाएँ योंही नहीं कर डालीं, लेकिन उसके इसके लिए उसने युक्तियाँ भी काफ़ी दी हैं।

लेकिन दूसरी ओर लेखक जहाँ प्रजातन्त्र के गुणों पर प्रकाश डालने में सफल हुआ है, वहाँ वह प्रजातन्त्र पर उठायी गयी आपत्तियों का निराकरण उतने सजीव और जोरदार शब्दों में नहीं कर सका। वह प्रायः हर एक दोष को दबे शब्दों में स्वीकार कर लेता है और इससे पाठक के हृदय में एक ऐसा भाव छूट जाता है जो उसे प्रजातन्त्र का जबर्दस्त हामी नहीं रहने देता। एक स्थल पर तो लेखक स्वयं आपत्तियों से प्रभावित होकर कह देता है—सच्चा और विशुद्ध प्रजातन्त्र केवल एक आभास है।

यद्यपि लेखक भूमिका में ऐतिहासिक दृष्टि

से संशयग्रस्त लोगों के संशय को दूर करने की कोशिश का दावा करता है, तथापि प्रथम और अन्तिम अध्याय को छोड़कर प्रजातन्त्र के सिद्धान्त-वर्णन और स्पष्टीकरण में इतिहास का बहुत कम प्रयोग कर पाया है। उदाहरणत: दूसरी रईसी कौंसिल की उपयोगिता के कुछ ऐतिहासिक उदाहरण देने आवश्यक थे। सिर्फ सबकी नकल में यह कहने से काम नहीं चलेगा कि वह आवेशपूर्ण विचारों पर प्रतिबंध लगाती है। यह भी बताना चाहिए कि किस देश में रईसी कौंसिल ने राष्ट्र को आपत्ति से बचाया। अन्य अनेक स्थलों की पुष्टि के लिए भी ऐतिहासिक उदाहरण देने चाहिए थे।

पुस्तक में एक कमी और है। पुस्तक को भारतीय दृष्टि से लिखने की कोशिश नहीं की गयी। गांधीवाद का भावी शासन-पद्धति में क्या स्थान है, इसकी भी चिन्ता नहीं की गयी। कृष्ण

प्रेमचन्द (आलोचनात्मक परिचय) : लेखक—श्री रामविलास शर्मा, पी·एच्० डी०; प्रकाशक—सरस्वती प्रेस, बनारस; मूल्य २) पृष्ठ १८३, क़ाग़ज व छपाई अच्छी।

स्व० प्रेमचन्द का युग समाप्त हो चुका है, परन्तु उन्होंने अपने युग में जो कार्य किया है वह आज के हमारे प्रगतिशील साहित्य का प्रारम्भिक जीवन कहा जा सकता है।

इस पुस्तक में प्रेमचन्दजी की कथा, आदर्श, और विचारों का सम्पूर्ण आलोचनात्मक परिचय है। प्रेमचन्द के समाज, उनकी राजनीति और प्रगतिशीलता पर शर्माजी ने मननीय विचार पेश किये हैं। प्रेमचन्द का हर दृष्टि से अध्ययन करने के बाद यह पुस्तक लिखी गयी है। साहित्य के विद्यार्थियों के काम की चीज है। निरंजन

समालोचनार्थ प्राप्त

कहानी, एक कला : ले०—श्री गिरधरलाल शर्मा; प्रकाशक—ग्रन्थमाला-कार्यालय, पटना; मूल्य १)

भारतीय ईश्वरवाद : ले०—श्री पं० रामावतार शर्मा; प्रकाशक—ग्रंथमाला-कार्यालय, पटना;

नागरिक शिक्षा : ले०—श्री भगवानदास केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, वृंदावन; मूल्य ।।=)

मुक्ति-गान : ले०—श्री काशीराम शास्त्री 'पथिक'; प्रकाशक—शिक्षा-सदन, सन्तनगर, लाहौर; मूल्य ।।)

मंजीर : ले०—श्री गिरिजाकुमार माथुर; प्रकाशक—इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग; मूल्य ।।।)

यह छूतछात : ले०—श्री आनन्द कौसल्यायन; प्रकाशक—सुमन् वात्स्यायन, सारनाथ (बनारस); मूल्य =)

मठा : उसके गुण तथा उपयोग : ले०—श्री कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय; प्रकाशक—महेन्द्र रसायनशाला, कटरा, इलाहाबाद; मूल्य ।=)

तुलसी-दर्शन : सं०—श्री कमलधारीसिंह 'कमलेश' : शुभकरण सुराणा; प्रकाश माहेश्वरी विद्यालय, ४, शोभाराम वैशाख स्ट्रीट, कलकत्ता

सन्त-साहित्य : लेखक—श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव, एम० ए०; प्रका०—ग्रंथमाला कार्यालय, बाँकीपुर; पृ० २९४; मू० २)

पत्र-पत्रिकाएँ

प्रदीप : सम्पादक—श्री जगदीश एम० ए०; 'प्रदीप'-कार्यालय, मुरादाबाद; वार्षिक मूल्य ४)

व्यापारी कानून : सं०—श्री कपूरचन्द्र जैन; प्रकाशक—के० सी० सत्यवादी, नई सड़क; देहली; वार्षिक मूल्य १।)

भूगोल (आसाम-अंक) : संपादक—पं० रामनारायण मिश्र, बी० ए०; प्रका०—'भूगोल' कार्यालय, प्रयाग; पृ० सं० १२७; मू० १)

सहयोगियों में से

शिक्षक का कर्त्तव्य

संसार के इतिहास को लेकर अहिंसक समाज को अपना लक्ष्य बनानेवाले शिक्षक को, बालकों को बताना चाहिए कि जिस प्रकार हर-एक युद्ध घरेलू कलह अथवा यादवस्थली है, उसी प्रकार हरएक खून एक अपघात है। खून करनेवाला व्यक्ति जिसका खून करता है, उसका उतना नहीं बिगाड़ता जितना कि वह खुद अपना और अपने आदमियों का बिगाड़ता है।...

और यह सिखाते हुए आपको बालकों को यह सिखाना होगा कि उन्हें मनुष्य से देवता बनना है, पशु बनना नहीं है। मुझसे कुछ शिक्षक पूछते थे कि 'इतिहास किस तरह सिखाया जाय? उसमें तो औरंगजेब का वर्णन करने से भी टण्टा खड़ा हो जाता है।' मैं विनय-पूर्वक कहना चाहता हूँ कि अगर आप पक्षपात-रहित होकर इतिहास सिखायेंगे, तो टण्टा होने की सम्भावना नहीं रहेगी। अगर औरंगजेब था तो अकबर भी था और अगर हैदर था तो टीपू भी तो था ही। लड़ाइयाँ केवल हिन्दू-मुसलमानों के ही बीच नहीं होतीं। प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिकों में तथा मुसलमान और ईसाइयों में खूंखार लड़ाइयाँ हुई हैं। परन्तु इतिहास में से पाठ यही सीखना है कि इस जंगलीपन में से हमें मनुष्य बनना है।...

आपके दिल में अहिंसा हो, करुणा हो, तो विद्यार्थियों के दिलों में सारी घटना के विषय में आप उद्वेग और घृणा उत्पन्न कर सकेंगे। अन्यथा विद्यार्थियों को भी मज़ा आयगा और उन्हें लगेगा कि कहीं हम भी यह आग देख सकते! इस प्रकार मनुष्य मनुष्यता से गिर कर पशु बन जाता है, इसका अच्छा पाठ आप लड़कों को सिखा सकते हैं।...

शिक्षक ने साम्प्रदायिकता को अगर सम्पूर्ण-रूप से तिलांजलि दे दी हो, तो उसे सर्व धर्म-समानत्व के विकास का प्रयत्न करना चाहिए।...

अब थोड़ी-सी सूचनाएँ करता हूँ, आप हिन्दू शिक्षकों को अपने घर न्यौता देते हैं, चाय पीने बुलाते हैं, भोजन का निमंत्रण देते हैं; कभी किसी मुसलमान-शिक्षक को भी बुलाते हैं? उससे सम्पर्क कीजिए, उससे उसके धर्म की बातें सीखिए, अपने धर्म की बातें सुनाइए। विद्यार्थियों के साथ कितना सम्पर्क रखते हैं? हमारे ज़माने में शिक्षक विद्यार्थियों को अपने घर बुलाकर मुफ्त में पढ़ाते थे। आप मुसलमान विद्यार्थियों को इस तरह कभी बुलाते हैं? मुसलमान विद्यार्थियों को मुफ्त पढ़ाने के लिए घर पर क्यों नहीं बुलाते? उनमें आप जितना भी प्रेम बोयेंगे उसका फल मीठा ही होगा।...

शिक्षक का धंधा पवित्र धन्धा है और आज की विकट परिस्थिति में उनके सामने बड़ा भारी कर्तव्य है।

'सर्वोदय'] **महादेव देशाई**

साहित्य और संस्कृति

एक मनचले महानुभाव ने खूब डटके पी ली थी और फिर रातभर नाव खेते रहे। उम्मीद थी कि दस-पन्द्रह मील तो आगे निकल ही गये होंगे, पर सवेरा होने पर देखते क्या हैं कि नाव जहाँ की तहाँ मौजूद है! बात यह हुई थी कि नाव की रस्सी नदी तट के एक पेड़ से बँधी हुई थी और उसे खोलना आप भूल गये थे!

बस यही स्थिति हमारे साहित्यिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलनों की है। हम **'प्रगतिशील' 'प्रगतिशील'** जोरों के साथ चिल्लाते तो हैं पर हमारा जीवन अवनतिशील अथवा प्रतिक्रियावादी है! दूसरों को मुजरिम समझकर उनपर जज बनकर बैठने की कोई इच्छा हमारे मन में नहीं, इसलिए जब हम इस विषय पर कुछ लिखते हैं तो अपराधियों की सूची में सबसे पहला नाम अपना लिख लेते हैं। अपने अंतर्द्वन्द्व का मुख्य कारण हम यही मानते हैं कि एक लक्ष्य निश्चित करके उसकी ओर निरन्तर बढ़ते जाने का कार्य

हमने अब भी प्रारम्भ नहीं किया । कुछ इने-गिने साहित्यसेवियों को छोड़कर, जिनका राजनैतिक क्षेत्र में उतना ही दखल है जितना साहित्य-क्षेत्र में, हम लोगों में से शेष का जीवन लक्ष्यहीन है ।

'साहित्य के माप-दण्ड' 'सांस्कृतिक मूल्यांकन' 'साहित्य का सृजन' और 'संस्कृति के आधार' इत्यादि शब्दों का प्रयोग तो हमारे यहाँ खूब हो रहा है, पर इन शब्दों के पीछे कोई दृढ़ व्यक्तित्व नहीं ।···

हमारे यहाँ के अच्छे-से-अच्छे लेखकों के लेखों को आप पढ़ जाइए, आपको उनके शब्द-जंजाल के पीछे मतलब की बात बहुत थोड़ी ही मिलेगी । यदि कोई हमसे पूँछे "आखिर आप साहित्य और संस्कृति किसके लिए चाहते हैं ? जिनकी आप सेवा करना चाहते हैं, उन्हीं के कन्धे पर सवार हैं !" तो इसका उत्तर यही हो सकता है—"हमारी साहित्यसेवा या संस्कृति की चर्चा को बुद्धिजीवियों का चोचला ही समझना चाहिए" । ईमानदारी का तकाज़ा है कि हम लोग अपनी भूल को स्वीकार करलें और आगे से सत्य मार्ग का अनुसरण करने की प्रतिज्ञा करें । जो भी बुद्धिजीवी आज अपने हृदय को नहीं टटोलता और अपनी मानसिक शक्ति को अपने चारोंओर की जनता की सेवा के उद्देश्य से प्रेरित नहीं करता, वह अपने सिर पर ज़बरदस्त शाप लिये घूमता है । कुसमय का वाणीविलास भी बेवक्त के भोग-विलास से कम अक्षम्य नहीं । सबसे अधिक अपराधी हैं वे, जो सरासर ग़लत रास्ते पर जा रहे हैं और अपनी ग़लती मंजूर भी नहीं करते !

आजसे कई वर्ष पूर्व आयर्लैण्ड के प्रसिद्ध कवि, चित्रकार और विचारक ए० ई० ने लिखा था:—

"उसी राष्ट्र को हम सुसंस्कृत कह सकते हैं, जिसका साधारण नागरिक—मामूली औसत दर्जे का आदमी भी (केवल असाधारण व्यक्ति नहीं) सुसंस्कृत हो और अपने राष्ट्र के विचारों, कल्पनाओं तथा बौद्धिक इतिहास से उसका परिचय हो । जिस देश में सार्वजनिक संस्कृति पायी जाती है, वहाँ उसका असर घरों में चित्रों या चित्रपटों में बाग़-बग़ीचों में और जीवन-सम्बन्धी सभी क्षेत्रों में दीख पडता है । लोगों में सुरुचि का संचार हो जाता है, गृहजीवन में अनजाने ही सौन्दर्य का प्रवेश हो जाता है और जिस चीज़ का नाम सभ्यता है वह हमारे प्रत्यक्ष हो जाती है । नवयुवक प्रमाद और गप्पाष्टक को छोड़कर अपने अवकाश के समय का सदुपयोग करने लग जाते हैं । स्त्रियों की पोशाक में सुधार हो जाता है और कला तथा संगीत का मानव-जीवन पर प्रभाव पड़ने लगता है । संक्षेप में यों कहना चाहिए कि हमारी आत्मा में जो भौतिकता या दुनयवीपन है वह कण-कण करके आध्यात्मिकता में परिणत हो जाता है । सर्वोत्तम विचारों, सर्वोत्तम आदर्शों और सर्वोत्तम तरीक़ों को सर्वसाधारण तक पहुँचाना ही हमारा आदर्श होना चाहिए, जिससे हमारे देश का औसत जीवन उच्चकोटि का बन जाय । किसी भी देश के लिए यह बात गौरवजनक हर्गिज़ नहीं है कि उसमें थोडे से आदमी तो असाधारण विद्या-बुद्धिवाले हों और अधिकांश जनता के हृदय में अन्धकार का साम्राज्य हो ।···हमारे देश के सर्वसाधारण में जल्दी-से-जल्दी नागरिकता का भाव जाग्रत होना चाहिए और हमें चिन्ता इस बात की करनी चाहिए कि साधारण जनता का रहन-सहन ठीक ढंग का हो । इसके सिवा और सारी बातें फालतू हैं । सरकार की सत्ता केवल इसीलिए है, साहित्य तथा कला का उद्देश्य भी यही है और उद्योग-धंधों का अस्तित्व इसी कारण है ।"

क्या ही अच्छा हो यदि हम हिन्दी साहित्य-सेवी इस तराजू पर अपनी रचनाओं को तोलें और बढ़-बढ़कर बातें करने के बजाय स्वयं अपने जीवन को उपर्युक्त सिद्धान्त पर ढालना प्रारम्भ करें ।

सर्वसाधारण के जीवन से अपने जीवन को मिला देने में और इस प्रकार दोनों को उन्नत बनाने में ही हमारा स्वार्थ और परमार्थ है । बाक़ी सब कोरमकोर शब्द-जंजाल है—महज़ लफ्फ़ाज़ी है ।

'मधुकर'] **बनारसीदास चतुर्वेदी**

प्रगति की ओर

[इस स्तम्भ में जीवन और राष्ट्र-निर्माणकारी प्रवृत्तियों तथा संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय व विवरण दिया जायगा । जो प्रवृत्तियाँ व संस्थाएँ देश व समाज में 'समभाव' बढ़ाने की दृष्टि से काम कर रही हैं उन्हीं के लिए इस स्तम्भ में स्थान रहेगा । 'समभाव' ही हमारे नजदीक उनकी प्रगतिशीलता की कसौटी होगी । —संपादक]

ग्रामकुटीर, सेंधवा (होलकर-राज्य)

यह कुटीर बारेला नामक जंगली जाति की, जो भीलों से मिलती-जुलती है, सेवा ६ साल से बड़ी दृढ़ता व लगन से कर रही है । इसके कार्य को देश-सेवकों ने ही नहीं इंदौर-राज्य के दीवान तथा दूसरे बड़े अधिकारियों ने भी सराहा है । वनवासियों को पढ़ना-लिखना सिखाने, स्वच्छता व आरोग्य का ज्ञान देने व रोग-निवारण करने, खादी को प्रधान मानकर ग्राम-उद्योगों का संगठन करने व वस्त्र-स्वावलंबन की भावना बढ़ाने तथा नशे का बहिष्कार, सामाजिक सुधार, हरिजन-सेवा, गोपालन, कृषि-सुधार, स्वदेशी आदि का प्रचार करने के उद्देश से यह कुटीर स्थापित हुई है । छठे वर्ष में यह काम हुआ है—

(१) चार विद्यालयों में १८८ विद्यार्थियों ने शिक्षा पायी । आध घंटा नित्य प्रार्थना-भजन होते हैं । बालकों के शरीर, दाँत, नाखून, वस्त्रादि की सफाई व नियमित स्नान पर विशेष ध्यान दिया जाता है ।

(२) चारों औषधालयों में २७४२ रोगियों को ३७७८ बार मुफ्त दवा दी गयी ।

(३) दो केन्द्रों में १२८० लटी सूत कता व २॥ मन कपास एक केन्द्र में लुढ़ाया गया । ८४ गज खादी बुनवायी जा सकी ।

(४) पुस्तकालय की ४१७ पुस्तकों में से १९६ बार पुस्तकें लेकर लोगों ने पढ़ीं ।

(५) कुँवा-दुरुस्ती, छुआछूत दूर करने, पुस्तकालय, आदि के द्वारा हरिजनों की सेवा की ।

(६) किसानों के आपसी झगड़े निपटाने, दहेज की कुप्रथा के खिलाफ लोकमत बनाने, स्वच्छता, दुर्व्यसन-रोक का काम लिया गया ।

• इस साल १७६४।) खर्च हुआ । अगले साल के लिए २६२५) का खर्च अन्दाजा गया है ।

मारवाडी रिलीफ़ सोसाइटी, कलकत्ता

१९१३ ई० में देश की इस लोकसेवी संस्था की स्थापना हुई थी और १९३८ में उसे २५ वर्ष हुए । प्रारम्भ में ४ सेवाभावी युवकों द्वारा बनी हुई इस संस्था का रूप आज महान् और विशाल हो गया है । अपनी रजत-जयन्ती पर संस्था ने अपने कार्य का छोटा-सा इतिहास प्रकाशित किया है, जिससे प्रकट होता है कि संस्था ने किस-किस प्रकार १९१६ तक **'मारवाडी सहायक समिति'** और बाद में **'मारवाडी रिलीफ़ सोसाइटी'** के नाम से अब तक भिन्न-भिन्न प्रांतों के स्थानों पर आनेवाले संकटों—बाढ़, दुर्भिक्ष, अकाल, प्लेग, भूकम्प आदि में पीड़ित जनता की तन, मन और विपुल धन से सहायता की है ।

संस्था के प्रमुख विभागों में चिकित्सा [आयुर्वेद, एलोपैथी, विद्युत] विभाग, क़ागज-उद्योग, शिक्षा-विभाग, रसायन-शाला आदि विशे उल्लेखनीय हैं ।

संस्था ने अपने सेवाकार्यों में अभीतक लाखों रुपया खर्च किया है । पीड़ितों की सेवा करनेवाली शायद यह देश की सबसे बड़ी संस्था है ।

स्वाध्याय-मण्डल, फ़ीरोजाबाद

फ़ीरोजाबाद का श्रीभारती-भवन पुस्तकालय पिछले ३० वर्षों से नगर की साहित्यिक सेवा कर रहा है । अभी गत ३० जुलाई को 'तुलसी-जयन्ती' के उत्सव के अवसर पर श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रयत्न से सुरुचिपूर्ण शुद्ध साहित्य के प्रसार तथा स्थानीय साहित्यिकों के संगठन और विचार-विमर्ष के लिए उसके द्वारा एक **'स्वाध्याय-मण्डल'** की स्थापना की गयी । नगर के अनेक साहित्यिक इसके सदस्य बन गये हैं और मण्डल का कार्य्य उत्साहपूर्वक आरम्भ हो गया है ।

जीवन-समस्याएँ

सवाल —एक कुँवारी लड़की के गर्भ रह गया। जिससे गर्भ रहा वह विवाहित है। लड़की का रिश्तेदार भी है। दोनों में काफी प्रेम है। समाज के डर से भयभीत हैं। उन्हें कोई मार्ग बताया जा सकता है ?

जवाब—वे अपना दोष अपने पालकों पर प्रकट करें। पुरुष या तो पहली पत्नी के मान व सुख का पूरा ध्यान रखते हुए इस लड़कीसे दूसरा विवाह कर ले या लड़की के साथ निर्मल प्रेम का व्यवहार रखकर सुपात्र के साथ विवाह करा दें।

स०—एक स्त्री का पति सन्तान पैदा करने में असमर्थ है। स्त्री को दूसरे से गर्भ रहा व उसने पति से प्रकट भी कर दिया। अब दोनों का क्या कर्त्तव्य है ?

ज०—यदि पति सन्तानोत्पादन में असमर्थ है तो या तो उसे शादी ही न करनी चाहिए थी, या कर लेने पर पत्नी को दूसरा विवाह करने की आजादी दे देनी चाहिए थी। अब उसका दूसरी जगह विवाह कर देना ही उचित है। बेहतर तो यह होगा कि जिससे गर्भ रहा है वही विवाह कर ले। उस पुरुष में या दूसरे पुरुषों में ऐसा साहस होना ही चाहिए। जबतक साहस से काम नहीं लिया जायेगा तबतक ऐसे कुप्रसंगों का निवारण न हो सकेगा। इसके लिए जो कष्ट या 'बदनामी' उठानी पड़े वह इस दोष का 'प्रायश्चित्त' या सुधार के लिए 'तप' समझा जाना चाहिए।

स०—एक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता की लड़की की सगाई उसकी माता ऐसे लड़के से करना चाहती है जो कार्यकर्त्ता के विचार व सिद्धान्त के अनुसार ठीक नहीं है। डर है कि माता सगाई कर देगी तो पिता को क्या करना चाहिए ?

ज०—अव्वल तो माता को यह उचित नहीं कि पिता के भावों व सिद्धान्तों को ठुकराकर लड़की की सगाई करे। लड़की की राय भी उसमें अवश्य ली जानी चाहिए। सगाई-विवाह में गहने व रुपये का विचार सबसे ऊपर रखना बहुत ही ग़लत व हानिकर है। बहुधा स्त्रियाँ इसी लोभ या विचार से अनमेल सम्बन्ध कर लेती हैं। यदि पिता की न चले व माता अपनी मर्जी से सगाई कर दे तो पिता उसके विवाह में शरीक न हो। लड़की में यदि दम व जोर हो तो वह भी ऐसे सम्बन्ध से इनकार करे। यदि कन्या को भी वह संबंध मंजूर न हो तो पिता के द्वारा पैसे का असहयोग भी किया जा सकता है। इसमें कोई धर्म-संकट पैदा होता हो तो आपद् धर्म के तौर पर उतना ही पैसा देना चाहिए जितना संस्कार-मात्र के लिए ज़रूरी हो। ह० उ०

हिन्दी की हलचलें

अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अगले अधिवेशन के प्रश्न पर स्थायी समिति ने निर्णय किया है कि शोलापुर में अधिवेशन होना संभव है या नहीं इसकी जाँच की जाये।

अगस्तके प्रथम सप्ताह में राष्ट्रके अनेक नगरों में 'तुलसी'-दिवस तथा जयंती-समारोह मनाये गये।

आगरा सेंट्रल जेल के राजबंदियों ने राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरण गुप्त की ५६वीं वर्षग्रंथि मनायी और विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर के महाप्रयाण पर गुप्तजी के सभापतित्व में शोक-सभा की।

कवि श्री सियारामशरण गुप्त के 'नारी' उपन्यास का तामिल-अनुवाद हो चुका है और अंग्रेज़ी और गुजराती में भी होने जा रहा है।

'मंडल' द्वारा प्रकाशित श्री घनश्यामदास बिड़ला के 'बापू' का तामिल-अनुवाद भी प्रकाशित होगया है। गुजराती अनुवाद प्रेस में है।

हिंदी पुस्तकों का व्यापक प्रचार करने के लिए सहारनपुर में 'साहित्य-सदन' की स्थापनाहुई है।

प्रयाग की एक समिति हिंदी के विख्यात कवि ठाकुर गोपालशरणसिंह की ५०वीं वर्षग्रंथि पर उन्हें एक अभिनन्दन-ग्रंथ भेंट करनेवाली है।

क्या और कैसे ?

मुसीबत की तोबा

सर्व-श्री चर्चिल व रूजवेल्ट ने ब्रिटेन व अमेरिका की तरफ से भावी नयी विश्व-व्यवस्था के सिद्धान्तों की घोषणा की है जिसमें हिन्दुस्तान की दृष्टि से महत्त्व की बात यह है कि उस व्यवस्था में (१) जातियों की ऊँच-नीचता का लिहाज नहीं रहेगा व (२) सब देशों के लोग अपनी पसन्द की शासन-व्यवस्था रख सकेंगे। इसके साथ ही निःशस्त्रीकरण की जरूरत भी महसूस की गयी है। वैसे बातें तो ये अच्छी ही हैं; मगर मुसीबत के समय वादे अक्सर मुसीबत के साथ ही आते जाते रहते हैं। हिन्दुस्तान तो वादों व आश्वासनों से ऊब उठा है। जब हिटलर ने अपनी जाति की सर्वश्रेष्ठता का दावा किया तब चर्चिल सा० की हमदर्दी 'छोटी' व 'नीची' जातियों के साथ बढ़ी। जब भारत ने वर्षों से बग़ावत मचा रक्खी है, व दूसरे देश शंकित हो उठे हैं तब 'अपनी पसंदगी की शासन-व्यवस्था' का ऐलान किया गया--फिर भी उसमें हिन्दुस्तान का नाम कहीं भी नहीं लिया गया है।

निःशस्त्रीकरण की बात तो अब भी सिर्फ़ आक्रामक देशों के लिए कही गयी है। इससे इसका मूल्य कम हो जाता है। मतलब यह कि कुल मिलाकर हमारे मन में इस ऐलान ने नवीन विश्वास या स्फूर्ति का संचार नहीं किया। क्योंकि यह ऐलान उसमें ग्रथित सिद्धान्तों के गुण महत्त्व व मूल्य के कारण किया हुआ नहीं मालूम होता—मुसीबत के वक्त की तोबा मालूम होती है। जो हो—चूँकि ये सिद्धांत खुद अच्छे हैं इसलिए ईश्वर से हमारी प्रार्थना है कि इन्हें अमल में लाने का बल व सुविधा इन दोनों महान् राष्ट्रों को दे। हिन्दुस्तान मुसीबत के इन वादों पर न भूल सकता है न फूल सकता है। वह समझता है कि उसका भाग्य तो उसके अपने आत्म विश्वास व त्याग-बलिदान पर ही अवलम्बित है।

अपनी-अपनी देन

इधर 'मण्डल', 'जी० सा०' तथा मेरे लिए हिन्दी के कुछ पत्रों में बुरा-भला कहा गया है। कुछ मित्रों ने प्रेरणा की है कि उनका जवाब दिया जाय। मेरी राय में दलील व हकीकत का तो जवाब दिया जा सकता है, गालियों का अपशब्दों का क्या जवाब दिया जाय? उन्हें सह लेना ही उचित है; क्योंकि यदि किसी ने गुस्से में लिखा है तो गुस्सा उतर जाने पर वह आप ही पछताने लगेगा। यदि आदत से लाचार होकर लिखा है तो उसका क्या इलाज है? इन मित्रों के बारे में तो दादू ने बहुत पहले कह दिया है—

निंदक बाबा वीर हमारा।
आपन डूबे और को तारै,
ऐसा प्रीतम पार उतारै।

फिर यह तो अपनी-अपनी देन है। जिसकी जो कमाई होती है उसीमें से वह दूसरों को दे सकता है। लेनेवाले अपने-अपने लिए चुनाव कर लिया करें। यहाँ जेल में बनी कुछ सतरें याद आ रही हैं--

"काँटों का यह बाग लगाया काँटों के हैं फूल;
अर्पण हैं तेरे चरणों में तीखे-तीखे शूल।"

भक्त के पास जो कुछ कमाई थी वह उसने भगवान् को अर्पण की। हमारी तरफ से यदि जवाब चाहिए ही तो वह भी दादू ने दे रक्खा है—

"जुग-जुग जीवौ निंदक मोरा"

गरीब लेखकों की ओर से —

हिन्दी की कुछ पुस्तकों के एक लेखक बड़े दुःख के साथ लिखते हैं—" 'जी० सा०' में 'एक कार्यकारी योजना' पढ़ी। उसमें कुछ सफल, कुशल औरधनसम्पन्न लेखकों से थोड़ी-सी ही दक्षिणा में अपनी रचित पुस्तकों को देने के लिए आग्रह--या यूँ समझिए निवेदन—किया गया है। बात है भी ठीक; आज साहित्यिक दुनिया में ही क्या, संसार में उन्हीं की पूजा होती है, जो सम्पन्न,

कलाधर व कुशल हों। दिन भर मज़दूरी करके, चने व रोटियाँ खाकर, एक टिमटिमाते दीपक के उजेले में रात्रि भर जागरण करनेवाले लेखकों की रचनाओं के प्रति भी आप एक इशारा कर देते।" इसके बाद वे अपनी करुण-कथा इस तरह लिखते हैं--

"मैं उन्हीं लेखकों में से एक अभागा लेखक हूँ। ।।-) रोज का मजदूर हूँ। ८ बजे दिन से लेकर, बीच के दो घण्टे छोड़, ७ बजे रात तक ।।-) पैदा करता हूँ। मैंने सूखी रोटियाँ खायीं और मिट्टी के तेल के दिये के उजाले में ३०० रातें गुजार दीं। ताज्जुब होगा कि इनमें मुझे २० रात सोने का खयाल है। मैंने सबसे पहली पुस्तक लिखी……। वह जब्त हो गयी। दो पुस्तकें और निकलीं। लेकिन प्रकाशकों ने हमें जो दिया वह नहीं के बराबर था। आप आश्चर्य न करें, मैं सारी रातें लिखने में गुजारता हूँ। दिनभर…… में मजदूरी करता हूँ और मिलते हैं ।।-) रोज। इतिहास बहुत-से लिखे गये हैं--मगर मेरे इतिहास को देखकर आप एक बार अवश्य चकित हो जावेंगे। मैं ऐसी दशा में यह पत्र लिख रहा हूँ जब कि मेरे पास एक धोती पहनने को है। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं आपसे सहायता चाहता हूँ ऐसे लेखकों की ओर आपका ध्यान दिलाना ही मेरा उद्देश है।"

मुझे खेद है कि मेरे उस लेख से इन भाई ने गलत अर्थ लिया। मेरा वाक्य इस प्रकार है-- 'परन्तु जबकि मण्डल लागत मात्र पर पुस्तकें देने का उद्देश रखता है तब वह लेखकों से भी यह अपेक्षा रखना चाहता है कि वे उसे थोड़ी दक्षिणा पर पुस्तकें दें--खासकर उन लेखकों से जो पहले ही सम्पन्न हैं जिनके सुख या निर्वाह की दूसरी व्यवस्था मौजूद है।' पाठक देख लेंगे कि इसमें मेरा ज़ोर दक्षिणा 'कम' लेने पर है और यह दक्षिणा 'कम' लेने का आग्रह मैंने खुशहाल लेखकों से खासतौर पर किया। इसमें निर्धन लेखकों की उपेक्षा करके खुशहाल लेखकों की आराधना जैसा कुछ नहीं है। मेरी यह पक्की राय है कि जिनकी गुजर-बसर का स्वतंत्र ज़रिया है उन्हें बिना मिहनताना लिए ही लेख व ग्रंथादि लिखने चाहिएँ। जो लेखन पर ही गुजर करते हैं उन्हें ज़रूर सम्मानपूर्वक मिहनताना देना चाहिए। जो प्रकाशक ऐसे लेखकों की मज़बूरी या ग़रीबी से लाभ उठाते हैं वे गुनहगार समझे जाने चाहिएं।

अब एक शब्द मेरे निर्धन लेखक-भाइयों से। आपकी दुखभरी हालत पर किसे गहरी हमदर्दी न होगी? मुझे तो है व मेरा बस चले तो मैं किसी ग़रीब को गिड़गिड़ाने न दूँ। मैं ख़ुद भी 'गरीबों' की ही गिनती में हूँ, रोटी-कपड़े से ज्यादा वेतन नहीं लेता हूँ व मौका आ पड़े तो लेखन-कार्य से ही गुजर करने की इच्छा रखता हूँ। सादगी व गरीबी से रहता हूँ। ज़रूरी कपड़े-लत्ते, बरतन व पुस्तकों के अलावा जेवर या सम्पत्ति जैसी कोई चीज़ मेरे पास नहीं है। बीमारियों की हालत में भी यथेष्ठ फल खाने, दवाओं के दाम देने, मिहमानों को मिष्टान्न खिलाने के लिए मेरे पास पैसा नहीं रहता। सार्वजनिक कार्यों में सहायता देनेवाले मित्रों के रहते हुए भी निजी खर्च में अपने ७५) मासिक में ही चलाता हूँ। इसी को उचित मानता हूँ व ग़रीबी के कष्टों को अपने ब्राह्मणत्व का भूषण मानता हूँ। इतनी रामकहानी मैंने इसलिए लिखी कि पाठक जान जायें कि मुझे अपने ग़रीब भाइयों से सच्ची हमदर्दी करने का, उनकी तरफ़ से कुछ कहने का व खुद उन्हें भी दो शब्द सम्बोधन करने का अधिकार पहुँचता है। मैं ग़रीबी को समझ सकता हूँ, ग़रीबों की इज्जत करता हूँ, उनका सेवक अपने को समझता हूँ, मगर गरीबी की वजह से 'गिड़गिड़ाना' या 'गालियाँ देना' दोनों से मुझे चिढ़ है। ग़रीब होने का मतलब स्वाभिमान-शून्य या असभ्य होना नहीं है। 'मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्' के अनुसार जीवन बनाना व बिताना ही हमारी 'साहित्य-सेवा' की भावना की कसौटी होनी चाहिए। जब निर्धनता के ऐसे आदर्श की

तरफ़ मेरी प्रवृत्ति है तो फिर खुशहाल लेखकों से मैं यह निवेदन किये बिना रहीं नहीं सकता कि वे बिना दक्षिणा लिए साहित्य-सेवा करें। निर्धन लेखकों से मेरी प्रार्थना है कि उनका दर्जा मनीषियों का है। वे 'निर्धनता' व 'बेबसी' की शिकायतें कर करके अपने स्वाभिमान व साहित्य-सेवा को बट्टा न लगावें, न अपने व्यवहार में 'सौदे' या 'बनियापन' की बू आने दें। प्रकाशक 'बनिया' होता है, या बनता है, इसलिए लेखक को भी बनिया बनना पड़े तो यह लेखक की अधोगति व प्रकाशक की अयोग्यता का प्रमाण समझना चाहिए। फूल ही सुगन्ध छोड़ देगा तो फिर उसकी आशा और कहाँ की जायगी?

ह० उ०

गत २२ जुलाई को दो हिन्दी-साहित्य-सेवियों का दुखद अवसान हो गया—'स्वतन्त्र' (झांसी) के सम्पादक श्री जगदीशनारायण रूसिया और लखनऊ विश्वविद्यालय के गणित विभाग के रिसर्च स्कालर श्री अवध उपाध्याय।

रूसियाजी ने इससे पूर्व 'विश्वमित्र,' 'प्रताप' आदि के सम्पादन में सफलतापूर्वक कार्य किया था और वह अपने जिले के प्रमुख कांग्रेसी थे।

उपाध्यायजी गणित के विद्वान तो थे ही, हिन्दी-साहित्य के भी अच्छे समीक्षक थे।

छपते-छपते समाचार मिला है कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध हास्य-लेखक श्री मिर्जा अज़ीमबेग चग़ताई का भी क्षय से देहावसान हो गया!

हम 'मण्डल' और 'जी० सा०' परिवार की ओर से तीनों दिवंगत आत्माओं के शोकाकुल परिवारों के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं। सु०

'मण्डल' की ओर से

कलकत्ता-शाखा

'मण्डल' के हितैषियों, पाठकों और स्नेहियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि कलकत्ता में १३२।१ हरिसन रोड पर मण्डल की शाखा खुल गयी। शाखा में केवल 'मंडल' की पुस्तकें रखने की व्यवस्था की गयी है।

सिंध में भी

सिंध प्रान्त में भी 'मण्डल' की शाखा या सोल सेलिंग एजेंन्सी होने के प्रयत्न चल रहे हैं। हैदराबाद या कराँची इन दो स्थानों में से कहीं पर वह होगी।

मध्यप्रान्त शाखा

मध्यप्रान्त की शाखा का कार्यालय अभी बजाजवाड़ी, वर्धा में रखा गया है। वहाँ उन्होंने अपना कार्य पूरे ज़ोर-शोर से चालू कर दिया है।

रवीन्द्र-स्मृति-ग्रंथ

'मण्डल' ने विश्व-कवि स्व० रवीन्द्रनाथ की स्मृति में एक ग्रंथ निकालकर उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करने का आयोजन किया है। उसकी एक छोटी-सी रूपरेखा हिन्दी के पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजी है। इस बारे में पूरी योजना शीघ्र ही प्रकाशित की जायेगी।

'जीवन-साहित्य' का चन्दा

निम्नलिखित ग्राहक संख्यावाले सज्जनों का 'जीवन-साहित्य' का चन्दा इस अंक में समाप्त होता है। वे चंदे का १) शीघ्र भेजने की कृपा करें।

६४४ से ६४६ ७३५, ७६९, ८०८, ९४७

एक शिकायत

हम अपने ग्राहकों तथा पाठकों का ध्यान एक ऐसी बात की ओर दिलाते हैं जो उनके नैतिक कर्त्तव्य से सम्बन्ध रखती है। 'जीवन-साहित्य' के अंकों में जो कार्ड कृपालु पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ से चिपकाकर भेजे जाते हैं उनमें उनके घर के बालक या दूसरे अविवेकी भाई जिनके हाथ में वे पड़ जाते हैं, ऊटपटाँग, भद्दी या अश्लील बातें लिखकर डाक में डाल देते हैं। कार्ड को यहाँ छुड़ाना पड़ता है। यों संस्था का तो पैसा बिगड़ता है ही, जिन भाइयों के यहाँ से ऐसे कार्ड आते हैं, उनकी साख पर भी इससे भारी बट्टा लगता है। आशा है, आगे वे सावधानी रखेंगे और इस सुविधा का इस प्रकार दुरुपयोग न होने देंगे।

मन्त्री

रूबी जनरल इंश्योरेंस कं० लि०

* * *

हेड आफिस—८, **रॉयल एक्सचेंज प्लेस कलकत्ता**

चैयरमैन—**श्री ब्रजमोहन बिड़ला**

जीवन, अग्नि, मोटर, और समुद्र दुर्घटना के लिए

बीमा-प्रतिष्ठान

* * *

सन् १९४० में ३० लाख से भी ऊपर जीवन-बीमे की पालिसियाँ की हैं।

कुल सम्पत्ति का परिमाण २८ लाख के क़रीब है, चुकता मूलधन १४ लाख ४० हज़ार है।

* * *

शाखाएँ—

बंबई, मद्रास, कोलम्बो
नई दिल्ली, कानपुर, रंगून,
लाहौर, पटना इत्यादि

'सबकी बोली'

सम्पादक—काका कालेलकर

[यह मासिक पत्रिका हर महीने की १५वीं तारीख़ को निकलती है।]

अिसमें आहिस्ता आहिस्ता हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों की साहित्यिक और भाषा-विषयक बातें प्रकाशित हुआ करेंगी।

अिसका मुख्य अुद्देश्य है:—

हिन्दुस्तान की तमाम भाषाओं का आपस में हार्दिक संगठन करना।

भारतमाताको पहचानके लिये और अुसकी सेवा करनेकी शक्ति प्राप्त करने के लिये जिन बातोंकी ज़रूरत होगी, अुन सभी विषयोंकी चर्चा 'सबकी बोली' में हुआ करेगी।

अिसके 'साहित्य-सत्कार' विभागमें राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाओंके सहयोग से राष्ट्रकी अुन्नति करनेवाले सेवकों की विचारधारा का परिचय तथा अुनके साहित्यकी समालोचना रहा करेगी।

अिसमें अेक खास विशेषता यह होगी—

पारिभाषिक शब्द-चर्चा, कहानी, प्रवास, विशिष्ट व्यक्तियोंके शब्द-चित्र, राष्ट्रभाषा-आन्दोलन-सम्बन्धी व विद्यार्थियोंके लाभ के नियमित लेख।

वर्धा-राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति भी अपनी सभी ज़रूरी सूचनाअें अिसमें प्रकाशित करती है।

ख़ास सूचना:—

राष्ट्रभाषा-प्रचार परीक्षाओंमें बैठनेवाले विद्यार्थी अपनी चालू क्रम-संख्या बतलाकर, १ रुपया वार्षिक चन्दा देकर, अेक वर्ष के लिये 'बोली' पा सकते हैं। सर्व-साधारणसे वार्षिक चंदा रु० १-४-० मनीऑर्डर से ही लिया जायगा। हम वी० पी० नहीं भेजते। पत्र-व्यवहार करते समय अपना नाम और पता साफ़-साफ़ नागरी हर्फों में लिखने की कृपा करें। फुटकर संख्या का तथा पुराने अङ्क का मूल्य दो आना। डाक ख़र्च पुरानी संख्याके लिए प्रति अंक)||| और नये अङ्कके लिये)। अङ्क की क़ीमतके साथ अवश्य आ जाना चाहिये।

पता—व्यवस्थापक,

सबकी बोली, वर्धा

आपका व्यापार

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कलेन्डर
- कार्ड बोर्ड बक्स
- लेबिल आदि

पर ही निर्भर है

फोन नं०
६३२७

इसलिये
उपरोक्त सामग्री के
लिये—

मुरारी फ़ाइन आर्ट वर्क्स,
४, दरियागंज देहली

ब्रांच-
कटराबड़ियान
देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच-
कसेरट बाजार
आगरा

और हमारे

२० वर्ष के अनुभव

से लाभ उठाइए

बिहार की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था

'पुस्तक-भण्डार' की कुछ

साहित्यिक पुस्तकें

काव्य-ग्रन्थ

१	विद्यापति की पदावली		२)
२	बिहारी-सतसई		१॥)
३	तुलसी-सतसई		१॥।)
४	गोविन्द-गीतावली		१॥)
५	रसकलस	(हरिऔध)	४)
६	पारिजात	(,,)	४)
७	रेणुका	(दिनकर)	२॥)
८	रसवन्ती	(,,)	१)
९	द्वन्द्वगीत	(,,)	॥)
१०	गुनगुन	(मनोरंजन)	॥।)
११	अन्तर्जगत्	(लक्ष्मीनारायण मिश्र)	।)

आलोचनात्मक

१	भारतेन्दु-साहित्य	(स्व०रामचन्द्र शुक्ल)	१)
२	हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास		५)
३	बिहार का साहित्य		२)
४	वाग्विलास	(महावीरप्रसाद द्विवेदी)	१॥)
५	कविरत्न मीर	(रामनाथ सुमन)	१)
६	दागे जिगर	(,, ,,)	१॥)
७	नूरजहाँ		२॥)

उपन्यास-कहानी

१	देहाती दुनिया	(शिवपूजनसहाय)	१॥)
२	प्रेमिका	(स्व० ईश्वरीप्रसाद शर्मा)	२॥)
३	प्रेम-पथ	(भगवतीप्रसाद बाजपेयी)	२)
४	विमाता	(अवधनारायण)	२)
५	पुरुष-परीक्षा		१)
६	विभूति	(शिवपूजन सहाय)	२)
७	किसलय	(प्रो० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज')	१॥)
८	कानन	(जानकीवल्लभ शास्त्री)	१॥)

बालमनोरंजक

१	बड़ों का बचपन	१॥)
२	आविष्कार और आविष्कारक	॥)
३	सियार पाँड़े	॥)
४	बगुला भगत	॥)
५	बिलाई मौसी	॥)
६	हीरामन तोता	॥)
७	जादू का राग	=)
८	बाल बोस्ताँ	=)
९	बालकों का योरप	।=)
१०	देवता	।=)

यात्रा-सम्बन्धी

१	आवारे की यूरप-यात्रा (सत्यनारायण, पी-एच. डी.)	२॥)
२	कैलाश-दर्शन	१॥)
३	उत्तराखंड के पथ पर	२)

कुछ अमूल्य और उत्तमोत्तम पुस्तकें

[भारतीय-दर्शन-परिचय—न्याय खण्ड ५); बिहार—एक ऐतिहासिक दिग्दर्शन २); बिहार का चित्रित गौरव १); भारतीय इतिहास की बालपोथी १॥); भूलोक-परिचय २); प्रतिवेश-परिचय १॥); बच्चों का चिड़ियाखाना २); आदर्श राघव १); आत्मचरित-चम्पू १॥); रचना-नवनीत १॥।), व्याकरण-चंद्रोदय १)]

पता—पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय और गोविंदमित्र रोड, पटना

हंस

के विशेषांक हिन्दी साहित्य के सृजन में अग्रणी क्यों हैं ?

क्योंकि

- ● उनका दृष्टिकोण सदैव ही प्रगतिशील रहा है।
- ● उनके लेखक अपने विषय के दिग्गज विद्वान हैं।
- ● उनके विषयों का चुनाव अभिनय रहा है।

हंस : कविता-अंक

के लेखक हैं

सुमित्रानन्दन पन्त
सियारामशरण गुप्त
'निराला'
'नवीन'
मैथिलीशरण गुप्त
बच्चन
दिनकर
अज्ञेय
महादेवी वर्मा
रामकुमार वर्मा
माखनलाल चतुर्वेदी
नरेन्द्र शर्मा

अंचल
भगवतीचरण जोशी
उमाशंकर जोशी
स्टीफेन स्पेंडर
हरीन्द्र चट्टोपाध्याय
हीरालाल गोदीवाला
आरदेशर फ० खबरदार
सुनीतिकुमार चटर्जी
शिवदानसिंह चौहान
प्रभागचन्द्र शर्मा
देवेन्द्र सत्यार्थी
एहतिशाम हुसैन

केदारनाथ अग्रवाल
नगेन्द्र
नेमिचन्द्र जैन
नरोत्तमप्रसाद नागर
रामविलास शर्मा
'सत्येन्द्र'
नन्ददुलारे वाजपेयी
हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
गुलाबराय
प्रकाशचन्द्र गुप्त
आदि आदि···

अपनी प्रतियों के लिए अभी से न लिखने पर आपको निराश न होना पड़े, इसलिए अपना चन्दा आज ही भेज दीजिये।

कविता-अंक की प्रति सरस्वती-प्रेस बुकडिपो, अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ; कामताप्रसाद कक्कड़ रोड, प्रयाग से मिलेंगी। आप अपना चन्दा इन शाखाओं में जमा कर मनीआर्डर खर्च बचा सकते हैं।

वार्षिक ६)
एक अंक का आठ आने
कविता-अंक का १)

व्यवस्थापक,
'हंस'
बनारस कैंट

बालोपयोगी इतिहास-माला

उथल-पुथल के इस ज़माने में अनेक देश के भावी नागरिकों को संसार के उलट-फेर से परिचित कराने के लिये **'बालोपयोगी संसार का संक्षिप्त इतिहास'** ३७ खंडों में निकालने की योजना है। पुस्तकें सरस और रोचक ढंग से लिखी गयी हैं कि इन्हें ऐतिहासिक जानकर नीरस और उलझनदार न समझें। कहानी के ढंग पर लिखी पुस्तकें सब सचित्र हैं। ज्ञान का भंडार, **मूल्य प्रत्येक का १)**

प्रकाशित—**वैदिक भारत, पौराणिक भारत, रामायण, महाभारत, अमेरिका, ब्रह्मदेश और बौद्ध भारत। तुर्क भारत, मुगल भारत, राजस्थान, दक्षिणापथ (द्रविड़ों का इतिहास) सिख जाति और महाराष्ट्र,**

विशेष जानकारी के लिये विवरण पत्र मँगाइए।

बिहार, युक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त और बड़ौदा
में शिक्षा-विभाग की स्वीकृत

किशोर

विद्यार्थियों को लोकप्रिय और ज्ञानवर्धक पठन-सामग्री देनेवाला अपने ढंग का अकेला सचित्र मासिक।

'किशोर' विज्ञान, इतिहास की प्राचीन संस्कृति, साहित्य, व्यायाम और शिक्षा आदि के सम्बन्ध में किशोरों की ज्ञान-पिपासा शान्त करता है।

अपने पाठकों को मानव-जीवनक्रम, दुनिया के इतिहास, विज्ञान के शोधकों और साहसिकों के रोमांचक प्रसंगों का परिचय कराता है।

प्रेरक कवितायें, प्रकृति का सजीव वर्णन, यात्रा-विषयक लेख 'किशोर' की विशेषतायें हैं।

वार्षिक ३) : प्रत्येक ।-)

४ था अप्रेल के अंक **'उपकथांक'** से आरंभ हो गया है, किराये के नमूने के लिए ।) का टिकट भेजिये,

हमारा साहित्यिक प्रकाशन

भारतीय ईश्वरवाद	पांडेय रामावतार शर्मा	३)
बिहार-दर्पण	गदाधर प्रसाद अंबष्ट	५)
बिहार के दर्शनीय स्थान	,, ,, ,,	१।।)
प्रजातन्त्र	बा० रा० मोदक	१।।)
कलापी	आरसीप्रसाद सिंह	२)
रिमझिम	हंसकुमार तिवारी	१)
हमारे साहित्य-निर्माता	शांतिप्रिय द्विवेदी	१)
साहित्यिकी	,, ,,	१।।)
जीवन-यात्रा	,, ,,	।।।=)
रामचरित चिंतामणि	रामचरित उपाध्याय	२)
पद्य-प्रमोद	हरिऔध	।।।)
हिन्दी मुहावरे	रामदहिन मिश्र	२।)
हिंदुस्तानी भाषा कोष	मिश्र और अंबष्ट	१।)
नवजीवन	राजा राधिकारमण प्र० सिंह	।।)
उद्भ्रांत प्रेम	चन्द्रशेखर उपाध्याय	।।।)
मेरे यूरोप के अनुभव	डा० राजेन्द्रप्रसाद	।=)
सम्मोहन विद्या	पी० सी० सरकार	।।।)
लाल चीन	रामवृक्ष बेनीपुरी	२)
स्टालिन	रामइक़बालसिंह	२)
खिलौना घर	हेनरिक इसेन	।।।)
हृदय की ओर	दुर्गाशंकर प्र० सिंह	२)
भाई-बहन	मोहनलाल महता	१।)
रजकण	,, ,,	।।।)
विभेद	राधाकृष्ण प्रसाद	।।।)
भूली हुई कहानियाँ	सरयू पंडा गौड़	१।।)
पुण्य फल	व्यथित हृदय	।।)
तुलसी-साहित्य	देवदत्त त्रिपाठी	।।)
शकुन्तला	राजा लक्ष्मणसिंह	।।।)
कहानी-एक कला	गिरधारीलाल शर्मा गर्ग	।।।)
संस्मरण	सर्वदानंद वर्मा	१।।)
ग्राम्य-पंचायत	वि० ग० वझे	।।=)
सन्त-साहित्य	भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'	२)

बाल-शिक्षा-समिति और ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर (पटना)

इतिहास, संस्कृति और राजनीति की मासिक पत्रिका

'विश्ववाणी' ही क्यों पढ़ें ?

'विश्ववाणी' का नामकरण स्वर्गीय कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने किया है

'भारत में अंगरेज़ी राज' के रचयिता पं० सुन्दरलाल इसके संरक्षक हैं

'विश्ववाणी' पर लोकमत

यों तो मैं किसी को आज कल कुछ संदेश नहीं भेजता, लेकिन 'विश्ववाणी' को मैंने चन्द मिनट दीं । 'विश्ववाणी' की विशेषता कि उसमें ज़ाहिर खबर नहीं ली जाती मुझे बहुत प्रिय लगी । मुझे यह भी अच्छा लगा कि 'विश्ववाणी' में सब धर्मों के लेख भरे पड़े हैं···।

—महात्मा गान्धी

'विश्ववाणी' जिस महान् उद्देश्य को लेकर निकली है, मुल्क को उसकी बेहद ज़रूरत है । हर हिन्दुस्तानी को 'विश्ववाणी' पढ़नी चाहिए **—राष्ट्रपति आज़ाद**

ऐसे महान उद्देश्य को लेकर जिस साहस के साथ आपने 'विश्ववाणी' निकालने का आयोजन किया है, मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ **—सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्**

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि हिन्दी में इतनी उच्चकोटि की कोई दूसरी मासिक पत्रिका नहीं है । **—आचार्य नरेन्द्रदेव**

निस्सन्देह 'विश्ववाणी' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका है ।

—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

'विश्ववाणी' का एक-एक अङ्क संग्रह की वस्तु है !

आज ही छै रुपये भेजकर ग्राहक बन जाइए

मैनेजर—

'विश्ववाणी' कार्यालय, साउथ मलाका, इलाहाबाद

हिन्दी
समालोचना
के
अग्रदूत
—❖—
मासिक
साहित्य संदेश
का ही
यह
❖
साहस
है

शुक्ल-अंक का परिचय

प्रस्तुत अंक तीन खण्डों में है और सचित्र छपा है

परिचय—

१. परिचय	स्वर्गीय श्री रामचन्द्र शुक्ल
२. पंडित रामचन्द्र शुक्ल : जीवन-परिचय	बा० श्यामसुन्दरदास
३. आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल : एक झांकी	श्री केशवचन्द्र शुक्ल
४. स्वर्गीय आचार्य का अन्तिम दर्शन	श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'
५. उन चार वर्षों की याद में	श्री उदय एम० ए०

समीक्षा—

६. शुक्लजी की मानसिक भूमिका	श्री जैनेन्द्र
७. शुक्लजी और हिन्दी की परम्परा	श्री रामविलास शर्मा
८. आ० शु० और आई. ए. रिचर्ड्स	श्री नगेन्द्र एम० ०
९. हिन्दी आलोचना और आचार्य शुक्ल	श्री नन्ददुलारे बाजपेयी
१०. आलोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल	श्री रामस्वरूप शर्मा
११. आ० शु० और काशी नागरीप्रचारिणी सभा	श्री रामबहोरी शुक्ल
१२. शुक्लजी का आलोचकों में स्थान	श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी
१३. रामचन्द्र शु० : समालोचक और निबन्धकार	श्री नलिन विलोचन शर्मा एम.ए.
१४. प्रबन्धकार शुक्लजी	श्री सद्गुरुशरण अवस्थी
१५. शुक्लजी के मनोवैज्ञानिक निबन्ध	श्री गुलाबराय एम० ए०
१६. हिन्दी-साहित्य का इतिहास	श्री विश्वम्भरदयाल'मानव'एम.ए
१७. आ० शु० की सर्वप्रथम मौलिक रचना	श्री शिवपूजन सहाय
१८. शु० के इंदौरवाले भाषण की कुछ विशेषताएँ	श्री प्रभाकर माचवे
१९. शु० के काव्य में रहस्यवाद की झलक	श्री गुलाबराय एम० ए०
२०. अनूदित बुद्धचरित	श्री गोपाल व्यास एम० ए०
२१. शुक्लजी के अनुवाद	श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़
२२. शु० की तीन भूमिकाएँ : जायसी, तुलसी, सूर	श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०, श्री सत्येन्द्र एम. ए. श्री गुलाबराय
२३. शुक्लजी की हिन्दी साहित्य को देन	श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्री नलिनीमोहन सान्याल, श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल, श्री उदयनारायण तिवारी और श्री प्रभाकर माचवे

आभार—इसमें अनेकों लेखकों के व्यक्तिगत पत्र संकलित हैं, संपादकीय

६ महीनों में चार विशेषांक

दो छप गये : दो और भी छपेंगे

* नमूना मुफ्त मँगाइए *

मूल्य ३) वार्षिक, विद्यार्थियों के लिए २) पता—साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा

हिंदी का एक अभूत-पूर्व ग्रन्थ !

भारत के तपोनिष्ठ ब्रह्मर्षि

महामना मदनमोहन मालवीय

की पवित्र सेवामयी जीवनी का अभाव 'मंडल' की पुस्तकों में आपको खटका होगा। आपने अनुभव किया होगा कि महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं की आत्मकथाओं को पढ़ लेने पर भी महामना मालवीयजी की जीवन-गंगा में अवगाहन किये बिना जीवन अधूरा-सा लगता है। क्योंकि हमारे राष्ट्र के निर्माण करनेवालों में मालवीयजी का एक अनुपम स्थान है।

पर

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने

मूल्य अजिल्द : डेढ़ रुपया

तीस दिन

मूल्य सजिल्द : दो रुपया

मालवीयजी के साथ

'जी० सा०' तथा 'मण्डल' के ग्राहकों को

केवल १=) में

यह पुस्तक भी महात्माजी की आत्मकथा ही की तरह रोचक और पावन है।

लिखकर

हिन्दी के इस बड़े अभाव की पूर्ति कर दी है।

मेरी कहानी

[पं० जवाहरलाल नेहरू]

के नये संस्करण में पंडितजी ने भारतीय राजनीति की ताजी घटनाओं पर भी दृष्टि डाली है। इस प्रकार अब वह अद्यतन (UP-TO-DATE) हो गयी है।

आज ही आर्डर भेजिए।

दाम तीन रुपये

सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएँ—दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर : वर्धा (नागपुर) : कलकत्ता

Regd No L 4671

साहित्य का एकमात्र उद्देश्य जीवन का निर्माण है !

तब आप निर्जीव और घातक साहित्य की ओर न ललचावें।

साधुमना सन्तों, महापुरुषों और राष्ट्रनेताओं की वाणी

और विचार ही हमें अमृत प्रदान कर सकते हैं !

जीवन के बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक,
समस्त अंगों को बनानेवाला साहित्य

सस्ता-साहित्य-मण्डल से ही मिलेगा

—: कुछ चुने हुए रत्न :—

द० अफ्रीका का सत्याग्रह	[महात्मा गांधी]	स्त्री-पुरुष	[महात्मा टॉल्स्टॉय]
अनीति की राह पर	,,	हम क्या करें ?	,,
आत्म-कथा	,,	प्रेम में भगवान्	,,
हमारा कलंक	,,	मेरी मुक्ति की कहानी	,,
गांधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ	[सर राधाकृष्णन्]	गांधी-विचार-दोहन	[किशोरलाल मश्रुवाला]
मेरी कहानी	[जवाहरलाल नेहरू]	विश्व-इतिहास की झलक	[जवाहरलाल नेहरू]
हिन्दुस्तान की समस्यायें	,,	लड़खड़ाती दुनिया	,,
रोटी का सवाल	[क्रोपाटकिन]	संघर्ष या सहयोग	[क्रोपाटकिन]
कांग्रेस का इतिहास	[डा० पट्टाभि सीतारामैया]	हमारे राष्ट्रनिर्माता	[रामनाथ 'सुमन']
जीवन-सन्देश	[खलील जिब्रान]	समन्वय	[डॉ० भगवान्दास]
खादी-मीमांसा	[बालूभाई मेहता]	गीता-मंथन	[किशोरलाल मश्रुवाला]
लोक-जीवन	[काका कालेलकर]	विनोबा के विचार	[विनोबा]
दिव्य जीवन	[स्वेट मार्डेन]	जीवन-सूत्र	[टॉमस कैम्पिस]
बुद्धवाणी	[वियोगी हरि]	सन्तवाणी	[वियोगी हरि]
हमारे गाँवों की कहानी	[रामदास गौड़]	गाँवों का सुधार-संगठन	[रामदास गौड़]
बापू	[घनश्यामदास बिड़ला]	तीस दिन: मालवीयजी के साथ	[रामनरेश त्रिपाठी]

और 'जीवन साहित्य' मासिक-पत्र : वार्षिक मूल्य १।)

छप रही हैं—१. महावीर-वाणी २. भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन
३. युद्ध और अहिंसा ४. हमारी आज़ादी की लड़ाई

'मण्डल' के स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में

सस्ता-साहित्य-मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएँ—

दिल्ली, लखनऊ, इन्दौर, वर्धा, (नागपुर) और कलकत्ता

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

तमसो मा ज्योतिर्गमय

जीवन साहित्य

२ : अंक ३

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

अक्तूबर : १९४१

गांधी महाराज

गांधि महाराजेर शिष्य
केउ बा धनी, केउ बा निःस्व
एक जायगाय आछे मोदेर मिल;
गरिब मेरे भराइ नि पेट,
धनीर काछे हइ नि तो हेट;
आतंके मुख हय न कभु नील।
षण्डा जखन आसे तेड़े
ऊँचिये घुषि डांडा नेड़े
आमरा हेसे बलि जोयानटाके;
ए जे तोमार चोख - रांगानो
खोकाबाबूर घुम - भांगानो,
भय ना पेले, भय देखाबे काके ?

सिधे भाषाय बलि कथा,
स्वच्छ ताहार सरलता,
डिप्लमैसिर नाइको असुविधे;
गारदखानार आइनटाके
खूँजते हय ना कथार पाके,
जेलेर द्वारे जाय से निये सिधे ।
दले-दले हरिन बाड़ि
चलूल जारा गृह छाँड़ि
घूचल तादेर अपमानेर शाप;
चिरकालेर हातकड़ि जे
धूलाय खसे पड़ल निजे
लागल भाले गांधीराजेर छाप !

स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल

विषय-सूची

१. बढ़े चलो मैं साथिन राही ! (कविता) ७३
[श्री सत्यव्रत 'सुजन', एम. ए.]
२. गरीब लेखकों की समस्या ७४
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]
३. बापू ['एक बालक'] ७६
४. हिन्दी बनाम उर्दू ७९
[प्रो० शांतिप्रसाद वर्मा, एम. ए.]
५. साहित्य क्यों ? [श्री हंसकुमार तिवारी] ८२
६. मेरे लड़के की तालीम [एक पिता] ८५
७. ये जेलखाने ! [श्री रामकृष्ण खद्दरजी] ८७
८. अश्लीलता पर कुछ व्यावहारिक सुझाव ८९
[श्री जैनेन्द्रकुमार]
९. हमारी साम्प्रदायिक समस्या : एक व्यावहारिक दृष्टिकोण ९२
[श्री जवाहिरलाल जैन, एम. ए. 'विशारद']
१०. प्रस्तुत प्रश्न ९५
संयम का स्थान [श्री सम्पूर्णानन्द]; आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् [श्री जनार्दनराय]; अश्लीलता का दमन [श्री कुँवरकिशोर सेठ]
११. कसौटी पर ९९
मध्यप्रदेश का इतिहास; कताई-गणित; नागरिक-शिक्षा; गद्य-सुमन; वर्तमान युद्ध में पोलैण्ड का बलिदान; भारती; विश्वधाय कहानी—एक कला; गल्पहार; देशदर्शन; उपनिषदों की कथाएँ; पड़ोसी; हिल्लोल; सुगम बाल-बोध; लोरियाँ और बालगीत।
१२. हिन्दी की हलचलें १०४
१३. प्रगति की ओर १०५
१४. क्या और कैसे ? १०६
पंजाब की जिम्मेदारी; 'आलोचक-मण्डल' की स्थापना; जरूरी आयोजन; फ़ायदा नहीं; ध्यान देने लायक; स्व० ठाकुर केसरीसिंह बारहठ !; गांधी महाराज

आप बेकार क्यों बैठे हैं ?
हमारे काम में हाथ बटाइए, न !
उसका अर्थ स्वतः सेवाकार्य भी हो जायगा

हमारी विशुद्ध ओषधियाँ, रस, भस्म, आसव, अरिष्ट सुगन्धित तैल और पापड़ इत्यादि बेचकर आप रुपये कमा सकते हैं और हमारे द्वारा अनाथों और पीड़ितों के सेवा-कार्य में भी इस प्रकार आप सहायक हो सकते हैं।

तुरन्त पत्र-व्यवहार कीजिए

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी ३९१ अपर चितपुर रोड कलकत्ता

'हिन्दी मन्दिर' प्रयाग का प्रकाशन

सस्ता साहित्य मण्डल तथा 'जीवन-साहित्य' के ग्राहकों को

पौने मूल्य में

पाठक अन्यत्र पढ़ चुके हैं कि 'मण्डल' ने पण्डित रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संचालित 'हिन्दी मन्दिर' का सारा स्टॉक और स्वामित्व अपने अधिकार में ले लिया है। प्रयाग में 'मण्डल' के अधीन यह प्रकाशन-मन्दिर पुनस्संगठित किया जा रहा है। 'मण्डल' की शाखा भी वहाँ खोल दी गयी है। अब 'हिन्दी-मन्दिर' की पुस्तकें 'मण्डल' की अन्य पुस्तकों की भाँति उसके स्थायी ग्राहकों तथा 'जीवन-साहित्य' के ग्राहकों को पौने मूल्य में मिलेंगी। 'मंडल' की अन्य शाखाओं में भी ये पुस्तकें रखने की व्यवस्था की जा रही है। हिंदी मन्दिर की पुस्तकों की सूची और मूल्य नीचे दिये जा रहे हैं—

साहित्यिक

पुस्तक	ले०	मू०
१—कविता-कौमुदी, पहला भाग	रामनरेश त्रिपाठी	३)
२— ,, दूसरा भाग	,,	४।।)
३— ,, चौथा भाग (उर्दू,)	,,	३)
४— ,, सातवाँ भाग (बंगला)	,,	३)
५—तुलसीदास और उनकी कविता पहला भाग		२)
६—दूसरा भाग		२।।)
७—सुदामा-चरित, सटीक	,,	।)
८—पार्वती-मंगल, ,,	,,	।)
९—अयोध्या-काण्ड, ,,	,,	।।।)
१०—हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास	,,	।=)
११—सुकवि-कौमुदी ,,	,,	।।।)
१२—नीति के श्लोक, अर्थ-सहित	,,	।।)
१३—मारवाड़ के मनोहर गीत	,,	।)
१४—उर्दू ज़बान का इतिहास	,,	।।)
१५—समाज और साहित्य (निबंध) (दो भाग)	आनन्दकुमार	१।।)
१६—शिवा-बावनी	रामनरेश त्रिपाठी	।।)
१७—स्वप्नों के चित्र	,,	।)

कविता

पुस्तक	ले०	मू०
१८—पथिक	रामनरेश त्रिपाठी	।।)
१९—मिलन	,,	।।)
२०—स्वप्न	रामनरेश त्रिपाठी	।।)
२१—मानसी	,,	।।)
२२—हिन्दी-पद्य-रचना—पिंगल		।।)
२३—रत्ना	कुँ० सोमेश्वरसिंह	।।)
२४—दृग-जल	,,	।।)
२५—तूणीर	देवदूत	।।)
२६—Hindi Folk Songs	A. G. Shirreff	१)
२७—पुष्प-बाण	आनन्दकुमार	।।)

नाटक

पुस्तक	ले०	मू०
२८—बानर-संगीत (बच्चों के लिए)	रामनरेश त्रिपाठी	।)
२९—जयन्त (युवकों के लिए)	,,	।।।)
३०—प्रेम-लोक (युवतियों के लिए)		।।)
३१—वफ़ाती चाचा (हिंदू-मुसलिम-एकता के लिए)		।।)

कहानियाँ

पुस्तक	ले०	मू०
३२—तरकस	रामनरेश त्रिपाठी	।।)
३३—वीथिका	श्रीगोपाल नेवटिया	।।)
३४—यूरोप की कहानियाँ	,,	२।।)

स्त्री-शिक्षा

पुस्तक	ले०	मू०
३५—कुल-लक्ष्मी (अनुवाद)	पुरुषोत्तमदास लोहिया	।।)
३६—दम्पति-सुहृद ,,	भगवानदीन पाठक	।।)
३७—सोहर	रामनरेश त्रिपाठी	।।)

बाल-साहित्य

पुस्तक	ले०	मू०
३८—जवाहर-ताश	रामनरेश त्रिपाठी	।।)
३९—गोरी-पत्ता	,,	।।)
४०—गुपचुप-कहानियाँ, दो भाग	,,	।।)
४१—बताओ तो जानें (गोरख-धंधा)		।।)
४२—बाल-कथा-कहानी, १७ भाग	,,	।=)
४३—परियों की कहानियाँ, पहला भाग	आनन्दकुमार	।=)
४४— ,, दूसरा भाग	द्वारकाप्रसाद	।=)
४५—राक्षसों की कहानियाँ	आनन्दकुमार	।=)
४६—जादू की कहानियाँ	आनन्दकुमार	।=)
४७—मोहनमाला (कविता)	रामनरेश त्रिपाठी	।।।)
४८—हँसू की हिम्मत ,,	,,	।)
४९—नेता-बुझौवल ,,	,,	।)
५०—खोजो, खोज निकालो	,,	।)
५१—मोतीचूर के लड्डू	,,	।)
५२—सस्ती कहानियाँ (१४ भाग) प्रत्येक का मूल्य		=)

जीवन-चरित

५३—अशोक	रामनरेश त्रिपाठी	।)
५४—चन्द्रगुप्त	,,	।)
५५—महात्मा बुद्ध	,,	।)
५६—आल्हा	,,	।)
५७—मुसलिम सन्तों के चरित	श्रीगोपाल नेवटिया	२)

वैद्यक

५८—घर का वैद्य	अत्रिदेव	१२)
५९—घरेलू इलाज		।)

व्यायाम

पुस्तक	ले०	मू०
६०—योग के आसन और कसरतों के चित्र :	रामनरेश त्रिपाठी	१)
६१—कबड्डी	मुनीश्वरप्रसाद त्रिपाठी	।)

कोष

६२—हिन्दुस्तानी कोष :	रामनरेश त्रिपाठी	२)
६३—पॉकेट डिक्शनरी (हिंदी-अंग्रेजी)		१।।)

फुटकर

६४—सद्गुरुरहस्य :	कोशलेंद्रप्रताप साही	२।।)
६५—हिन्दुओं के व्रत और त्योहार	कुँवर कन्हैयाजू	१।।)
६६—अंग्रेजी शिष्टाचार		२)
६७—चिन्तामणि (भजनों का संग्रह)		।-)

किसानोपयोगी

८६—नमूने का गाँव और मिट्टी के सुखदायक घर :	रामनरेश त्रिपाठी	१)
६९—किसानों की कहावतें :	आनन्दकुमार	।)
७०—किसानों के काम की बातें	रामनरेश त्रिपाठी	।)
७१—हमारा ग्राम-साहित्य	,,	१।)

रीडरें

१०१-१०६—हिन्दी-ज्ञानोदय, छः भाग		२।-)
१०७-.१३—कन्या-शिक्षावली	,,	१।।।-)
११४—हिन्दी प्राइमर, दो भाग	,,	≡)
११५—हिन्दी-पत्र-शिक्षक	,,	=)

—मिलने का पता—

हिन्दी मन्दिर

[संचालक—सस्ता-साहित्य-मण्डल]

प्रयाग

सूचना—पुस्तक-विक्रेताओं को खास रिआयतों के लिए 'मण्डल' से पत्र-व्यवहार करना चाहिए।

व्यवस्थापक

पहले सम्पत्ति प्राप्त कीजिए, फिर पैसा बचाइए। बीमा कराने से
आपको एक निश्चित रक़म ज्ञात रहती है। फिर आप
किश्त से रुपया चुका सकते हैं।

जीवन-बीमे में मूल्य घटता नहीं,
समय पाकर बढ़ता
ही है।

परामर्श कीजिए :—

रूबी जनरल इंश्योरेंस
कं० लि०

चैयरमैन
सेठ ब्रजमोहन बिड़ला

हेड आफिस—
नं० ८, रॉयल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता
शाखाएँ—
बंबई, नई दिल्ली, मद्रास लाहौर कानपुर
पटना अहमदाबाद रंगून कोलम्बो इत्यादि।

इतिहास, संस्कृति और राजनीति की मासिक पत्रिका

'विश्ववाणी' ही क्यों पढ़ें ?

'विश्ववाणी' का नामकरण स्वर्गीय कवि रवीन्द्रनाथ
ठाकुर ने किया है

'भारत में अंगरेज़ी राज' के रचयिता पं० सुन्दरलाल
इसके संरक्षक हैं

'विश्ववाणी' पर लोकमत

यों तो मैं किसी को आज कल कुछ संदेश नहीं भेजता, लेकिन 'विश्ववाणी' को मैंने चन्द मिनट दीं। 'विश्ववाणी' की विशेषता कि उसमें ज़ाहिर खबर नहीं ली जाती मुझे बहुत प्रिय लगी। मुझे यह भी अच्छा लगा कि 'विश्ववाणी' में सब धर्मों के लेख भरे पड़े हैं...।

—महात्मा गान्धी

'विश्ववाणी' जिस महान् उद्देश्य को लेकर निकली है, मुल्क को उसकी बेहद ज़रूरत है। हर हिन्दुस्तानी को 'विश्ववाणी' पढ़नी चाहिए। **—राष्ट्रपति आज़ाद**

ऐसे महान उद्देश्य को लेकर जिस साहस के साथ आपने 'विश्ववाणी' निकालने का आयोजन किया है, मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ। **—सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्**

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि हिन्दी में इतनी उच्चकोटि की कोई दूसरी मासिक पत्रिका नहीं है। **—आचार्य नरेन्द्रदेव**

निस्सन्देह 'विश्ववाणी' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका है।

—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

'विश्ववाणी' का एक-एक अङ्क संग्रह की वस्तु है!

आज ही छै रुपये भेजकर ग्राहक बन जाइए

मैनेजर—
'विश्ववाणी' कार्यालय, साउथ मलाका, इलाहाबाद

आपका व्यापार

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कलेन्डर
- कार्ड बोर्ड बक्स
- लेबिल आदि

पर ही निर्भर है

इसलिये
उपरोक्त सामग्री के
लिये —

फोन नं०
६३२७

मुरारी फ़ाइन आर्ट वर्क्स,
४, दरियागंज देहली

ब्रांच-
कटराबड़ियान
देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच-
कसेरट बाजार
आगरा

और हमारे

२० वर्ष के अनुभव

से लाभ उठाइए

बालोपयोगी इतिहास-माला

उथल-पुथल के इस ज़माने में अनेक देश के भावी नागरिकों को संसार के उलट-फेर से परिचित कराने के लिए **'बालोपयोगी संसार का संक्षिप्त इतिहास'** ३७ खंडों में निकालने की योजना है। पुस्तकें सरस और रोचक ढंग से लिखी गयी हैं कि इन्हें ऐतिहासिक जानकर नीरस और उलझनदार न समझें। कहानी के ढंग पर लिखी पुस्तकें सब सचित्र हैं। ज्ञान का भंडार, **मूल्य प्रत्येक का १)**

प्रकाशित—**वैदिक भारत, पौराणिक भारत, रामायण, महाभारत, अमेरिका, ब्रह्मदेश** और **बौद्ध भारत। तुर्क भारत, मुगल भारत, राजस्थान, दक्षिणापथ (द्रविड़ों का इतिहास) सिख जाति और महाराष्ट्र,**

विशेष जानकारी के लिए विवरण-पत्र मँगाइए।

बिहार, युक्त प्रान्त, मध्यप्रान्त और बड़ौदा के शिक्षा-विभाग से स्वीकृत

किशोर

विद्यार्थियों को लोकप्रिय और ज्ञानवर्धक पठन-सामग्री देनेवाला अपने ढंग का अकेला सचित्र मासिक।

'किशोर' विज्ञान, इतिहास की प्राचीन संस्कृति, साहित्य, व्यायाम और शिक्षा आदि के सम्बन्ध में किशोरों की ज्ञान-पिपासा शान्त करता है।

अपने पाठकों को मानव-जीवनक्रम, दुनिया के इतिहास, विज्ञान के शोधकों और साहसिकों के रोमांचक प्रसंगों का परिचय कराता है।

प्रेरक कवितायें, प्रकृति का सजीव वर्णन, यात्रा-विषयक लेख 'किशोर' की विशेषतायें हैं।

वार्षिक ३) : प्रत्येक ।-)

४ था वर्ष अप्रेल के 'उपकथांक' से आरंभ हो गया है। नमूने के लिए ।) का टिकट भेजिए,

हमारा साहित्यिक प्रकाशन

भारतीय ईश्वरवाद	पांडेय रामावतार शर्मा	३)
बिहार-दर्पण	गदाधर प्रसाद अंबष्ट	५)
बिहार के दर्शनीय स्थान	,, ,, ,,	१॥)
प्रजातन्त्र	बा० रा० मोदक	१॥)
कलापी	आरसीप्रसाद सिंह	२)
रिमझिम	हंसकुमार तिवारी	१)
हमारे साहित्य-निर्माता	शांतिप्रिय द्विवेदी	१)
साहित्यिकी	,, ,,	१॥)
जीवन-यात्रा	,, ,,	॥≡)
रामचरित चिंतामणि	रामचरित उपाध्याय	२)
पद्य-प्रमोद	हरिऔध	॥)
हिन्दी मुहावरे	रामदहिन मिश्र	२।)
हिंदुस्तानी भाषा कोष	मिश्र और अंबष्ट	१।)
नवजीवन	राजा राधिकारमण प्र० सिंह	।।)
उद्भ्रांत प्रेम	चन्द्रशेखर उपाध्याय	॥)
मेरे यूरोप के अनुभव	डा० राजेन्द्रप्रसाद	।≡)
सम्मोहन विद्या	पी० सी० सरकार	॥)
लाल चीन	रामवृक्ष बेनीपुरी	२)
स्टालिन	रामइक़बालसिंह	२)
खिलौना घर	हेनरिक इब्सेन	॥)
हृदय की ओर	दुर्गाशंकर प्र० सिंह	२)
भाई-बहन	मोहनलाल महता	१।)
रजकण	,, ,,	॥)
विभेद	राधाकृष्ण प्रसाद	॥)
भूली हुई कहानियाँ	सरयू पंडा गौड़	१॥)
पुण्य फल	व्यथित हृदय	।।)
तुलसी-साहित्य	देवदत्त त्रिपाठी	।।)
शकुन्तला	राजा लक्ष्मणसिंह	॥)
कहानी-एक कला	गिरधारीलाल शर्मा गर्ग	॥)
संस्मरण	सर्वदानंद वर्मा	१॥)
ग्राम्य-पंचायत	वि० ग० वझे	।।≡)
सन्त-साहित्य	भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'	२)

बाल-शिक्षा-समिति और ग्रंथमाला-कार्यालय, बाँकीपुर (पटना)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—**प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)**—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह। भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है। मूल्य ४।।)

२—**वीरकाव्य संग्रह**—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कवितायें और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना। सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए०। मूल्य २)।

३—**डिंगल में वीररस**—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कवितायें तथा तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना। सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए०। मूल्य १।।।)

४—**संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य**—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालतेहुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक—पंडित ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। मूल्य ।।।)

५—**चित्ररेखा**—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह। लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है। मूल्य १।।)।

आधुनिक कवि—(१) प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखीहुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह। यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। मूल्य १।।)

बाल-साहित्य-माला
१. **वीरशतमन्यु** (कविता) मूल्य ।)
२. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)
३. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कवितायें। मूल्य ।-)
४. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)
५. **बालकवितावली** (कविता) मूल्य ।)

'सम्मेलन-पत्रिका'

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं। हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है। इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं। वार्षिक मूल्य केवल १)।

पता—**साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।**

हाहाकार-भरी गृहस्थियों को सुखमय बनानेवाली

'भाई के पत्र' के लेखक श्री रामनाथ 'सुमन' की दो नयी पुस्तकें

१. आनन्द-निकेतन

२५ अध्याय और ३०० पृष्ठ

गृहस्थ-जीवन का पथ-प्रदर्शन करनेवाली श्रेष्ठ पुस्तक । प्रत्येक युवक, कुमारी और स्त्री के लिए माता-सी हितकारी । उपन्यास-सी मनोरंजक पर अमृत-सी कल्याणकारी । जिन लोगों ने 'सुमन' जी की पुस्तक 'भाई के पत्र' पढ़ी है वे जानते हैं कि उनकी रचनाओं में जीवन को बल और प्रकाश देने की कैसी शक्ति है । जो लोग विवाह करना चाहते हैं, करने जा रहे हैं या कर चुके हैं उन सबको एक बार इसे अवश्य पढ़ना चाहिए । कितने ही सज्जन इस पुस्तक की प्रतियाँ बँटवाने के लिए खरीद रहे हैं । लगभग साढ़े तीन सौ पृष्ठ, सुन्दर कागज़ और छपाई मनोरम रंगीन कवर, मूल्य केवल २)

२. घर की रानी

[श्रीरामनाथ 'सुमन']

कुमारियों और विवाहिता स्त्रियों के जीवन को सफल और सुखी बनाने के व्यावहारिक उपाय बतानेवाली अत्यन्त मनोरंजक पुस्तक । पत्रों के रूप में छपी हुई है । प्रत्येक कन्या, स्त्री के हाथ में देने योग्य है । इस पुस्तक की लगभग १००० प्रतियाँ छपने के २० दिन के अन्दर बिक गयी हैं । मूल्य केवल १)

३. भक्त-तरंगिणी

इसमें प्राचीन काल से लेकर आजतक के १०० एक सौ कवियों की भक्ति-भावपूर्ण श्रेष्ठ कविताओं का संग्रह किया गया है । इसके संग्रहकर्ता अनेक पुस्तकों के लेखक, 'भारत' के भूतपूर्व प्रधान सम्पादक और अंग्रेजी के विख्यात दैनिक 'लीडर' के सहकारी सम्पादक श्री केशवदेव शर्मा हैं । इसकी विशेषता यह है कि इसमें एक भी कविता ऐसी नहीं है जिसमें सुरुचि का अभाव वा अश्लीलता या गन्दी शृंगारिकता की गन्ध हो । स्कूलों-कालेजों में पढ़ायी जाने योग्य । मूल्य १)

४. अहंवादी की आत्मकथा

रूस के प्रसिद्ध उपन्यासकार के एक प्रसिद्ध उपन्यास का हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ उपन्यास और कहानी-लेखक श्री इलाचन्द्र जोशी द्वारा किया अनुवाद । संघर्ष में पड़े व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व की सुन्दर कहानी । उच्चकोटि का मनोवैज्ञानिक उपन्यास । मूल्य १)

साधना-सदन ६६, लूकरगंज, इलाहाबाद

नोट—ये पुस्तकें 'मण्डल' की सब शाखाओं पर भी मिलेंगी ।

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्गमय; तमसो मा ज्योतिर्गमय; मृत्योर्माऽमृतंगमय।

अक्तूबर, १९४१
नई दिल्ली

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

दूसरा वर्ष
तीसरा अंक

बढ़े चलो मैं साथिन राही!

बढ़े चलो, मैं साथिन राही!
चुन-चुन कंटक फूल सँजोती, मैं वनपथ की मालिन राही!

◆

मोती कौन बिछाती पथ पर?
किसका प्यार एक छन पाकर,
दिवस चला चल रहा, न रुकता, लौटे कितने गिन-गिन राही!

◆

काजल-रात, प्रभञ्जन पागल;
चला मेघ ले सागर का जल,
चमक-चमक जो पन्थ दिखाती, वह तो सदा-सुहागिन राही!

◆

चले नदी-नद, मधु-जल सारा,
बँधे सिन्धु में, पुष्कल-खारा,
सुरभि खोल पंखड़ियाँ झड़तीं, उग बढ़ता फल छिन-छिन राही!

◆

तब थी प्राण! तुम्हारी माया,
अब हूँ मधुर! तुम्हारी छाया,
जनम-जनम के संगी हम, बस पौन कोस, थोड़ा दिन राही!
बढ़े चलो, मैं साथिन राही!

सत्यव्रत 'सुजन'

'गरीब' लेखकों की समस्या

श्री ब्रजमोहन गुप्त ने लेखकों के मिहनताने का एक दूसरा पक्ष अपने एक पत्र में पेश किया है। इनके कथन का सार इस तरह है—

"आपने लिखा है कि 'मेरी यह पक्की राय है कि जिनके गुजर-बसर का स्वतन्त्र जरिया है उन्हें बिना मिहनताना लिए ही लेख व ग्रन्थादि लिखने चाहिएँ।' मेरा विचार भी यही था। लेकिन अभी मेरे सामने एक और दृष्टिकोण उपस्थित किया गया जिसे मैं गलत नहीं कह सकता। मुझसे कहा गया—'हिन्दी के बहुत से लेखकों के भूखों मरने की जिम्मेदारी आप तथा आप ही की तरह मुफ्त लिखनेवाले और लेखकों पर है। पत्र-पत्रिकाओं को जब काफ़ी सामग्री मुफ्त मिल जाती है तो उन्हें क्या जरूरत है कि वे पैसा देकर रचनाएँ लें। अगर हिन्दी का प्रत्येक लेखक यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर ले कि वह बिना पारिश्रमिक लिये एक पंक्ति भी नहीं लिखेगा तो पत्र-पत्रिकाओं को विवश होकर सब रचनाओं पर पारिश्रमिक देना पड़े और गरीब लेखकों के भूखों मरने की समस्या हल हो जाये। आप समस्या पर इस दृष्टिकोण से भी थोड़ा-सा प्रकाश डालें।

"इसीसे सम्बन्ध रखनेवाला एक प्रश्न और है। आपने लिखा है—'ग्रन्थादि भी बिना मिहनताना लिये ही लिखना चाहिए।' एक प्रकाशक ने इच्छा जाहिर की कि मैं उन्हें अपनी वैज्ञानिक कहानियों का, आलोचनात्मक निबन्धों का और एक कविताओं का संग्रह प्रकाशनार्थ दे दूँ और क्योंकि 'गुजर-बसर का स्वतन्त्र ज़रिया है' इसलिए उनसे पारिश्रमिकस्वरूप कुछ न लूँ। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के आदर्श से मैं बहुत प्रभावित हूँ। इसलिए मैंने उत्तर दिया, "बेशक आप मेरी तीनों पुस्तकें ले सकते हैं; किन्तु मेरी दो शर्तें हैं—एक तो आप प्रत्येक पुस्तक के मुखपृष्ठ पर ये आठ शब्द छाप दें—'कोई अधिकार रक्षित नहीं, जो चाहे सो छापले' और पुस्तकों का मूल्य लगभग लागत-मात्र रखें।" इस बात के लिए वह प्रकाशक तैयार नहीं हुए। वे चाहते थे कि मैं उन्हें कापीराइट लिख दूँ और पुस्तक का मूल्य रखने में भी स्वतन्त्र छोड़ दूँ, जो सम्भवतः डेढ़ सौ पृष्ठ की पुस्तक के लिए एक रुपये से कम न होगा। गुज़र-बसर का स्वतन्त्र जरिया होने पर भी उनकी इस इच्छा को पूरा करने में मैंने अपने आपको असमर्थ पाया; क्योंकि 'सस्ता साहित्य मण्डल' की तरह कम पैसों में ऊँचे दर्जे की चीजें जनता को देना भी उनका उद्देश्य नहीं था।

"हाँ, तो निवेदन यही है कि जो ग्रन्थादि लेखक को बिना पैसा दिये ही लिये जाते हैं उनपर मुनाफ़ा उठाने का अधिकार प्रकाशक को भी नहीं होना चाहिए।

"यह प्रश्न मेरा व्यक्तिगत ही नहीं है; इसलिए अगर आप 'जीवन-साहित्य' में इसपर अपनी राय दें तो अच्छा होगा।"

मेरी राय में लेखक और प्रकाशक दोनों का काम साहित्य की और उसके द्वारा समाज की सेवा करना है। उनका स्वार्थ अगर समझा जाये या गिना जाये तो वह इतना ही है कि अपने गुजर-बसर के लिए आवश्यक पैसा उसमें से ले लें। प्रकाशक ज्यादा से ज्यादा अपने रुपये का मामूली ब्याज ले ले। इससे अधिक संग्रह करने या मुनाफा पाने की बात मेरी समझ में नहीं आती।

खुशहाल लेखक अपनी पुस्तकों के लिए जब मेहनताना नहीं लेते हैं तो उन्हें लागत मात्र मूल्य पर पुस्तकें बेचने की शर्त रखने का पूरा अधिकार है। उनके त्याग का लाभ प्रकाशक को नहीं बल्कि गरीब जनता या गरीब लेखक को मिलना चाहिए। जब लागत मात्र मूल्य की शर्त रख दी जाती है, तब 'कोई अधिकार रक्षित नहीं, जो चाहे सो छापले' यह ऐलान गैरजरूरी हो जाता है।

यह एक प्रश्न ही है कि लेखकों के भूखों मरने की जिम्मेदारी सचमुच किसपर है? इस

सिलसिले में एक मित्र नें हाल ही में एक पत्र में जो उद्गार प्रकट किये हैं वे ध्यान देने लायक हैं—

"आपको कितने माई के लाल 'खुशहाल' मिले हैं ? और गरीब बेचारा अपने ताने-बाने से ही फुर्सत नहीं पाता। फुर्सत निकाली तो उसे मजदूरी की चिन्ता रहती है कि इतने पेज किये और इतने दाम हुए। उसमें काम के लिए जो निश्चिन्तता और मौज चाहिए वह मुश्किल है। साहित्य का काम मध्यवित्त लोगों का है या फिर वैरागियों, त्यागियों का है। भिखमंगों से साहित्य-निर्माण नहीं होगा, न मज़दूरों से। उनसे खेती होगी, कारखाने चलेंगे, इमारतें बनेंगी। उन्हें साहित्य पढ़ना चाहिए, बनाना नहीं। लाखों में कोई एक साहित्य-निर्माता हुआ करता है। जैसे गाँवभर में एकाध कुम्हार। सब गढ़ने की कला नहीं जानते। हाँ; ईंटें पाथने का काम तो दो ही दिनों में आ जाता है। पता नहीं क्यों आप लोग यह कहते हैं कि आज के लेखकों में तुलसीदास जैसे लेखक नहीं हैं ! आप यह भूल जाते हैं कि तुलसीदास न तुक्कड़ थे, न लेखक। वह महात्मा थे, भक्त थे। पहले महात्मा और भक्त हो लिये तब 'स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथ-गाथा'। उस चीज का मुकाबला आप किसी को रचना से करने बैठें तो कैसे पटरी बैठे ? उसे अलौकिक कहकर छोड़ दीजिए। बन गयी एक चीज़ बन गयी। आजके से रंडहो-पुतहो के बीच ऐसी किसी चीज़ की आशा दुराशा-मात्र है।"

यह सच है कि साहित्य-निर्माण और लेखकों को बेकारी ये दो स्वतन्त्र प्रश्न हैं। साहित्य-लेखन को गुजर का जरिया बनाने का रिवाज हमने पश्चिम से लिया है। मगर पश्चिम की तरह न तो बहुसंख्यक पाठक हमारे यहाँ हैं, न वैसे बड़ी पूँजीवाले प्रकाशक ही हैं, न लेखक ही उस कोटि के हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि साहित्य-सेवा और ज्ञानदान का पौधा हिन्दुस्तान की ज़मीन पर व्यापारिक वातावरण में पनप नहीं सकता। बेकारी की आम समस्या ने ऐसे लोगों को, जो कुछ लिखना जानते हैं, और दूसरा काम जिनकी रुचि या योग्यता से मेल नहीं खाता, लेखन-कार्य के लिए प्रेरित किया है। **'भिखमंगों से साहित्य-निर्माण नहीं होगा, न मजदूरों से'** यह कहकर हमारे मित्र ने इस समस्या के सही हल पर अपनी उँगली रख दी है। लेखकों का यह निश्चय कि वे बिना कुछ लिये प्रकाशकों को लेख नहीं देंगे इस समस्या को हल नहीं कर सकता। क्योंकि इसके जवाब में यदि सब प्रकाशक यह तय करलें कि हम पैसा देकर किसी की कोई चीज़ न छापेंगे तो किसका निश्चय ज्यादा कारगर और सफल होगा ? लेखक में यदि योग्यता और व्यक्तित्व है तो उसकी रचना का दाम खुशी-खुशी मिल जायेगा। एक मुश्किल यह भी है कि हर कोई लेखक अपनी चाहे जैसी रचना के दाम माँगने लगता है। और चूँकि लेखन ही उसकी गुजर का एकमात्र साधन है, असफलता की दशा में वह अप्रसन्न और क्रुद्ध हो जाता है। जबतक समाज में सेवा-भाव से साहित्य-निर्माण करनेवाले पैदा नहीं होते, तबतक 'गरीब' लेखकों का जहाँ अपनी रचना का दाम चाहना आवश्यक है वहाँ उसकी रचना का इस योग्य होना भी जरूरी है।

फ़िलहाल गरीब लेखकों की समस्या हल करने के कुछ उपाय सूझ रहे हैं—

(१) पारिश्रमिक दी जाने योग्य रचनाओं का एक स्टैण्डर्ड बनाया जाये, जिसके अनुसार पारिश्रमिक दिया जाये।

(२) पारिश्रमिक वही लें जिनके गुजर का जरिया लेखन-कार्य ही है।

(३) खुशहाल लेखकों को पारिश्रमिक लेने का आग्रह छोड़कर अपने पारिश्रमिक की रक़म गरीब लेखकों को पारिश्रमिक देने में लगाने देना चाहिए। इससे प्रकाशकों को किसी भी पुस्तक पर पारिश्रमिक जोड़ने की जरूरत नहीं रहेगी व सब पुस्तकें सस्ती भी पड़ेंगी। आशा है, हिन्दी के लेखक व प्रकाशक इनपर विचार करेंगे।

—हरिभाऊ उपाध्याय

बापू !

अब तुम तिहत्तर के हो गये हो। पचहत्तर में दो कम हैं : सौ में सत्ताईस ! तुम पचहत्तर को भी पार करो और सौ को भी पार करो ! यही मैं चाहता हूँ। यही मेरी दुनिया चाहती है।

पता नहीं तुम क्या चाहते हो ? तुम्हारा सिरजनहार क्या चाहता है ? क्या मैं मान लूँ कि तुम भी वही चाहते हो जो मैं चाहता हूँ, मेरी दुनिया चाहती है ?

बापू ! तुम चाहने लगो तो तुम्हारा सिरजनहार भी चाहने लगेगा। वह तुम्हारे पीछे है; क्योंकि तुम उसके पीछे हो। तुम्हारा चाहा वह ज़रूर पूरा करेगा। तुम उसका चाहा जो पूरा कर रहे हो ?

लेकिन हम ? क्या हम तुम्हारा चाहा पूरा कर रहे हैं बापू ! शायद नहीं कर रहे। शायद करना भी नहीं चाहते। शायद कर भी नहीं सकते ! फिर हम किस मुँह चाहें कि तुम सौ बरस जियो ? और तुम हमारी क्यों सुनो ? तुम्हारा सिरजनहार हमारी क्यों सुने ?

बापू ! हम अपनी तरफ देखते हैं, और गड़ जाते हैं। तुम्हारी तरफ़ देखते हैं, और खिल उठते हैं। यह कैसा खेल है, बापू ! कैसा चमत्कार है ! कुछ सूझ नहीं पड़ता कि यह रोने का खेल है कि हँसने का ?

हम तो देखते हैं कि तुम ऊपर से हँसते हो, और अन्दर से रोते हो ! अपने लिए नहीं, हमारे लिए।

और हम ? हम ऊपर रोते हैं, अन्दर रोते हैं। हँसें कैसे ?

तुम्हारी दवा हमपर असर नहीं करती बापू ! हमारा रोग ही शायद असाध्य है बापू ! लेकिन तुम–तुम तो महान् आशावादी ठहरे ! तुम निराश क्यों होने लगे ! हिम्मत क्यों खोने लगे ! तुम रोज़ हमारी नाड़ी देखते हो ! रोज़ अपना नुस्खा बदलते हो ! पर हम बड़े नाज़ुक रोगी हैं बापू ! हमसे तुम्हारा पथ्य-परहेज़ पाला नहीं जाता।

हाँ, हमने थोड़ा ढोंग जरूर सीख लिया है। दिखावा जरूर सीख लिया है। अब हम मुँह पर 'हाँ-हाँ' करना सीख गये हैं। हम मंच पर चढ़कर बोल सकते हैं। हम अखबारों में लिख सकते हैं। हम पत्रों में अपने को छपवा सकते हैं। हम अपने जुलूस निकालवा सकते हैं। हम अपनी जय बुलवा सकते हैं। हम चाँदी-सोने के कीमती मानपत्र ले सकते हैं। हम छोटे-बड़े ओहदों को आनन-फानन हथिया सकते हैं। हम 'सिपाही' बनकर जेल भी जा सकते हैं।

लेकिन......लेकिन तुम्हारा पथ्य-परहेज पाल नहीं सकते ! देखा तुमने ? कैसा कमाल हासिल किया है हमने ? और सो भी तुम्हारी दवा के नाम पर ! तुम गुरु होकर भी गुड़ हो, और आज हम चेला होकर भी शक्कर हैं बापू ! पता नहीं, हमारी यह शक्कर तुम्हें मीठी लगती होगी या कड़वी ! हम तो इसीमें पले हैं और छके हैं।

बापू मेरे ! तुम कहते हो : चर्खा चलाओ; खादी पहनो; हरिजनों को अपनाओ; मुसलमानों से मिलो; उनका विश्वास करो; उनके दिल में बैठो; गाँवों में जाओ; गाँववालों की सेवा करो; गाँवों में बनी चीज़ें खरीदो; देशी उद्योग-धन्धों को बढ़ावा दो; गरीबों की सेवा करो; बच्चों को नयी तालीम दो; बहनों को बराबरी के हक दो; उन्हें घर के कैदखानों से छुड़ाओ; सुबह से शाम तक मेहनत करो; मजदूरी करो; पसीने का कमाओ, पसीने का खाओ; किसी को लूटो मत; किसी को ठगो मत; किसी को कुचलो मत; किसी से लड़ो मत; किसी पर बिगड़ो मत !

और बापू ! तुम कहते हो : सच्चे बनो, सच बोलो; अहिंसक बनो, हिंसा मत करो; जीने के लिए खाओ; खाने के लिए मत जियो; जरूरत की चीज़ें लो, रक्खो; गैरजरूरी चीज़ों को बाँट दो; तन-मन-धन से किसी की चोरी

न करो; किसी को चोर बनने के लिए न ललचाओ; भले बनो; ब्रह्मचारी बनो; श्रमी बनो; श्रम की पूजा करो; न किसी से डरो; न किसी को डराओ; सब धर्मों का आदर करो; सबको समान समझो; स्वदेशी का पालन करो; जीवन से ऊँच-नीच, छूत-अछूत के भाव को निकाल दो।

बापू मेरे ! तुम कहते हो : व्रत की तरह इनको पालो; एक मिनट भी इनसे न डिगो; इनकी उपासना करो; इन्हें साधो।

तुम कहते हो बापू ! इनसे स्वराज्य मिलेगा; इनसे आज़ादी मिलेगी; इनसे गुलामी का नाश होगा; इनसे ग़रीबी मिटेगी; इनको साधकर आदमी आदमी बनेगा; नहीं हैवान इन्सान बनेगा; शैतान शैतान न रह जायेगा !

दवा तुम्हारी अचूक हो सकती है, बापू !

पर वह हम रोगियों के लिए बेहद कड़वी है—इतनी कि हम उसे निगल नहीं सकते—पचा नहीं सकते !

तुम्हारा कहना सच हो सकता है बापू ! पर बात हमारे गले उतरती नहीं। उतरती भी है, तो आचरण में आती नहीं।

आज दुनिया में जो हो रहा है, जिस ढंग से हो रहा है, जिस रफ़्तार से हो रहा है, जैसी आन-बान और शान के साथ हो रहा है, जितने बड़े पैमाने पर हो रहा है, जिस कामयाबी के साथ हो रहा है, उससे तुम्हारी बातें मेल नहीं खातीं बापू !

हम भौंचक हैं; स्तब्ध हैं; किंकर्त्तव्यविमूढ़ हैं; हमारी बुद्धि लुञ्ज है; हमारी आँखों पर पर्दा पड़ा है।

हम अकसर सोचते हैं : तुम सनक गये हो ! सपना देखते हो ! तुम फटते हुए आसमान को हथेली से रोकना चाहते हो ! तुम उल्टी गंगा बहाना चाहते हो ! तुम हमें घसीटकर हज़ार बरस पीछे लेजाना चाहते हो ! तुम हमें हैवान नहीं रहने देना चाहते—मनुष्य बनाना चाहते हो ! तुम विष को अमृत में बदलना चाहते हो ! तुम्हारे पास यह रसायन होगा बापू !

पर हम उसे कहाँ पायें ? कैसे पायें ? क्यों पायें ?

तो क्या हमारे लिए दुनिया ऐसी ही रहेगी बापू ? कोई आशा, कोई उम्मीद, हमारे लिए हमारी इस दुनिया के लिए तुम्हारे दिल में है, बापू ?

तुम दिलदार हो बापू मेरे ! तुम दिल की बातें जान सकते हो ! हमारी कमज़ोरियों और खामियों से तुम खूब वाक़िफ़ हो ! तुम्हारी-सी आशा, तुम्हारी-सी श्रद्धा, तुम्हारी-सी लगन और तुम्हारी-सी तड़प हम कहाँ से लायें बापू ?

हम तो सिर्फ़ एक बात जानते हैं। एक कक्का पढ़े हैं।

तुम हमें जिलादो। तुम हममें प्राण फूँक दो। तुम हमारा बेड़ा पार कर दो। तुम हमें आज़ाद बना दो। तुम हमें आबाद बना दो। हमारे लिए जो कुछ भी करना हो, तुम्हीं कर दो ! हमसे कुछ न कहो !

हम तो तुम्हारी तरफ़ देखेंगे। तुम्हारा तेल काढ़ेंगे। तुम्हारी कमज़ोरियों पर खड्गहस्त होंगे, तुम्हारी निन्दा करेंगे। तुम्हारा मज़ाक उड़ायेंगे। तुम्हें बदनाम करेंगे। तुम्हें धोखा देंगे। तिल-तिल कर तुम्हें तड़पायेंगे। चोट पर चोट तुम्हें पहुँचायेंगे।

और बापू ! यश के भागी हम बनेंगे। अपयश का ठीकरा तुम्हारे सिर फोड़ेंगे। हम सुख की नींद सोयेंगे—सदियों सोयेंगे, घोड़े बेचकर सोयेंगे, मगर तुम्हें एक क्षण भी न सोने देंगे ! हम रोज माल-मलीदा खायेंगे, मगर तुमको रूखी-सूखी भी सुख से खाने न देंगे।

बापू ! जानते हो, तुम जयचन्द के देश में पैदा हुए हो ? यह जर्मनी नहीं है, रूस नहीं है, इंग्लैण्ड नहीं है, अमेरिका नहीं है और यह चीन नहीं है !

यह मर्यादा-पुरुषोत्तम राम का भारत नहीं है। यह योगीराज कृष्ण का आर्यावर्त नहीं है बापू ! यहाँ तो दाने डाले जा सकते हैं, और मुर्गे लड़ाये जा सकते हैं ! हड्डी फेंकी जा सकती है, और

कुत्ते लड़ाये जा सकते हैं।

बूढ़े बापू ! तुम किसपर आशा बाँधे बैठे हो ? कौन तुम्हारी सुन रहा है ! कौन तुम्हें जिला रहा है ! कहाँ से तुम्हें प्रेरणा मिल रही है ! —अखण्ड और अविरत प्रेरणा !

तुम कह रहे हो बापू ! : भाई यह सिर्फ जयचन्दों की ही तो भूमि नहीं ! यह परम प्राचीन देवभूमि है। राम और कृष्ण ने अपनी पावनी लीलाओं से इसे पवित्र किया है। बुद्ध और महावीर की यह जननी है। प्रताप और शिवाजी इसकी गोद में खेले हैं। तिलक और गोखले, अजमल और अंसारी, देशबन्धु और दीनबन्धु राममोहन और विवेकानन्द, रवीन्द्र और अरविन्द मोती और जवाहर इसी माई के अनोखे लाल हैं।

शायद इसलिए तुम जयचन्दों को भूल जाते हो। और इन महामहिम नरश्रेष्ठों को निरन्तर अपनी आँखों के सामने रखते हो। शायद यही तुम्हें जिला रहे हैं। ये ही तुम्हें प्रेरणा दे रहे हैं।

तुम्हारी-सी जीवट हम कहाँ से लायें बापू ? तुम जो यह भारी पहाड़ उठाये हुए हो, तीव्र आग में जल रहे हो, तिक्त हलाहल पी रहे हो, कड़ी सर्दी को सह रहे हो, निबिड़ अँधेरे में प्रकाश फेंक रहे हो, अकेले दुर्गम मंजिल को पार कर रहे हो, वह तो तुम्हीं कर सकते हो, बापू !

तुम तो अपनी चाल चले जा रहे हो। कोई तुम्हारे पीछे चले या न चले, तुम क्यों इसकी पर्वा करने लगे ? तुम क्यों मुड़कर देखने लगे !

और तुम कह रहे हो कि आप मरे बिना स्वर्ग नज़र नहीं आता। चलनेवाला मुक़ाम पर पहुँच जायेगा—सोनेवाला सोता रह जायेगा।

बापू मेरे ! आज के दिन दिल में न जाने कितने सवाल तो उमड़ रहे हैं ! मन मथानी पर चढ़ा हुआ है। आखिर हमारा क्या होगा ?

कभी मक्खन निकलेगा ? कभी कोई सुध लेगा ? कोई सुनेगा ? कोई झकझोरकर जगा जायेगा ?

पर बापू ! तुमसे भी बढ़कर जगानेवाला हमें कोई मिलेगा ?

तुम्हारे रहते मिलेगा ? तुम हमें जगा हुआ देख सकोगे ?

तुम हमें दौड़ते हुए देख सकोगे ? तुम हमें चढ़ते देख सकोगे ?

हम मिट्टी के पुतले हैं। मिट्टी से बने हैं। मिट्टी में मिल जायेंगे।

तुम्हारी तरह वज्र-सा कठोर और कुसुम-सा कोमल तन-मन हमें नहीं मिला है बापू !

तुम मरकर भी अमर रहनेवाले हो, बापू ! तुम्हारे पास वह कीमिया है !

इसीलिए तो तुम जियो ! सौ बरस जियो ! उतने से कम न चले, तो सवासौ बरस जियो ! सवा हज़ार बरस जियो ! जबतक ज़रूरत समझो, तबतक जियो ! और जीकर एक बार हमें अच्छी भाँति जिला जाओ—जीना सिखा जाओ !!

—'**एक बालक**'

खादी

'खादी के द्वारा तुम वास्तविक कलपूर्वक बनोगे, क्योंकि दरिद्रनारायण के चेहरे पर ताजगी, सुर्खी तुम ला सकोगे। समाज में जो भाई मरणोन्मुख हैं, उन्हें जिलाकर समाज में दाखिल करा सकोगे। इससे बढ़कर कला कौन-सी हो सकती है।

खादी के द्वारा द्रव्य का वितरण होता है वह अत्यन्त मोहताज, मेहनती और दरिद्र मजदूरों को मिलता है। खादी के द्वारा कला की—जीवित कला की—उपासना होती है। ईश्वर के बनाये जीवित चित्रों को न कोई धोता है न पोंछता है, और न कोई सजाता है। उधर निर्जीव चित्रों को सुन्दर-सुन्दर चौखटों से सजाते हैं; लेकिन इधर दरिद्र बालकों के शरीर पर न कपड़ा है न पेट में अन्न। ये [illegible] चित्र खादी के द्वारा साफ हो गए।'

—**विनोबा**

हिन्दी बनाम उर्दू

[शान्तिप्रसाद वर्मा]

हिन्दी-गद्य के आधुनिक प्रवर्त्तकों में मुंशी सदासुखलाल, इंशाअल्ला खाँ, सदल मिश्र और लल्लूजीलाल के नाम लिये जाते हैं। इनमें से सदल मिश्र और लल्लूजीलाल ने फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में गिलक्राइस्ट के मातहत काम किया था। इन सबकी भाषा, कम या अधिक संस्कृत-मिली है। इसका दोष कभी-कभी अंग्रेज़ों की उस ज़माने की हिन्दुओं के प्रति पक्षपातपूर्ण नीति को दिया जाता है । एक साहब लिखते हैं—"जिस हिन्दी का आज प्रचार किया जा रहा है, वह हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी राज्य के द्वारा जान-बूझकर पैदा की गयी है, क्योंकि फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के पहले उसकी कहीं स्थिति ही न थी।" डॉ० ताराचन्द भी यही मानते हैं कि आज की संस्कृत-मिली हिन्दी १३५ वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है, और उसके पहले सारे हिन्दुस्तान में फ़ारसी-मिली भाषा का ही प्रचार था। यह ऐतिहासिक सत्य नहीं है। सच तो यह है कि मुस्लिम राज्यकाल में जन-साधारण की बोलचाल की भाषा में फ़ारसी और अरबी के काफ़ी शब्द होते हुए भी उसका आधार संस्कृत में ही था। भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश है। उसका समाज अनेक दायरों में जो कभी एक दूसरे का स्पर्श करते थे और कभी नहीं करते थे, बँटा हुआ था। इनमें से एक बहुत छोटा दल जो मुस्लिम शासन और संस्कृति के निकट संपर्क में आया था, उर्दू का पक्षपाती था, पर देश का अधिकांश समाज, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल थे, संस्कृत-प्रधान भाषा ही काम में लाता था।

अंग्रेज़ मिशनरियों के सामने प्रधान कार्य अपने धर्म का प्रचार करना था। जिस भाषा में वे जनता तक पहुँच सकते थे उसे उन्होंने अपनाया, और क्योंकि उन्होंने एक ऐसी भाषा को स्वीकार किया जिसका आधार संस्कृत थी इसलिए यह साफ हो जाता है कि उस समय जनता में इसी भाषा का प्रचार था। जन-साधारण की भाषा में फारसी और अरबी के भी काफ़ी शब्द रहे होंगे, और ग्रामीण भाषाओं के शब्दों का प्रयोग तो उसमें बहुतायत से होता रहा होगा; पर वर्तमान काल के हमारे सारे राष्ट्रीय जीवन व आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास जिस ढंग पर हुआ उसमें फ़ारसी और अरबी के शब्दों को क्रमशः छोड़े जाने और देहाती शब्दों से अपने को अलहदा काट लेने इन दोनों प्रवृत्तियों का होना लाजिमी-सा हो गया। मौजूदा परिस्थितियों में हमारे राष्ट्रीय विकास का प्रारंभ जातीय विकास के रूप में होना स्वाभाविक ही था।

वर्तमान भारतीय नवयुग की शुरुआत के समय, कई सदियों पहले विदेशों से आनेवाली मुस्लिम संस्कृति भारतीय संस्कृति में घुल-मिल गयी थी, आत्मसात् हो गयी थी और भारतीय जीवन से अपने को अलहदा काटकर चलनेवाली जो एक धारा मुग़ल-साम्राज्य के वैभव काल के आख़िरी दिनों में ज़ोर पकड़ती जा रही थी वह उस साम्राज्य के पतन के बाद ही तितर-बितर हो चली थी, और अबतक उसमें एक बूंद भी कहीं बाकी नहीं रह गया था। ऐसी परिस्थिति में हमारे देश ने जब नवयुग की एक करवट बदली तो यह स्वाभाविक था और पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया कि हम अपनी संस्कृति का मूल तलाश करने के लिए गंगा और यमुना के किनारे उपनिषद्कारों की वाणी से उच्छ्वसित होनेवाली विचार-धारा में प्रवेश करने की चेष्टा करें। जहाँतक हिन्दुओं का ताल्लुक़ था उनमें वर्त्तमान जाग्रति का विकास इसी प्रवृत्ति के अनुसार हुआ और यही हिन्दी के दिन पर दिन अधिक संस्कृत-प्रधान होते जाने का मूल कारण हुआ।

संस्कृत का यह प्राधान्य हिन्दी तक ही सीमित नहीं है। उर्दू को छोड़कर देश की सभी

भाषाओं में हम इस प्रवृत्ति को अपने पूरे ज़ोर पर पाते हैं। इसके पीछे किसी प्रकार की संकुचित जातीयता की भावना नहीं थी। राष्ट्र के प्रत्येक नवोत्थान में प्राचीन की ओर जाने की एक प्रवृत्ति रहती है, जिसका प्राचीन धर्म से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहा करता, यूरोप के नवोत्थान (Renaissance) में भी हम इस प्रवृत्ति को पाते हैं। वहाँ प्राचीन का प्रेम तो था, पर ईसाई-धर्म के प्रति अवज्ञा की ही भावना रही। भारतवर्ष में भी यह मनोवृत्ति प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम की मनोवृत्ति थी; संकुचित जातीयता अथवा धर्म से उसका कोई ताल्लुक़ नहीं था। इस प्रवृत्ति के सम्बन्ध में श्री० मुंशी लिखते हैं—"प्रांत-प्रांत में संस्कृत भाषा और साहित्य की तरफ आकर्षण बढ़ा। हरेक प्रान्त में ऐसा एक संप्रदाय उठ खड़ा हुआ, जो संस्कृत द्वारा साहित्य का पुनः संगठन करने लगा। इस सम्प्रदाय ने संस्कृत-साहित्य की गंगा से देशभाषा के प्रदेश को सींचकर पवित्र किया। भाषा संस्कृतमयी, प्रौढ़ और सुन्दर होने लगी। कालिदास और बाण की कल्पना-सृष्टि की सुन्दरता प्रान्तीय साहित्यों को सुन्दर बनाने लगी।"

मुसलमानों में जाग्रति की लहर देर से, और एक अलग ढंग पर उठी। दोनों की प्रवृत्ति एक-सी थी—वही प्राचीन की ओर उसके अपने शुद्धरूप में लौटने की। पर लक्ष्य भिन्न थे, हिन्दू-समाज के सामने जहाँ उपनिषदों के काल का आदर्श था, मुसलमानों के सामने अरब और ईरान का प्राचीन वैभव हिलोरें ले रहा था; शुद्ध राष्ट्रीयता का विकास अभी तक दो में से किसी समाज में नहीं हुआ था। मुस्लिम समाज में जाग्रति का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू में रायबरेली के सय्यद अहमद ने दिल्ली के एक बड़े विद्वान शाह अब्दुल अज़ीज़ से मुस्लिम धर्म-पुस्तकों का अध्ययन किया था। उनकी तहरीक़, जो बाद में वहाबी आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुई, इस्लाम को उसके प्राचीन, शुद्ध और अमिश्रित रूप की ओर लौटा ले जाने की थी। उन्हें अपने प्रचार में बड़ी सफलता मिली। पढ़े-लिखे और अपढ़ सभी वर्गों में सय्यद अहमद का आदर था। उन्होंने अपने आंदोलन को तरीक़ए मोहम्मद का नाम दिया था। सय्यद अहमद की मृत्यु के बाद यह आन्दोलन बंगाल, पंजाब और हैदराबाद तक फैला। उसकी शक्ति तीन बातों पर अवलंबित थी—(१) काफ़िर शासकों के प्रति तीव्र घृणा, (२) उसके समर्थकों में इस्लाम के शुद्धीकरण और सुधार के लिए एक तीव्र लालसा, और (३) संगठन की मज़बूती। इनके अलावा सय्यद अहमद के व्यक्तित्व का भी आन्दोलन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। गम्भीर, शान्त और विनम्र, वह पैग़म्बर की याद दिलाता था। उनकी शिक्षा का आधार 'तौहीद' अथवा एकेश्वरवाद था। उन्होंने पीर-पूजा आदि का बड़ा विरोध किया। हजरत मुहम्मद के सच्चे सिद्धान्तों की ओर लौटने की उनकी अपील का गाँवों के मुसलमानों के दैनिक जीवन पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा, और उनमें जाग्रति की एक नयी लहर उठी।

हिन्दू और मुस्लिम समाजों में उठनेवाली जाग्रति की दोनों लहरें धीरे-धीरे अपने अलग-अलग दायरों में फैलती गयीं। राममोहन राय ने ब्रह्मसमाज की जो विशाल संस्था बंगाल में क़ायम की थी उसकी शाखाएँ, प्रार्थना-समाज के रूप में, महाराष्ट्र तक फैलीं। छोटी-छोटी धार्मिक संस्थाओं से आरम्भ होकर जाग्रति का यह आंदोलन आर्यसमाज और अन्य सामाजिक आन्दोलनों के साथ-साथ समस्त हिन्दू-समाज में व्यापक होता गया, और विवेकानंद व बंगाली क्रांतिकारियों ने उसे राष्ट्रीय स्वरूप दिया। मुस्लिम समाज में तरक्की के पहिये को बड़ी ज़ोर से घुमाने का श्रेय सर सय्यद अहमद को है। उन्होंने अलीगढ़ में मुस्लिम कॉलेज की स्थापना करके मुसलमानों की उन्नति के लिए एक बहुत बड़ा रास्ता खोल दिया।

और चूँकि आगे बढ़ते हुए इन दोनों समाजों को अपने विचारों की अभिव्यक्ति के

लिए अलग-अलग भाषाओं की ज़रूरत थी, बड़ी आसानी से, और बड़े स्वाभाविक तरीक़े से, बिना क़िसी दिक़्क़त और झगड़े के, हिन्दी और उर्दू सामाजिक जाग्रति की इन दो लहरोंका माध्यम बन गयीं और क्योंकि दोनों ही समाजों में पीछे की ओर लौटने की प्रवृत्ति काम कर रही थी, हिन्दी अधिक-से-अधिक संस्कृत-प्रधान और उर्दू फ़ारसी-प्रधान होती गयी। श्रीयुत मुंशी के शब्दों में 'संस्कृत-प्रधान हिन्दी और फ़ारसीमय उर्दू जिन्होंने बनायी उन्हें यह रास्ता पकड़े बिना छुटकारा ही न था। इस कोशिश में न कशमकश थी, न बैर, न संप्रदायवाद ही था। × × हिन्दी का लेखक आज शृंगार रस का विकास करे, या ऐतिहासिक उपन्यास लिखे तो वह जयदेव और व्यास-वाल्मीकि की प्रेरणा ही खोजेगा, दूसरी प्रेरणा मिलना संभव नहीं। मुसलमान लेखक साहित्य-रचना करे तो शेख़ शादी और हाफ़िज़ को छोड़कर वह और किसकी शरण में जाये ?"

हिन्दू और मुसलमानों की अलहदा सामाजिक तरक्क़ी का असर हिन्दी और उर्दू के रूप पर पड़ना स्वाभाविक था। तरक्क़ी के इन दो धाराओं में बँट जाने में ही घबराने की कोई बात नहीं हो सकती थी—बशर्ते कि वे धाराएँ राष्ट्रीयता के क्षेत्र में एक-दूसरे से हिल-मिलकर आगे बढ़ें। सामाजिक आन्दोलन राष्ट्र के विभिन्न समाजों में आन्तरिक सुधार की धाराएँ हैं। इन उन्नतिशील धाराओं का केवल एक ही लक्ष्य हो सकता है—विशेषकर एक ऐसे देश में जिसकी राष्ट्रीयता एक स्वदेशी संस्कृति की गुलामी से छुटकारा पाने के प्रयत्नों में लगी हो—कि वे अपने को संपूर्णतः राष्ट्रीयता के विकास में लगा दें। जबतक वे अपने इस लक्ष्य को भूल नहीं जातीं तबतक उनका स्वागत ही किया जाना चाहिए। वे राष्ट्र-जीवन को सशक्त बनाने में ही सहायक होंगी। और जबतक वे दोनों धाराएँ स्वस्थ रूप से वह रही हैं उनकी अभिव्यक्ति की माध्यम—भाषाओं—के आपसी अन्तर से भी घबराने की वजह नहीं है।

पर हमारे देश में जहाँ एक ओर राष्ट्र एकीकरण की प्रवृत्तियाँ काम कर रही हैं वहाँ दूसरी ओर ऐसी शक्तियाँ भी तो मौजूद हैं जो उसके टुकड़े कर डालना चाहती हैं। इसीलिए हमें सजग, सतर्क और प्रयत्नशील रहने की ज़रूरत है। अंग्रेज़ों के पहले भी हिन्दू और मुसलमानों में सामाजिक भेद थे, और हिन्दी और उर्दू का अन्तर भी मौजूद तो था ही, पर राजनैतिक क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे का हाथ बँटाते थे, और भाषा के प्रेमी हिन्दीवाले उर्दू जानने की और उर्दूवाले हिन्दी से परिचित रहने की ज़रूरत मानते थे। पर आज समाज और भाषा के ये भेद हमारे राष्ट्रीय जीवन को गँदला बनाते हैं। इसीसे इन प्रश्नों को लेकर आज ग़लतफ़हमियों का एक बड़ा अम्बार खड़ा हो गया है।

पर, जवाहरलालजी के शब्दों में, "समन्वय की दिशा में काम करनेवाली प्रवृत्तियाँ इतनी ज़बर्दस्त हैं कि वे व्यक्तियों द्वारा नहीं रोकी जा सकतीं।" मैं उन व्यक्तियों में से हूँ जिन्हें आज के इस घने अँधेरे वातावरण में भी आनेवाले प्रभात की आशा है (क्योंकि रात आखिर चलेगी कबतक ?) मैं न दोनों समाजों के विरोध में भी जो जाग्रति है उसकी ओर आशापूर्ण नज़रों से देख रहा हूँ। ये दोनों समाज आज एक-दूसरे से चाहे जितने ही दूर जा भटकें, पर अंत में, राष्ट्रीयता की समान भूमि पर ज़रूर मिलेंगे; और इस राष्ट्रीय समन्वय के साथ हिन्दी और उर्दू का अन्तर भी मिट जायगा और उनके मेल से एक प्रभावशाली भाषा का जन्म होगा। वह हमारी राष्ट्रीयता के इतिहास में एक नया युग होगा। आज के पारस्परिक अविश्वास के वातावरण में यह बात चाहे कितनी ही कठिन दिखायी दे, पर उसकी सचाई अग्नि की किरणों के समान शुद्ध और प्रखर है।

साहित्य क्यों ?

[हंसकुमार तिवारी]

उपयोगिता की भावना इस युग की एक खास उपज है। वस्तु-विशेष की श्रेष्ठता और निकृष्टता के लिए उपयोगिता की ही कसौटी सबके आगे रहती है। जिन चीज़ों से जीवन-यात्रा में किसी तरह की मदद मिलती है, जिन चीज़ों से जीवन की जरूरतें हल होती हैं, मानव-समाज के लिए वे ही वस्तुएँ उपादेय और आवश्यक हैं। ऐसी दशा में स्वभावतः एक प्रश्न मन में उठता है कि आखिर इस ललित कला और साहित्य का क्या उद्देश्य है ? हम लिखते क्यों हैं ? क्यों हम सूक्ष्म कारु-कला या चारु-कला की सृष्टि करते हैं ?

रवींद्रनाथ ने कहा है, कला या साहित्य मानव-अन्तर का प्राचुर्य है। प्राचुर्य वह है, जो हमारी आवश्यकता के अतिरिक्त है, लेकिन, साफ बात तो यह है कि साहित्य से हमारी रोटी की समस्या हल नहीं होती। मानव-समाज की इस सदा की समस्या पर जो शास्त्र थोड़ा-बहुत प्रकाश डालता भी है, उस अर्थशास्त्र को साहित्य की सीमा में प्रवेश करने का अधिकार नहीं। क्योंकि 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' की परिभाषा के अनुसार वह शास्त्र उत्तीर्ण नहीं होता। कला से हमारी नग्नता-निवारण का मसला नहीं हल होता। गर्ज़ कि आहार, निद्रा, मैथुन आदि जीवन की जो स्थूल आवश्यकताएँ हैं, उनकी पूर्ति में हमें कला-रचना या साहित्य-सृष्टि से किसी तरह की सहूलियत नहीं होती। काम-शास्त्र जो हमारी शास्त्रोक्त आवश्यकताओं में से एक ओर मदद करता है, वह भी साहित्य नहीं है। फिर साहित्य या कला का, जिसे हमने जीव और जगत में इतना तूल दे रक्खा है, क्या उद्देश्य हो सकता है ? और मज़ा यह कि न तो हम इसकी प्रेरणा को बाद दे सकते हैं, न इसकी सृष्टि को। शिल्प का कोई अत्युत्तम निदर्शन हमारी आँखों के आगे आता है, हम मुग्ध हो जाते हैं। साहित्य का कोई मार्मिक स्थल हमारे अन्तर को छू लेता है, हम आनन्दित हो जाते हैं। तो क्या यही मान लिया जाये कि इस अनुभव और दर्शन में जो एक सूक्ष्म आनन्द है, साहित्य का मूल और महत् उद्देश्य इतना ही, सिर्फ यही है ?

मरुभूमि में ओसिस जैसे एक शांति और विराम की जगह है, जीवन-संग्राम में जूझनेवालों के लिए साहित्य और कला ऐसी ही एक शीतल छाया समझी जाती है। दिन-रात रोटी के लिए लड़नेवाले मस्तिष्क की शिथिल नसों को साहित्य की शरण में शांति और स्फूर्ति दोनों ही मिलती हैं। दैनंदिन जीवन के कर्तव्यों का जहाँ जीवन पर शासन होता है, वहाँ मनुष्य की दासता है, दीनता है। दासता में न तो जीवन का सन्तोष है, न आनन्द ही। इसीलिए मनुष्य की श्रांत और ऊबी हुई चाह एक ऐसी दुनिया की ओर दौड़ती है, जहाँ कर्तव्य की कदर्यता नहीं, जहाँ वास्तव का वही बँधा-बँधाया निरानन्दमय वातावरण नहीं। जहाँ रिक्त, क्लांत और दग्ध हृदय को शांति और सांत्वना मिलती है। यही दूसरी दुनिया है कल्पना की, जिसे हम एक अभिनव स्वर्ग भी कहते हैं। इस दूसरी दुनिया की शरण में आने का उद्देश्य चाहे एक ही हो, स्वरूप एक नहीं। कोई संगीत, कोई शिल्प, कोई साहित्य, इसी तरह प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी रुचि के अनुसार ही अपना आश्रय-स्थल ढूँढता है।

इंग्लैंड के स्वनामधन्य साहित्यिक बर्नार्ड शा की एक किताब है—टू ट्रू टु बी गुड' उसमें की एक पात्री एक सेनाध्यक्ष से कहती है—"आश्चर्य है कि आप चित्र बनाकर अपना समय बर्बाद करते हैं !" सेनापति नें उत्तर दिया —

"काउंटेस, मैं चित्र सिर्फ इसलिए बनाता हूँ कि मेरा दिमाग दुरुस्त रहे। इन औरत-मर्दों से व्यवहार करते तो मुझे ऐसा लगता है कि मैं पागल हो गया। सांत्वना के लिए जब-जब मैं मनुष्यों के पास गया, मुझे विफल-मनोरथ हो लौट आना

पड़ा। परन्तु प्रकृति के निकट जाकर कभी लौटना नहीं पड़ा !"

फलतः इस दृष्टि से साहित्य की उपयोगिता क्लब से रत्तीभर भी ज्यादा नहीं। जैसे बच्चों के लिए मन बहलाने का साधन उनके खेल हैं, उसी तरह हमारे दिलबहलाव की सामग्री साहित्य है; क्योंकि कर्तव्य के कठोर आघातों से जर्जर प्राण नीरस वातावरण से जरा देर के लिए साहित्य के आँगन में सुस्ता लेना चाहता है और वह आश्रय हमारी कल्पना की सृष्टि है, खयालों की दुनिया है, जो वास्तव में रहनेवाले लोगों के मन को दूर, बहुत दूर खींच लेती है।

एक बात और। इसे हम स्वभावगत नियम कहकर भी छुटकारा नहीं पा सकते। कला और साहित्य प्रकृति की नकल तो हर्गिज नहीं हो सकता। यह हमारा प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का गौरव-केतन है, क्योंकि साहित्य में हम प्रकृति के स्वरूप को ही फिर से भाषा में नहीं व्यक्त करते। प्रकृति और हमारे मन के संमिश्रण से जो एक विशेष भाव-जगत् की सृष्टि होती है, साहित्य उसका स्वरूप है। यहां प्रकृति से हम बहुत ज्यादा पाते हैं, इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकते, किन्तु प्रकृति को हम देते भी कम नहीं हैं, यह बात भी गौरव के साथ ही कहेंगे। प्रकृति फूल खिलाती है, उसे हम भाषा देते हैं। तारे चुप-चाप हँसते हैं, हम उनके हृदय को यहीं से टटोल लेते हैं। मानव के हृदय का जो कोना अतीत से भी अधिक अंधकारमय है, उसे हम प्रकाश में ले आते हैं। यही कारण है कि साहित्य को हमने इतना महत्त्वपूर्ण स्थान दे रक्खा है। स्वाभाविक गर्व से कवींद्र रवींद्र ने कहा है—

पाखीरे दिये छो गान, गाय सेइ गान,
तार वेशी करे ना से दान।
आमारे दिये छो स्वर आमि तार वेशी करि दान,
आमि गाइ गान।

अर्थात् पक्षी को तुमने गान दिया, वह वही गाता है, उससे अधिक वह कुछ नहीं देता। और मुझे तुमने स्वर दिया, मैं उससे अधिक देता हूँ—मैं गान गाता हूँ।

यहाँ मनुष्य को अपनी सृष्टि का गौरव मिलता है। पछी के गाने और मनुष्य के गाने की प्रेरणा एक-सी नहीं है। पक्षी अपनी प्राप्ति-भर को ही लुटा सकता है, हम मानव प्राप्ति को सूद समेत लौटाते हैं। फलतः यह बात स्पष्ट है कि साहित्य-सृष्टि के मूल में इससे भी बड़ा कोई उद्देश्य है। हमारी जो स्थूल प्रयोजनीयता है, उससे चाहे साहित्य-सृष्टि का कोई स्पष्ट सम्बन्ध न हो, लेकिन साहित्य-सृष्टि का प्रयोजन है, यह हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा।

सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव-अन्तर की एक व्याकुल प्यास है और वह प्यास है आत्म-प्रकाश की। इसी विकलता ने मनुष्य को आज विकास की इस चोटी तक पहुँचाया है। कथित और लिखित, दोनों ही प्रकार के साहित्य की जननी मानव की यही विकलता है। उस समय जब मानव-मन के दर्पण में प्रकृति के अतुल सौंदर्य का प्रतिविम्ब पड़ता था और हृदय के जारक-रस से उस अवस्था में जो भाव बनते थे, उनको प्रकाश में लाने का कोई साधन नहीं था, तो कितने विकल थे मनुष्य! एक दूसरे के पास-पास होते हुए भी वे परस्पर दूर——बहुत दूर थे। इसके बाद अपने को दूसरों पर प्रकट करने के लिए मनुष्यों ने भाषा बनायी। लेकिन, इससे भी उसे संतोष नहीं हुआ, क्योंकि इसमें आत्म-प्रकाश को व्यापक रूप नहीं मिलता था। वह कुछ ही लोगों और कुछ ही काल के लिए सीमित हो जाता था। इस अपनेपन या अहम् की भावना को दीर्घकालीन और बहुसंख्यक लोगों के लिए व्यापक बनाने की वासना से उत्पत्ति हुई साहित्य की। मनुष्यों की अपने को प्रकाशित करने की वासना चिरंतन है। हमारा यह साहित्य और कुछ नहीं, अपनी-अपनी सृष्टि द्वारा प्रत्येक मनुष्य का हृदय दूसरों में अपना विस्तार चाहता है, दूसरों के आगे अमरता की प्रार्थना करता है। साहित्य द्वारा जैसे वह कह रहा हो—

अयम् अहं भोः— मैं यहाँ हूँ। चाहे जिस क्षेत्र में देखें, वहीं आपको यह मूर्तिमान अहम् मौजूद मिलेगा। वह हर रूप में स्वयं अपने को देखता है और दूसरों को दिखाता है।

हमारी हर सृष्टि में हमारे भीतर का 'हम' ही सिर उठाये विभिन्न मूर्तियों में खड़ा है। हमने स्वयं जो अनुभव किया, हमारी जो अपनी प्राप्ति है, उसे केवल अपनी ही बनाकर रखना अपने को एक संकीर्ण परिधि में आबद्ध कर लेना है। इसीलिए मानव को यह काम्य नहीं। और उसे बहुतों तक पहुँचाने की प्रवृत्ति भी और कुछ नहीं, दूसरों के पास अपनी सत्ता की प्रतिष्ठा करना है। कभी अशोक ने पहाड़ों की चट्टानों पर अपने अत्यन्त प्रिय उपदेश इसी लिए खुदवा दिये थे कि उनके साथ-साथ युग-युग तक उनकी अपनी सत्ता भी कायम रहे। साहित्य या कला में मनुष्य के अपने सुख-दुःख ही स्थायी नहीं होते, उसका अन्तर, उसका मन भी अमर होकर रहता है। नील नदी के किनारे आकाश तक सिर उठाये एक-से सदा खड़े रहनेवाले पिरामिड हमें उस अतीत युग का इतिहास कहते हैं। काल ने किसे साबित रहने दिया, किंतु मुमताज बेगम की स्मृति में खड़ा ताजमहल संसार को आज भी बादशाह शाहजहाँ की प्रेम-कहानी सुना रहा है। कवि के शब्दों में—

तोमार दूत अमलिन
श्रांति - क्लांति - हीन
तुच्छ करि राज्य भांगा - गड़ा
तुच्छ करि जीवन-मृत्युर ओठा-पड़ा
युगे - युगांतरे
कहितेछे एक स्वरे
चिर-विरहीर वाणी निया
"भूलिनाइ, भूलिनाइ, भूलिनाइ प्रिया।"

जीवन-मृत्यु, उत्थान-पतन सबको तुच्छ करता हुआ श्रांति-क्लांति-हीन अमलिन ताजमहल युगयुगान्तर से चिरविरही सम्राट् की वाणी का प्रचार कर रहा है, कि प्रियतमे, मैं तुम्हें भूल नहीं गया हूँ।

यही कारण है कि विज्ञान के विकसित युग में जब विश्लेषण की प्रवृत्ति प्रबल होती जारही है, भावना की यह मंदाकिनी मंद नहीं होती। हम अपने भावों में अमर रहें, यही साहित्य की साधना है, यही कला-सृष्टि की तपस्या है।

हम ऊपर मन को प्रकृति का दर्पण कह आये हैं। साहित्य को भी जीवन और जगत् का दर्पण कहते हैं। फ्रांस के एक साहित्यिक ने तो साहित्य को ही जीवन कहा है। यहाँ एक बात याद रखनी चाहिए कि प्रकृति जिस रूप में साहित्य-साधकों के अंतर तक जाती है, उसी रूप में वह साहित्य में नहीं आ सकती। साहित्य एक तीसरी दुनिया है, जो मन की दुनिया और बाहरी दुनिया के संघर्ष से बनती है। मैथ्यू आर्नल्ड के Art is the things which they are का अर्थ बहुत बार लोग बिल्कुल उलटा लगा लेते हैं। यह वाक्य कुछ और अभिप्राय रखता है, न कि यथायथ चित्रण का निर्देश करता है। अगर दुनिया जैसी है, वैसा ही चित्रित करना साहित्य का उद्देश्य होता, तो प्रत्यक्ष दुनिया ही सब कुछ होती, नकली साहित्य का मूल्य क्या होता? लेकिन वास्तव में बाह्य और आंतरिक दुनिया से जो एक तीसरा जगत बनता है, वह रसमय होता है, इसीलिए आनंददायक भी। आनंद का मूल रस ही है। इस रसमय जगत का स्रष्टा है मन, जो कल्पना की रंगीन तूलिका से एक अभिनय जगत् का निर्माण करता है। इसी मन से हरेक की साधना का स्वरूप अलग-अलग हुआ करता है, जिसमें उसका व्यक्तित्व या 'अहम' प्रकट होता है। मनुष्य का दैनंदिन जीवन और उसकी कल्पना की दुनिया दोनों की थाह लेने पर सच्चे मनुष्य या वह मनुष्य क्या है, इसकी पहचान हो सकती है। ये दोनों ही बातें साहित्य में पायी जाती हैं, क्योंकि साहित्य मनुष्य की अपनी सत्ता को अमर बनाने का प्रयास है।

मेरे लड़के की तालीम

[अमेरिका के "रोटेरियन" नामक मासिक में एक पिता ने अपने लड़के को किस तरह तालीम दी है, इसकी कहानी लिखी है जो बालकों के पालकों के बड़े काम की चीज़ है। इसलिए उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं।]

बीस साल पहले मैंने अपने लड़के की तालीम शुरू की। मेरा ध्येय यही था कि इसका जीवन उपयोगी हो और उसमें आत्मविश्वास पैदा हो। मेरा ख़याल है कि हम बच्चों की तालीम की बहुत अधिक ज़िम्मेदारी स्कूल पर ही छोड़ देते हैं। असल में तो बच्चों के स्कूल जाने से बहुत पहले ही घर में उनकी तालीम शुरू होजानी चाहिए। और बच्चे स्कूल जाते रहें, तब भी साथ-साथ उनकी घर की तालीम जारी रहे।

मेरे लड़के जॉन की उम्र तेईस है; तन्दुरुस्ती अच्छी है। खेल-कूद और पढ़ने में शौक़ है; सबके साथ मिल-जुलकर रह सकता है। पिछले साल उसने कॉलेज की पढ़ाई खत्म की। अभी बड़े शौक़ और दिलचस्पी के साथ इंजीनियर का काम कर रहा है।

उसको तालीम देने में हमारा सबसे बुनियादी उसूल यह रहा कि सच्ची तालीम की बुनियाद है आत्म-निर्भरता—स्वावलंबन। स्वावलंबी जीवन के लिए सबसे पहली जरूरत यह है कि हम अपने हाथों का उपयोग करना जानें। इसलिए जॉन जब तीन साल का था, तभी से मैंने उसकी हाथों की तालीम शुरू की। हम दोनों एक साथ ज़मीन पर बैठकर लकड़ियों के टुकड़ों से घर बनाते थे। किस तरह का घर बनाना है यह तो जॉन की मर्ज़ी की बात थी; लेकिन जबतक उसकी दीवारें सीधी, घर के कोने समकोण, और छत के खंभे पक्के नहीं हो जाते थे, तबतक मैं छोड़ता नहीं था। मैं यह चाहता था कि पहले से ही जॉन के हाथ की उँगलियों को सावधानी और ध्यान से काम करने की आदत हो जाये। जॉन जब साढ़े तीन साल का हुआ, तबसे उसका औज़ारों के साथ परिचय शुरू हुआ। मेरा विश्वास है कि औज़ारों के उपयोग से हाथ और दिमाग़ दोनों को एक साथ तालीम मिलती है। इससे एकाग्रता आती है, विचार-शक्ति बढ़ती है, कार्य-कारण-सम्बन्ध के समझने की बुद्धि आप ही आप मिलती है, हाथों को ठीक-ठीक काम करने की आदत पड़ती है और लगकर काम करने की ताक़त बढ़ती है।

अगर ताली का कोई हिस्सा खराब होजाता, या सिलाई की मशीन बिगड़ जाती या टूटा हुआ खिलौना जोड़ना होता, तब भी हमारे काम का तरीक़ा यही रहता। हम दोनों मिलकर सोचते कि हम किन-किन औज़ारों का उपयोग करें, कैसे-कैसे आगे बढ़ें? जॉन के हाथ जैसे-जैसे मज़बूत होते गये, मैं उसे अपने हाथों से काम करने के लिए प्रोत्साहित करता गया। जब वह पाँच साल का हुआ तब वह मामूली तौर पर घर की छोटी-बड़ी मरम्मत कर सकता था। मैं कहता—"जॉन, कपड़े धोने के टब की टोंटी जंजीर से अलग हो गयी है।" वह बक्स खोलकर ज़रूरी औजार निकालता और थोड़ी देर में आकर मुझे खबर देता—"बाबूजी, अब ठीक है।"

मेरे दोस्त मेरी हँसी उड़ाते—"अरे भाई, इसे तो दिमाग़ी काम करके रोज़ी कमाना है। इसे मजदूर की तालीम देने से क्या फ़ायदा होगा?" लेकिन मैं अपनी बात पर अड़ा रहा। मैं तो यह मानता हूँ कि उसे आज जो काम मिला है, उसकी वजह यही है कि वह अपनी कॉलेजी तालीम से असली फ़ायदा उठाना जानता था। उसके ऐसे बहुत साथी थे, जिनके दिमाग तो जॉन से तेज थे, लेकिन उन्हें और मुश्किलों का सामना करना पड़ा। चूँकि जॉन की तालीम की शुरुआत हाथ के काम से हुई थी, इसलिए उसका दिमागी काम भी दूसरों से आगे रहा।

जैसे-जैसे जॉन बड़ा होता गया, वह मुझसे पूछने लगा—"यह चीज़ कैसे काम करती है?" मैं

इसके जवाब में फिर उसी से पूछता था, "भला, तुम्हीं बताओ, यह कैसे काम करती है ?" तब मैं उससे कहता कि खोलकर देखो, कैसे काम करती है। इस तरह मेरी देखरेख में उसने घर के सारे औज़ार और कल-पुरजों के समान खोल डाले। मैं भी खुद कोई कारीगर नहीं था, इसलिए मैं भी जॉन के साथ-साथ सीख रहा था। आज हमारे घर में या मोटर में ऐसी कोई मशीन नहीं है, जिसे जॉन ठीक न कर सके।

उसे ऐसी आदत पड़ गयी है कि वह सोच-विचारकर एक-एक क़दम उठाता है। जब किसी मशीन के पुरज़े खोलता है, तब हरएक हिस्से का काम और उनका एक दूसरे के साथ सम्बन्ध ग़ौर से देखता जाता है। इस तरीक़े से तालीम पाने से सारी बातों में उसकी मनोवृत्ति ही यह पूछने की हो गयी है कि "यह काम कैसे होता है ?"

जॉन की माँ और मैं दोनों यही कोशिश करते कि जबतक उसे "क्यों ?" इस सरल प्रश्न का संतोषजनक जवाब न मिले, तबतक उसे कल न हो। पहले हम उसी से पूछते—"भला, तुम बताओ, तुम्हें क्या सूझता है ?" यदि हम दोनों में से किसीको भी ठीक जवाब नहीं सूझता, तो हम किताबों या जानकारों की मदद लेते। एक बार मोटर के एक पुरज़े का काम समझाने के लिए मुझे उसके साथ मोटर सुधारने के कारखाने तक जाकर एक मिस्त्री से सलाह लेनी पड़ी थी।

एक बार उसने पूछा, "फौलाद के छोटे-छोटे टुकड़े तो पानी में डूब जाते हैं, फिर फौलाद के बने जहाज़ क्यों नहीं डूबते ?" मैंने उसे समझाने की बहुत कोशिश की; लेकिन उसके दिमाग़ में वह बात चित्र-जैसी स्पष्ट न हुई। कुछ दिनों के बाद जब वह पानी के टब में नाव चला रहा था, मैंने पानी में एक भारी पेपर-वेट और काँच का बर्तन छोड़कर दिखाया कि पेपर-वेट तो डूब गया; पर बर्तन जो उससे भी भारी था, नहीं डूबा। तब जॉन के लिए यह बात स्पष्ट हो गयी। थोड़े दिनों बाद मैंने उसे अपने से एक बड़े आदमी को यही सवाल अच्छी तरह से समझाते हुए सुना।

आप शायद कहेंगे कि इसके लिए तो बहुत समय और धीरज की ज़रूरत है। समय की ज़रूरत नहीं, पर धीरज की तो है। सभी माँ-बाप अपने बच्चों के प्रश्नों का जवाब देने में, उन्हें अनुशासन सिखाने में और उनके दिल बहलाने में बहुत समय देते हैं। हमने भी उतना ही समय दिया, पर इस समय का उपयोग किया। जो कुछ जॉन पूछता था, उससे हम ऐसे खेल बनाते कि साथ ही किसी नयी चीज़ की खोज में एक नया रास्ता उसे मिल जाता। बचपन में एक स्वाभाविक ऐसी चेष्टा होती है कि माँ-बाप अगर थोड़ा-सा भी ध्यान दें तो बहुत-सा काम अपने ही वेग से आसानी से हो जाता है।

जॉन को सिखाते-सिखाते हमें एक बहुत बड़ा सबक़ यह मिला कि अगर बचपन में ही अच्छी आदतें न डाली जायें, तो पीछे जब उसकी दिलचस्पी का कोई काम नहीं मिलता और वह शरारत करता है, तब उसे सुधारने में बहुत अधिक ताक़त व समय खर्च करना पड़ता है।

जॉन कोई ख़ास बुद्धिमान् लड़का नहीं है। दूसरे लड़कों का बचपन जैसे खेलकूद और शरारत में बीतता है, वैसे ही उसका भी बचपन बीता। हमारी सिर्फ़ यही कोशिश रहती कि उसकी स्वाभाविक दिलचस्पियों को समझकर उसे ऐसा काम दें, जिससे उसे आनन्द भी आवे, और उसके भावी जीवन के लिए कुछ पूंजी भी इकट्ठी हो। लेकिन उसे यह मालूम न हो कि हम उसे तालीम दे रहे हैं।

हमने जॉन के साथ ठीक वैसा ही बर्ताव किया जैसा कि बड़ों के साथ करते हैं। हमने कभी उसे सस्ते या बेकार खिलौने देकर उसका अपमान नहीं किया। हमने यह निश्चय किया था कि जहाँतक हो सके, हम उसको बड़ों के काम में आने लायक काम की चीज़ें ही देंगे। जब उसने हमसे मिस्त्री के औज़ार माँगे, हमने उसे

औज़ारों का एक पूरा सेट दिया। इससे उसने औज़ारों की क़ीमत समझना सीखा। हमारा पैसा सार्थक हुआ।

दूसरे साल उसने बहुत तकलीफ़ से कुछ पैसे इकट्ठे किये और उनसे हाथ से छापने का एक प्रेस और कुछ टाइप लिये। थोड़े दिन बाद मैंने यह सोचा कि इसे जो सीखना है, वह तो सीख ही रहा है, साथ-साथ कुछ पैसे भी क्यों न कमाये? मैंने उससे कहा—"चलो, हम छापाखाना खोलें और अपने पड़ोसियों का छपाई का छोटा-मोटा काम लें।" इसके लिए कुछ और पैसे मुझे लगाने पड़े। हम दोनों इस व्यापार में साझीदार बने। रोज़ शाम को और इतवार को मैं उसकी मदद करता रहा। इसीके ज़रिये मैंने उसे धीरे-धीरे व्यापार में पूँजी लगाना, उसका उपयोग करना और उसके फायदे आदि के सब नियम सिखा दिये।

असल बात तो यह है कि हमें समझना है कि जबसे बच्चा बोलने और चलने लगता है, तभीसे उसकी तालीम शुरू हो जाती है, न कि जब वह स्कूल में भर्ती होता है तबसे। हमें उसके खेलकूद, उसकी रुचि, उसकी जिज्ञासा सबसे पूरा-पूरा लाभ उठाकर उसका विकास करना है। जब हम यह मानकर चलेंगे कि बच्चों के मन का विकास एक गंभीर साधना की वस्तु है, तभी उसका मन हमारी कोशिशों से विकसित होगा।

ये जेलखाने !

[रामकृष्ण खद्दरजी]

आज की पाठशालाओं में शिक्षा दे-देकर निकम्मे, निर्जीव गुलाम तैयार किये जाते हैं। ऐसे मनुष्य तैयार होते हैं जो जन्म भर मन और शरीर से माँदे रहते हैं जो समाज में बखेड़ा मचानेवाले, समाज का नियम भंग करनेवाले और अनागरिक होते हैं। इस अशांति का कारण आज की शिक्षा ही है। शान्ति की शिक्षा दी ही कहाँ जारही है! जो शाला बालक के सर्वांगीण स्वास्थ्य के लिए कुछ नहीं कर सकती वह शाला नहीं, जेल है। शालाओं का सर्वप्रथम कर्तव्य है बालक के स्वास्थ्य की रक्षा और सम्पूर्ण शरीर का विकास करना और मनुष्य की निर्बलताओं को निकालकर उन कारणों को जिनसे आज समाज में गुण्डापन आया हुआ है जड़ से मिटा देना।

पहले तो शालाओं के मकान सड़ी गलियों में नहीं किन्तु एकदम शहर के बाहर खुली हवा में होने चाहिएँ। दिन का सबसे उपयोगी समय बालक शाला में व्यतीत करता है। बालकों को बदबूदार, दमघोंटू, सीलवाले और जहाँ कभी सूर्य का प्रकाश न पहुँचे ऐसे स्थानों पर शिक्षा देना भारी अपराध है—इन भोली आत्माओं के साथ विश्वासघात करना है। बाल-शाला के लिए मकान स्वच्छ, प्रकाशवाले और खूब हवादार होने चाहिएँ।

भविष्य के लिए शान्तिप्रिय मनुष्य तैयार करने हैं तो शाला में शान्त वातावरण उपस्थित करिए। ट्रामगाड़ियों की, घोड़ागाड़ियों की, मोटरों की घड़घड़ाहट और सौदेवालों की चीख-पुकार में बालकों को शान्तिप्रिय बनाने के सपने बेकार हैं। अतः शाला का वातावरण इन झंझटों से दूर ही होना चाहिए।

दूसरी बात है शाला का सामान। शाला के कमरे को मेज़ों-कुर्सियों से भर देना बालकों के स्वतंत्र हलन-चलन में बाधक है। बालकों के लिए छोटी-छोटी चौकियाँ और छोटे-छोटे आसन हों जिन्हें बालक जी चाहे जैसे उठाकर जहाँ चाहें वहाँ बैठकर काम कर सकें।

बालकों के पहिरावे में भी शाला को परिवर्तन करना होगा। जिनके पहिनने या उता-

रने में बालक को दूसरों की सहायता लेनी पड़े ऐसे कपड़ों को फौरन दूर कर देना चाहिए। भिंचे हुए और अधिक कपड़े बालकों के शरीर-विकास की दृष्टि से हानिकर हैं। बालक ऋतु के अनुकूल कपड़े पहिनता है या नहीं, स्वच्छ कपड़े पहनता है या नहीं, आसानी से पहनने और उतारनेलायक पहनता है या नहीं अथवा अधिक और भिंचे कपड़े तो नहीं पहनता, इसका निर्णय माता-पिताओं और शालाओं को ही करना है। शालाओं को माता-पिताओं से लड़ना पड़ेगा और इसका नफ़ा-नुक्सान माँ-बापों के दिमाग़ में बैठाना होगा।

शालाओं को बालक के अंग-प्रत्यंग को भी साफ़, स्वच्छ और स्वस्थ रखने के लिए भगीरथ-प्रयत्न करना पड़ेगा। माता-पिताओं को इसके लिए समझाना और राह दिखाना होगा। जबतक इन बातों के लिए परिश्रम नहीं किया जायगा तबतक आज के बालक और भावी प्रजा रोग से मुक्त नहीं हो सकते; और तबतक दवाखानों का बोलबाला बना ही रहेगा।

जिस प्रकार रोगी बालकों के लिए दवाखाने हो गये हैं उसी प्रकार मन के रोगों के लिए जेलखाने हैं। कोई गुनाह करने पर ही कोई क़ैदी बनता है और कोई भी गुनाह किसी भी व्यक्ति के मानसिक रोग का द्योतक है। आज की शिक्षा से बालकों में गुनाह की आदत पड़ती है। सजा के डर से गुनाह की वृत्ति छिप अवश्य जाती है, जड़-मूल से नहीं जाती। यदि मन के रोग मिटाने का काम आज की शाला ले ले तो जेलखाने भी बन्द हो सकते हैं। आज के शिक्षा-शास्त्रियों को कोई काम करना है तो यही कि जिससे सब जेलखाने शालाओं में बदल जायें और क़ैदियों के बदले भविष्य में अच्छे और उपयोगी नागरिक बन सकें। हमारी आज की शालाएँ ही बहुत अंश तक जेलों के लिए जिम्मेदार हैं। हम अपनी मान्यताओं को बालकों पर लादने के लिए ही इनाम और दण्ड का सहारा लेते हैं। बालकों के मन की यह स्थिति उसके लिए जेल के प्रथम दण्ड जैसी है। बालक की पहली जेल शाला है। शाला में उसको क़ैदी की तरह शिक्षा के कब्जे में रक्खा जाता है। जबतक शालाओं में मानसिक रोगों को डाक्टरी दृष्टि से दूर करने के शास्त्रीय साधन प्रयोग में नहीं आते, तबतक वे जेलख़ाने ही रहेंगी। वे सरकारी जेलखानों के लिए क़ैदी ही तैयार करती रहेंगी।

गणित, भूगोल या इतिहास जैसे विषय सिखानेवाली शालाएँ शालाएँ नहीं हैं। इस प्रकार के विषयों की शिक्षा तो मनुष्य किसी भी स्थान पर ले सकता है। इससे मनुष्य जाति का कभी कल्याण नहीं हो सकता। इस प्रकार के योग से कभी जेलखाने और दवाखाने बन्द नहीं हो सकते। शाला तो वही है जो बालक के अन्दरसे गुनाह की वृत्तियों को निकालकर उसको नैतिक बल और शारीरिक बल प्रदान करे तथा अच्छा नागरिक बनावे एवं मनुष्य में जितनी सुप्त शक्तियाँ हैं उनका सम्यक् विकास और पोषण करे।

कितने ही बालक घर के वातावरण से या आनुवंशिक संस्कारों से ज़रा रास्ते से बाहिर चलने लगते हैं। उनके भी ठीक-ठीक इलाज की जरूरत है। 'तूफानी' बालक शिक्षा के लायक़ ही हैं यह हमको मानना पड़ेगा। किन्तु 'जिनको हम तूफानी बालक के नाम से पुकारते हैं, उनका तूफान बहुत बार शिक्षण-पद्धति के विरुद्ध उनका व्यक्तिगत विद्रोह ही होता है।' मानसिक रोग का एक-मात्र इलाज शिक्षण ही है।

शिक्षा-शास्त्रियों को इस ओर ध्यान देना होगा और शालाओं में उपयुक्त शिक्षण-पद्धति प्रचलित करनी होगी। जबतक किसी देश में दवाखाने और क़ैदख़ाने हैं तबतक समझना चाहिए कि वहाँकी शिक्षण-पद्धति में कोई-न-कोई दोष अवश्य है। किसी भी देश में अधिक-से-अधिक दवाखानों और जेलखानों का होना वहाँ के शिक्षा-शास्त्रियों के लिए कलंक है। इस कलंक को दूर करने के लिए शिक्षा-शास्त्रियों को उचित दिशा में प्रयास और भगीरथ-प्रयत्न करना चाहिए।

अश्लीलता पर कुछ व्यावहारिक सुझाव

प्रिय सम्पादक जी,

इस बार मैं कुछ और लिखता पर मशरूवाला जी के 'सापेक्ष्यवाद' ने मेरी कुछ कठिनाई मेरे सामने ला दी है। उसे लाँधकर बढ़ना मुश्किल है।

जिन्दगी में दो चीजें हैं : विचार और कर्म। असल में तो ये दो नहीं होनी चाहिएँ। उनमें पूर्वा-पर सम्बन्ध होना चाहिए। करना बिचारने का फल होना चाहिए। पर प्राय: विचारक विचारते रहते हैं और कर्म-पक्ष उनमें मूर्च्छित हो रहता है। और कर्मठ हैं जो विचार का कष्ट नहीं उठाते। दुनिया के लोगों में इनका सन्तुलन और ऐक्य बिरल है। सबमें इनकी तरतमता ही मिलती है।

यहाँ एक बात साफ है। विचार व्यक्तिगत है, कर्म वैसा व्यक्तिगत नहीं रहता। कर्म पर बाहर की भी रोक-थाम है। विचार पर भीतरी रोक-थाम ही हो सकती है। कर्म परस्परता उत्पन्न करता है। प्रत्यक्ष हिसाब में आता है तो कर्म। विचार तो दीखता भी नहीं। विचार और भावना के यंत्रोपकरण तभी तो भीतर अलक्ष्य रखे गये हैं। कर्म के उपकरण हमारे दीखनेवाले अंगोपांग हैं।

इसपर से मैं यह परिणाम निकालता हूँ कि केवल विचार और भावना की समस्याओं को लेकर अखबारी लिखा-पढ़ी नहीं की जानी चाहिए। समस्या सामुदायिक यानी व्यवहार की होकर ही सार्वजनिक पत्रों द्वारा विचारणीय बनती है। अर्थात् किसी प्रश्न को शास्त्रीय रूप नहीं मिल जाना चाहिए। वह शास्त्रीय बना कि खोया भी गया। फिर वह विवाद के भँवर से छूट नहीं पाता।

कभी ख्याल नहीं था कि अश्लीलता की चर्चा में मैं पड़ूंगा। ऐसे प्रश्नों की चर्चा हो ही तो सकर्मक होनी चाहिए। यानी अश्लीलता को परिभाषा पहनाना नहीं, बल्कि उसका निराकरण करना हो, तभी चर्चा छिड़े तो उसमें योग दिया जा सकता है। अश्लीलता की चुनौती यह नहीं है कि उसे जानो, वह तो यह है कि उसे जीतो।

मुझे अचरज हुआ था कि श्री मशरुवाला इस प्रश्न को विचार में नीचे उतारकर अमल की सतह से यह दूर क्यों खींच ले चले ? तथ्य पाने चला जायेगा तो अश्लीलता तो एकदम अतथ्य वस्तु निकलेगी, और इस ढंग से देखने पर वह वीर्य-व्यय के साथ नहीं बल्कि असत्य के, कपट के साथ जुड़ी हुई पायी जायेगी। मैं अब भी मानता हूँ कि देह से या वीर्य से उसका सम्बन्ध नहीं, मन के मैल से उसका सम्बन्ध है। और हम भारी भूल करेंगे अगर देह से चिपटा हुआ उसे देखेंगे।

न न, विचार में सापेक्षवाद को कोई मौक़ा नहीं। दो और दो चार ही हो सकते हैं। न एक अंश कम, न एक अंश अधिक। चार के कितने भी आसपास हो, वह संख्या ग़लत ही कहलायेगी; दो और दो के योगफल के रूप में एक और अकेला चार ही होगा जो सही उत्तर होगा। इस धरातल पर बाल-बराबर फर्क भी असह्य होना चाहिए। यहाँ का अपेक्षावाद विचार-शिथिलता का ही दूसरा नाम है।

अर्थात् पदार्थ-विवेचन और तत्त्व-निर्णय का जहाँ प्रश्न है वहाँ कोई दूसरी और अपेक्षा नहीं है : वहाँ बस मैं हूँ और मुझपर प्रतिफलित सत्यानुभूति है। किन्तु यह व्यक्तिगत तल की बात है। सत्य को कोई चुका नहीं सकता। सबको सत्य की एक झाँकी ही प्राप्य है। आदमी को अधिक-से-अधिक इतना ही हक़ पहुँचता है कि वह अपनी झाँकी पर प्राण दे दे, पर उसे इन्कार न करे। स्पष्ट है कि सम्पूर्ण सत्य के प्रति व्यक्ति का सम्बन्ध उपासना, प्रार्थना और आराधना का ही हो सकता है। स्वानुभवित सत्यांश के आग्रह में हां प्राण भी निछावर किये जा सकते हैं।

किन्तु उस व्यक्ति-धर्म के धरातल से उतर

कर हमें प्राप्त होती है : अहिंसा । व्यवहार-धर्म वह है । कहना चाहिए कि सामाजिक मनुष्य का सत्य अहिंसा है । व्यक्तिगत भूमिका से अलग जब सामाजिक भूमिका पर किसी समस्या का विचार प्रस्तुत हो तो उसके लिए कसौटी अहिंसा हो सकती है, न कि सत्य ।

इस ऊपर की बात पर ज्यादा ज़ोर भी कम है । यदि हम किसी विचार को कर्म में सफल करना चाहते हैं तो उसका मतलब यही है कि उस विचारणा द्वारा हम अहिंसा को सिद्ध करना चाहते हैं । यह व्यवहारोपयोगी विचार-प्रयोग की सीमा और शर्त है ।

व्यवहारोपयोगी विचार शास्त्रीय और वैज्ञानिक विचार से भिन्न हैं । विज्ञान में और दर्शन आदि शास्त्रों में विचार स्वयम् अपना इष्ट हो सकता है । वहाँ कर्म द्वारा उसके समर्थन की अपेक्षा नहीं है । वह निरपेक्ष है । किन्तु व्यावहारिक विचार निरपेक्ष हो सकता ही नहीं है; न उसे होना चाहिए ।

शास्त्रीय विचार में अपेक्षावाद नहीं चल सकता । वहाँ सापेक्षता का इस्तेमाल है भी तो, निषेध (elimination) के प्रयोजन से ।

पर व्यवहार की तो शर्त ही अपेक्षावाद है । मैं ही सच्चा हूँ, यह मानकर चलने से तो अगले कदम पर झगड़ा आ जायेगा । इसलिए मानना पड़ेगा कि वह भी सच्चा है और तुम भी सच्चे हो । सब अलग-अलग कहते हैं । पर सब अपने ढँग से ठीक भी कह सकते हैं ।

श्लील-अश्लील का प्रश्न ब्रह्मचर्य-अब्रह्मचर्य का प्रश्न नहीं है । पहला सामाजिक है; दूसरा व्यक्तिगत । ब्रह्मचर्य की परिभाषा श्लीलता की परिभाषा नहीं हो सकती । ब्रह्मचर्य परम धर्म है । वह मुक्ति तक साथ है । श्लील-अश्लील की व्याप्ति थोड़ी है । सामाजिक से बाहर उस प्रश्न की स्थिति नहीं है ।

लोक-मर्यादा और लोक-शिष्टता से अश्लीलता के प्रश्न का सीधा सम्बन्ध है । उसमें पारिवारिक शील की रक्षा का प्रश्न गर्भित है । हमको जानना चाहिए कि समाज परिवारों को लेकर बनता है और परिवार विवाह पर बनता है । परिवार में माता-पिता और पुत्र-कन्या आदि होते हैं । स्पष्ट है कि परिवार को मिटाकर समाज नहीं बन सकता और विवाह को मिटाकर परिवार नहीं फल सकता ।

ब्रह्मचर्य तो परम-धर्म है । उसका दायित्व ऐहिकता पर समाप्त नहीं है । ब्रह्मचर्य के ख़िलाफ यह दलील नहीं दी जा सकती कि उससे फिर समाज कैसे चलेगा ! व्यक्ति को सामाजिक नहीं, वरंच उससे भी आगे समष्टिगत यानी सर्वात्मरूप बनाने की साधना ब्रह्मचर्य की है । इससे एक जगह जाकर ब्रह्मचर्य की परिणति ज़ाहिरा असामाजिक भी दीखती है ।

पर मैं मानता हूँ कि श्लील-अश्लील को ब्रह्मचर्य के रूप में देखना भूल से खाली नहीं होगा । अगर वीर्य-दमन को श्लीलता की कसौटी माना जायेगा तो उससे व्यवहार सँभलेगा नहीं, बल्कि उल्टे गड़बड़ में पड़ जायेगा । सास अपनी बहू को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे तो क्या हमें उसे अश्लील मानना होगा ? मश्रुवालाजी की बतायी कसौटी व्यवहार का नहीं काम देती और वह लोक-नेतृत्व की कुशलता में से नहीं निकली है—यह मानने के कारण ही उस बारे में कुछ लिखना पड़ा था । वीर्य-रक्षण उपादेय है ही, पर लक्षण के रूप में और तो और वह ब्रह्मचर्य का लक्षण भी नहीं कहा जा सकता । उसको लक्षण मानने से लाभ से अधिक ब्रह्मचर्य की हानि ही हुई है । अश्लीलता के प्रसंग में तो वह एक दम असंगत है ही ।

पति-पत्नी स्वेच्छित भाव से भाई-बहन के तौर पर रहने लगें, तो मेरे लेखे यह अपने आप में सचमुच बहुत इष्ट बात हो । पर अश्लीलता के विरोधी को आवश्यकरूप से इसी का उपदेश करने में नहीं लग जाना होगा । एक सद्गृहस्थ अश्लीलता का विरोध कर सकता है, बल्कि सच पूछिए तो यह गृहस्थों का ही काम है । अश्लीलता कौटुम्बिक मर्यादा और शील की जड़ों

को खाये जा रही है । कुटुम्ब की पवित्रता की रक्षा में ही अश्लीलता की बाढ़ से लड़ना और भी अनिवार्य है । लेकिन अश्लीलता यदि वीर्य-व्यय आदि किसी स्थूलता से जोड़ी जायेगी तो क्या हम यह नहीं देखते कि उससे तो फिर गार्हस्थ्य की नींव ही उखड़ जायेगी । अरे, पिता को अपनी पुत्री के शील की चिन्ता इसीसे तो है कि वह पिता है । क्या अपनी कन्या के सम्बन्ध में उसे हम याद दिलाना चाहेंगे कि वह पिता क्यों है ? हम कृपया कोई ऐसी बात न करें कि मातृत्व को अपने ऊपर लज्जित होना पड़े ।

अश्लीलता से बचने की दिशा में पहली आवश्यकता यह बताना है कि अपने प्रति ईमानदार रहो । कोई पुस्तक पढ़ते हो तो छिपाओ मत । दुष्कर्म कुछ बनता भी है तो झूठ मत बोलो । छिपो मत, चुराओ मत । दुर्गुण है, तो कृत्रिम साधुता की ओट उसे मत दो । विकार निर्बल पड़ेंगे तो ऐसे ही । अन्यथा मनको मैला और लँगोट को कसा रखने से कुछ न होगा ।

सार्वजनिक रूप से अश्लीलता के प्रति अरुचि उत्पन्न करनी होगी; क्योंकि वह तो पाप भी नहीं है, केवल गंदगी है । साहित्य में की अश्लीलता को दूर करना है तो साहित्यिकों से बहस नहीं मोल लेनी होगी, बल्कि उन्हीं से कहना होगा कि तुम जिसे गन्दा मानते हो, वही तो तुम्हारी उज्ज्वलता के विकास को रोक रहा है । साहित्य के कर्मियों को मौका देना होगा कि अपने क्षेत्र की गन्दगी को वे खुद ही पायें और खुद ही उसे दूर करें । उन्हें उसकी परिभाषा बनाकर नहीं देनी है, उन्हें स्वयम् अपनी परिभाषा बना लेने देना है । लोक-नेतृत्व के लिए हम लोगों पर आरोप की भाँति नहीं आ सकते । वह काम हम स्वयं उत्तरोत्तर उनके हृदय की वाणी बनकर सहज कर सकते हैं ।

ऊपर अहिंसा का शब्द आगया है । कट्टरता एक हिंसा है । अहिंसक में अधिकाधिक स्थितियों की समाई है । अहिंसक की सहानुभूति से कोई वंचित नहीं हो सकता । बल्कि जो पतित है अहिंसक उसके आगे उतना ही अनुतप्त है; क्योंकि हरएक का पतन उसे अपना दोष लगता और प्रभु-प्रार्थना में लीन करता है । कोई हमसे कटकर छूट जाता है तो वही मानो हमारी अहिंसा को चुनौती है । इससे यदि लोक-जीवन को सँभालने के लिए चलना है तो उसपर ऊपर से कुछ डालना नहीं, बल्कि भीतर से ही कुछ उभारना होगा । नीति के सूत्र देने से अधिक नैतिक जाग जगाना इष्ट है ।

मैं सोचता हूँ कि इस स्थल पर यह विचारना अधिक उपयोगी होगा कि अश्लीलता के प्रतिकार के लिए किस सार्वजनिक उपाय का अवलम्बन किया जाये ? भारत की कोई केन्द्रीय साहित्य-संस्था काम करती हुई हमारे पास नहीं है । भारतीय-साहित्य-परिषद् जब थी, तब गांधीजी की प्रेरणा से उस ओर दिशा-दर्शक एक प्रस्ताव भी स्वीकृत किया गया था । पर काका के शब्दों में वह परिषद् तो सुला दी गयी । राष्ट्र-भाषा की भी कोई हिन्दुस्तानी संस्था नहीं है । तब प्रयाग का हिंदी-साहित्य-सम्मेलन है । क्या उसके द्वारा प्रयत्न किया जाये ? सोचना चाहिए कि अपने अगले अधिवेशन में क्या वह इस दिशा में कुछ दिशा-दर्शन दे सकता है ? दूसरे लोग अपनी भाषा या अपने प्रभाव के क्षेत्र में क्या कर सकते हैं यह देखें । सम्पादक की हैसियत से आपसे विनय है कि विवेचन से हटकर व्यावहारिक रूप से हिन्दी के क्षेत्र में क्या और कैसे कुछ किया जा सकता है, इसपर कृपया ध्यान दें । और 'जीवन-साहित्य' द्वारा अन्य हितैषियों से सुझाव माँगें ।

इस आलोचन-विवेचन का यदि कोई अमली परिणाम निकल सका तो वह भी क्षम्य और सार्थक हो जायेगा । नहीं तो इससे पहले कि विवाद तर्क-विलास का रूप ले, उसे समाप्त कर देना चाहिए ।

दिल्ली
२४-९-४१

विनीत
जैनेन्द्रकुमार

हमारी सांप्रदायिक समस्या : एक व्यावहारिक दृष्टिकोण

[जवाहिरलाल जैन]

'हिन्दू पानी', 'मुसलमान रोटी', 'मुसलमान पानी', 'हिन्दू मिठाई'—ये आवाज़ें प्रायः हरेक स्टेशन पर रेल में सफर करनेवालों के कान में पड़ती हैं। पर कितनों के दिल को इन आवाज़ों को सुनकर धक्का लगता है? प्रकृति के द्वारा सबको मुफ्त में मिलनेवाले पानी और मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता रोटी पर भी हमारे अभागे देश में साम्प्रदायिकता का ट्रेडमार्क लगा रहता है! ये आवाज़ें कितनी अमंगल हैं! हमारी साम्प्रदायिकता का कैसा घृणित और नंगा चित्र है यह!

हिन्दू लोग गर्मियों में जनसाधारण को पानी पिलाने के लिए धर्मार्थ प्याउएँ लगाया करते हैं। बड़ा लोकोपकारी और प्रशंसनीय कार्य है—इसमें दो मत नहीं हो सकते। प्यासे को पानी पिलाना और भूखे को रोटी देना—हरेक धर्म में पुण्य माना गया है, किन्तु इसमें भी हम लोग साम्प्रदायिकता और अहंकार से नहीं बच पाये! ऊँची जातियों के समझे जानेवाले लोगों को यहाँ गंगासागर से पानी पिलाया जाता है और नीची जाति के समझे जानेवालों के लिए एक नाली की व्यवस्था और होती है। गंगासागर से नाली में पानी डालते हैं और उसी पानी को वे लोग पी सकते हैं। ये नालियाँ प्रायः टीन की होती हैं और आम तौर पर गंदी, टूटी हुई और भद्दी! उच्च से उच्च श्रेणी के मुसलमान और शिक्षित-से-शिक्षित इतरजातीय हिन्दू को इसी नाली का पानी पीना पड़ता है। क्यों? शायद ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के अतिरिक्त और लोगों को गंगासागर से पानी पिला देने पर हिन्दुओं का धर्म नष्ट हो जाता है! क्या हमने कभी इसका विचार किया है कि इस तरह के वर्त्ताव से किसी भी स्वाभिमानी मुसलमान अथवा तथाकथित स्पर्श और अस्पर्श्य शूद्र के चित्त को कितनी ठेस पहुँचनी चाहिए? यदि यही बर्ताव हमारे साथ हो तो?

अभी कुछ दिन पहले पंजाब एक्सप्रेस द्वारा कलकत्ते से दिल्ली आते वक्त एक विचारोत्तेजक घटना हो गयी। थर्डक्लास के डिब्बे में मेरे बराबर कई मुसलमान सज्जन बैठे हुए थे। एक भाई ने स्वयं उठकर अपनी जगह मुझे दे दी, जहाँ मैं रात को अपनी पीठ सीधी कर सका। और उसने दूसरी जगह शायद किसी मित्र के पास बैठकर रात काटी। भीड़ बराबर बढ़ती जा रही थी। बैठने की तो बात ही कहाँ, खड़े रहने भर को जगह न थी। इतने में एक हिन्दू युवक आया। जब उसे कहीं जगह न मिली तो वह उक्त मुसलमान सज्जन के ट्रंक और बिस्तर पर बैठ गया। वे सब बैठे-बैठे घंटों बातचीत करते रहे, जिसमें उस हिन्दू युवक तथा आस-पास के हिन्दू-मुसलमान सभी ने हिस्सा लिया। अचानक और सम्भवतः अनजान में उक्त मुसलमान ने अपने सामान पर बैठे हुए हिन्दू मित्र से कहा—'भाई ज़रा यह लोटा टोकरी में रख देना।' टोकरी उस हिन्दू के पास ही लटक रही थी। हिन्दू भाई का हिन्दुत्व, जो शायद अबतक सो रहा था, जाग पड़ा। उसने फौरन इन्कार कर दिया और कहा—मुसलमान का बर्तन छूने से मेरी तो जात चली जायेगी। वह मुसलमान शायद सैनिक या पुलिस नौकरी में था। एकदम क्रोधित हो उठा और उसने धक्का देकर हिन्दू से कहा—रातभर मेरे बिस्तर आराम करने से तेरी जात नहीं गयी और मेरा लोटा उठाकर रख देने से वह चली जायेगी! हिन्दू दीनतापूर्वक बिस्तरे से हटकर खड़ा हो गया और अपनी जाति रहने और जाने के बारे में इससे ज्यादा और कुछ न कह सका—हम धर्म के विपरीत काम कैसे करें? इतने में एक मौलवी साहब उस मुसलमान से बोले—'अरे! यह बहुत अच्छा हुआ जो उस हिन्दू ने तुम्हारे लोटे को नहीं छुआ। वर्ना हिन्दू के छू लेने से तुम्हारा बर्तन नापाक हो जाता!

मैंने अक्सर देखा है कि हिन्दू और मुसलमान एक फ़र्श पर बैठे हैं। अगर हिन्दू को पानी भी पीना है तो वह उस फ़र्श से उठकर अलग चला जायेगा या मुसलमान स्वयं उस फ़र्श को छोड़कर खड़ा हो जायेगा। इस छुआछूत की एक और विडंबना होती है। मुसलमान हिन्दू के लिए कोई खाने-पीने की चीज़ लाकर नहीं दे सकता हाँ, फल-फूल आदि के लिए छूट है। यह भी देखा गया है कि मियाँ साहब लगे हुए पान या अन्य वस्तु धागे से लटकाकर लम्बा हाथ किये हुए पंडितजी के वास्ते लिये चले आ रहे हैं!

ये उदाहरण योंही दैनिक जीवन में से उठाकर रख दिये गये हैं। ये घटनाएँ रोज़मर्रा होनेवाली और साधारण लगती हैं, परन्तु इनपर ज़रा ग़ौर करने की ज़रूरत है। कोई मुसलमान अथवा दलित हमारे भोजन को छू ले तो भोजन अपवित्र हो जायेगा। अगर उसके कपड़े हमारे भोजन के पात्रों से लग जायें तो भोजन फेंकना पड़ेगा। अगर उसकी छाया भोजन पर पड़ जाये तो चित्त में ग्लानि उत्पन्न हो जायेगी। क्या यह मनुष्यता का अपमान नहीं है? अगर कोई व्यक्ति ज्यादा गंदा रहता है, या रोगी है या किसी के कपड़े गंदे हैं तो इस तरह की छुआछूत का तो स्वास्थ्य की दृष्टि से समर्थन किया जा सकता है, किन्तु दूसरी जाति या मजहबवालों के प्रति, जो इस देश में ताने और बाने की तरह गुथे हुए हैं, इस प्रकार का व्यवहार अक्षम्य है।

ऊँच-नीच की यह भावना जहाँ एक ओर अहंकार का पोषण करती है वहाँ दूसरी ओर उपेक्षा, घृणा या गुलामी के भावों को दृढ़ करती है और दोनों ही निःसंदेह हमारी सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति में अड़चनें हैं।

इसके उत्तर में लोग दलीलें पेश कर सकते हैं कि ये सब रिवाज़ नये तो नहीं हैं। यह तो सैंकड़ों-हज़ारों वर्षों का प्रचलित व्यवहार है। दूसरे, जब मुसलमान इस देश के शासक थे, तब भी ये सब बर्ताव चालू थे ही, तो फिर अब इनके खिलाफ़ आवाज़ उठाना मुसलमानों और दूसरी जातियों को भड़काने के बराबर है या नहीं? तीसरे, जिन लोगों के प्रति इस प्रकार का बर्ताव किया जाता है वे स्वयं इसका विरोध नहीं करते तब दूसरों का उनकी वकालत करने को खड़ा हो जाना 'मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्तवाली' बात है।

ये सारी दलीलें नैतिक दृष्टिकोण से तो बेकार हैं। सबसे पहला सवाल यही है कि उक्त व्यवहार न्यायपूर्ण है या नहीं? क्या यह बर्ताव अपमानमूलक, अन्याययुक्त और मानवता के प्रतिकूल नहीं है? जब इस प्रकार का व्यवहार नैतिक दृष्टि से मान्य नहीं, तब चाहे वह पुराना हो चाहे नया, चाहे लोग उसे निर्विरोध मानते हों या नहीं, वह अनुचित है, बुरा है, अतः त्याज्य है।

कोई बुरी बात सैकड़ों वर्षों से चली आ रही है तो इसी कारण से वह ग्राह्य नहीं हो सकती, बल्कि उसे तो हटाना ही हमारा कर्त्तव्य है। यही नहीं, हमारे पूर्वजों द्वारा किये गये दुर्व्यवहार और अन्याय का भी हमें प्रायश्चित्त करना चाहिए। इस प्रकार पुराने जमाने से चालू अन्याय को दूर करना तो हमारे लिए और भी ज्यादा ज़रूरी है।

दूसरी दलील ज़रा विचारणीय है। मुसलमानों ने अपने शासन-काल में इस प्रकार का बर्ताव कैसे चलने दिया? इस विषय में पहली बात जो मेरे ध्यान में आती है वह यह है कि कि तत्कालीन मुसलमान शासक बड़े उदार-हृदय तथा सहिष्णु थे। वे अपनी प्रजा के धार्मिक भावों और आचार-विचारों का बहुत अधिक ध्यान रखते थे। वे हमेशा इस बात की पर्वा रखते थे कि कहीं उनकी हिन्दू रिआया का दिल न दुखे। दूसरी बात यह है कि उस समय मुसलमानों की संख्या अपेक्षाकृत बहुत थोड़ी थी। हिन्दू-मुसलमानों का सम्पर्क विशेषतः नगरों में था और वह ऊँचे दर्जे के लोगों में। उन लोगों का इखलाक़-व्यवहार इतना शिष्टतापूर्ण था कि वे एक दूसरे के भावों को ठेस लगने का मौक़ा नहीं आने देते थे। वे लोग एक दूसरे के त्योहारों

ब्याह-शादियों आदि में बड़े शौक से शामिल होते थे।

पर अब वह बात नहीं है। आज मुसलमान साधारण प्रजा के रूप में हैं। शासक के रूप में जो उदार भावना उनमें पहले थी, उसकी अब अपेक्षा नहीं की जा सकती। आज अल्पसंख्यक जाति के रूप में मुसलमान हिन्दुओं से उदारतापूर्ण व्यवहार की आशा करते हैं। बात यहीं तक सीमित नहीं है। आज एक दूसरे की ईमानदारी पर शक पैदा होगया है और मुसलमानों तथा दूसरी जातियों में हीनत्व-भावना (inferiority complex) ने घर कर लिया है। अबतक ये लोग इस प्रकार के व्यवहार को चुपचाप सहन कर लेते थे। अब पढ़े-लिखों, अधपढ़ों और अनपढ़ों में भी इस प्रकार के व्यवहार के प्रति विद्रोह का भाव उठ खड़ा हुआ है। पाकिस्तान और द्राविड़िस्तान आदि इसी लघुत्व-भावना के मूर्त्तरूप हैं।

आज सभी को आत्मचिंतन और गंभीर विचार की आवश्यकता है—खासकर उच्चवर्ण समझेजानेवाले हिन्दुओं को। दूसरे लोग अबतक उदारतापूर्वक इनके व्यवहार को सहते आ रहे हैं, किन्तु इन्हें तो अपने अनौचित्य को दूर करना ही चाहिए। जो-जो व्यवहार हमें अनुचित मालूम दें, उन्हें पहले-पहल खुद ही दूर करें, तो साम्प्रदायिक ऐक्य के महान् कार्य में वास्तविक सहायता दे सकते हैं। पाकिस्तान, सिक्खिस्तान द्राविड़िस्थान, द्विराष्ट्र-सिद्धान्त, संघ-विधान, अनिर्दिष्ट अधिकार (Residual Powers) आदि बड़ी-बड़ी बातें और चक्करदार विचार तो बड़े आदमियों—क़ायदेआज़मों और वीरकेसरियों के लिए ही छोड़ दें।, उन्हें ही इन महान् योजनाओं के आसमान में विहार करने दें तो ठीक है। हम लोग—ज़मीन पर चलने और रहनेवाले साधारण हिन्दुस्तानी हिन्दू-मुसलमान—रोज़मर्रा के बर्ताव और व्यवहार, आपस के रहन-सहन के तरीक़ों पर ही विचार करके उन्हें सुधारें। जो-जो बातें हमें अनुचित, अन्याययुक्त और दूसरों के दिल को दुखानेवाली लगें, उन्हें दूर करने का स्वयं ही प्रयत्न करें और इस तरह भले पड़ौसियों की तरह रह सकें तो इस क्षुब्ध वातावरण में हम अपने देश के इस जटिल प्रश्न को हल करने में व्यावहारिक सहायता दे सकते हैं और हिन्दुस्तान की बड़ी-से-बड़ी भलाई कर सकते हैं।

यह तिरस्कार !

तरस आता है, उन कलाकारों पर, जो आज जब उनका देश जल रहा है पेट और फूट की ज्वाला में, नंगे होकर ठिठुर रहा है, जल रहा है शीत की रात में, ग्रीष्म के दिन में—तब वे यौवन, सौन्दर्य, प्रेम के विलास में ही अपने को डुबो डालना चाहते हैं! भविष्य जब देश का इतिहास लिखने बैठेगा, तो वर्तमान के ये कलाकार क्या उत्तर देंगे?

भविष्य पूछेगा उनसे जब तुम्हारे देश में आग लगी थी, एक प्रहर, आधे पेट खाकर किसान मरते थे, देशव्यापी सत्याग्रह-आन्दोलन छिड़ा हुआ था, तब तुमने क्या दिया उसे? **तुम्हारा तो काम उस मूक पंगु जनता के नेतृत्व का था?** तब तुम आकाश के तारे गिनते रहे! उस समय, तुम्हारी सहृदयता निर्झर के सौन्दर्य में बहती रही, तुम्हारी भावना नग्न सौन्दर्य के चित्रण में लगी रही' **अमर साहित्य की रचना में, यशोलिप्सा में?** क्या यही धर्म था तुम्हारा? उस समय, क्या जवाब देंगे ये हमारे कलाकार?

संसार लिखेगा अपने इतिहास में कि ये जीवन-संघर्ष से भागनेवाले; भोगवादी साहित्यकार थे, इन्हें अपनी जाति से कोई सरोकार न था।

यह तिरस्कार! यह लाञ्छन क्या सह सकेंगे वे? मैं जानना चाहता हूँ इन कलाकारों से।

—सोहनलाल द्विवेदी—

प्रस्तुत प्रश्न

संयम का स्थान

['नरमेध' उपन्यास के लेखक श्री सर्वदानन्द को उनके पिता श्री सम्पूर्णानंदजी का भेजा एक अच्छा पत्र 'दीदी' में छपा है। वह प्रायः ज्यों-का-त्यों यहाँ दिया जाता है । —संपादक]

"....यदि उपन्यास का उद्देश्य समाज के किसी अंग विशेष का चित्र खींच देना हो तब तो कुछ कहना नहीं है, जहाँ बाग़ और मंदिर और प्रासाद होते हैं वहीं गन्दी नालियाँ भी होती हैं; परन्तु यदि कोई यह मान बैठे कि समाज अपूत-नालिका-मय है, उसमें केवल गन्दी नालियाँ ही हैं, तो यह भूल होगी। फिर कलाकार की दृष्टि में भविष्यत् का भी चित्र रहता है। प्राक्कथन में कहा गया है कि तुमने अनागत समाज के स्वरूप की ओर संकेत किया भी है। यह स्वरूप क्या होगा ? यह तो समझा कि स्त्रियाँ खुद कमाती होंगी। पर क्या यह पर्य्याप्त है या स्वतः कोई आदर्श बात है ? आज पुरुष कमाने के बल पर स्त्री को छोटा समझता हो और स्त्री न कमाने से अपने को हीन मानती हो; पर केवल दो या अधिक स्वतंत्र उपार्जन करनेवालों का संयोग गृहस्थी नहीं बना सकता। गृहस्थी में हजारों काम, हजारों कर्तव्य पैदा होते हैं, जिनके लिए किसी को पूरा समय देना चाहिए। ये काम उतने ही महत्त्व के हैं जितना कि रुपया कमाना। अतः आदर्श यह नहीं है कि सब कमाने में लग जायें वरन् यह कि एक कमाये, दूसरा घर सँभाले और दोनों का पद समान माना जाये। यदि एक अंग गिर गया या कमानेवाला न रहे या पूरे मनोयोग से घर देखनेवाला न रहे तो परिवार, गृहकार्य्य नहीं चल सकता।

इसपर प्रश्न यह हो सकता है कि गृहस्थी हो ही क्यों ? इस बात को ध्यान में रखकर ही तुमने संकेत किया है कि भविष्यत् में खाना-पीना होटलों में होगा और बच्चे किंडरगारटन को सौंप दिये जायेंगे। व्यवहार में यह असम्भव नहीं है; परन्तु अभी व्यवहारणीय नहीं है, अर्थात् अभी स्यात् १०००—५०० वर्ष तक इसको व्यवहार में लाना न चाहिए। गृहस्थी की नींव वही है जो तुमने लिखा है : निजी सम्पत्ति उसका आधार है, पुरुष अपनी उपार्जित सम्पत्ति अपनी सन्तति को देना चाहता है, इसीलिए सतीत्व पर उसने ज़ोर दिया इत्यादि। पर यह एक ध्रुव सत्य है कि इस जगत् में प्रगति इसीलिए होती है कि चीज़ें अपने मूल का अतिक्रमण कर जाती हैं। मनुष्य के पूर्वज वानर थे और सभी प्राणियों के पूर्वज त्वगिन्द्रियमात्र एक कोष्टक जीव थे। परन्तु अब मनुष्य इन मूल आकृतियों और स्वभावों से बहुत आगे बढ़ गया है। सदाचार में जो मूर्द्धन्यगुण—आत्मत्याग, सत्य, आस्तेय हैं उनका मूल यही है कि जब मनुष्य जंगलों में रहता था तो बिना आपस में इस प्रकार का बर्ताव किये सामूहिक जीवन असम्भव हो जाता और तत्कालीन हिंस्र पशुओं और विपुल शक्तिशालिनी प्रकृति के सामने सामूहिक जीवन के अभाव में वैयक्तिक जीवन नष्ट हो जाता। परन्तु अब ये सद्गुण मनुष्य की शोभा हैं। ये जिस मनुष्य में पाये जाते हैं वह इनके स्वार्थ की भित्ति पर खड़े मूल को नहीं जानता। इनको स्वतः श्रेयस्कर मानता है। यदि लोग विश्लेषण करके जड़ तक जायें तो सबका व्यवहार क्षुद्र 'स्वार्थ' में केन्द्रीभूत हो जाये और समाज तथा समाज से ही प्राप्य व्यक्ति का ऊँचा जीवन, व्यक्ति की सभी ऊँची अनुभूतियाँ नष्ट हो जायें।

इसी प्रकार सतीत्वादि की उत्पत्ति चाहे जैसे हुई, ये स्वतः श्लाघ्य गुण हैं और सामाजिक और वैयक्तिक जीवन की उन्नति के स्तम्भ हैं। यदि निष्पक्ष भाव से देखा जाये, तो सौ में कम-से-कम ५० पुरुषों में पत्नीव्रत पाया जाता है। मैं तो संख्या और ऊँचे रखना चाहता हूँ। स्त्री के जीवन में गर्भाधान से लेकर कुछ वर्षों तक ऐसा समय कई बार आता है जब उनके लिए Sexlife

(सम्भोग) अवाञ्छनीय और अवाञ्छित होती है; पुरुष के लिए ऐसा समय कभी नहीं आता। फिर भी अधिकांश पुरुष शरीरेण व्यभिचारी नहीं होते। फिर भी यदि पुरुष में एकपत्नीत्व की कमी है तो उसे बढ़ाना चाहिए, न कि स्त्री के एक-पतिव्रत 'को' नष्ट करना। **यह विरोध का मार्ग तो है पर ऊँची कला नहीं है। नीचे को उठाना कठिन होता है, उठे को गिराना सुकर।**

मनुष्य के जीवन की उन्नति का रहस्य है सयम अपनी यौन प्रवृत्तियों का, परिग्रह-प्रवृत्तियों का, क्रोध का संयम। संयम में कष्ट होता है, टीस होती है, यही उसमें रस का अंश है। संयम से ही भावों का विकास होता है और कला के विभिन्न विभागों की तथा भक्तिभाव की सृष्टि और पुष्टि होती है। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी कष्ट असह्य हो उठता है, बाँध टूट जाता है। हम ऐसी अवस्था में सहानुभूति से काम लें यह उचित है; पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि यह व्यवस्था कराने का प्रयत्न करें कि बाँध तोड़ ही दिया जाये। यदि यौन प्रवृत्ति का दमन न किया जाये तो परिग्रह-प्रवृत्ति का ही क्यों किया जाये? फिर समाज का रूप क्या होगा? हमारा जीवन केवल अपने लिए है, इस आधार पर समाज नहीं चल सकता और न व्यक्ति ही मनुष्योचित जीवन बिता सकता है। जब जीवन समाज के हितार्थ माना जायेगा—सबके हित के द्वारा ही स्वहित समझा जायेगा—तब गृहस्थी का भी उपयोग समझ में आयेगा।

किंडर गार्टन को सौंप देना बच्चे के लिए ठीक नहीं है। जो लाड़-प्यार उसे घर पर मिल सकता है वह किसी सार्वजनिक संस्था में नहीं मिल सकता और बिना लाड़ प्यार के, बिना अपनेपन के अनुभव के उसके बहुत से गुण विकसित ही न हो सकेंगे। कम-से-कम अभी सैकड़ों वर्ष तक तो यही देख पड़ता है। इसीलिए रूस में परिवार की ढहती हुई दीवारों को फिर से खड़ा करना पड़ा है।

तुम बार-बार लिखते हो कि स्त्री प्रेयसी है। प्रेयसी कहते हैं प्रेमपात्र को। प्रेम करनेवाले में उत्सर्ग, त्याग होता है, प्रेमपात्र में आदान होता है, वह लेना जानता है, परोपजीवी होता है। प्रेयसी का अर्थ हुआ जो प्रेम करना चाहे उसके प्रेम का पात्र अर्थात् श्रुति मधुर शब्दों में 'वेश्या'। यह ऊँचा आदर्श नहीं है।

इन सब बातों का यह तात्पर्य नहीं है कि समाज में रोग नहीं है, वैवाहिक पद्धति और पारिवारिक शैली निर्दोष है। उसमें हज़ार दोष हैं और उनको निर्भीकता से दिखलाना ही चाहिए; परन्तु मार्ग का प्रदर्शन केवल वही कर सकता है जो सम्यक् दृष्टि डाल सकता हो, गहराई से सोच सकता हो। अन्यथा कोरा भावावेश, एक-देशीय विचार, माडलीन सेन्टीमेन्टेलिटी बहुत दूर ले जाने में असमर्थ है।

हितू,
सम्पूर्णानन्द

आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्—

['लेखक बनाम प्रकाशक' विषय पर श्री जनार्दनराय ने एक बड़ा मर्मस्पर्शी लेख भेजा है जिसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है—संपादक]

"...मेरी शर्त यह है कि लेखक को अपनी कृति पर स्वामित्व का अधिकार रहे। मैं मुनाफे का अन्तिम हिस्सा पाने के लिए तैयार हूँ। मैं प्रकाशकजी को रेडियो सुनते देख सकता हूँ, दार्जिलिंग में स्वास्थ्य सुधारते हुए देख सुखी हो सकता हूँ, उनकी भारी-भरकम मिल्कियत को मीठी निगाह से देख सकता हूँ; पर उसे लेखक की आत्मा का पुश्तैनी स्वामी नहीं देख सकता। लेखक व प्रकाशक का मूलभेद यही है कि एक आत्मा बेंचता है व दूसरा खरीदता है। कोरी भावुकता में मैं यह नहीं लिख रहा। हिन्दी-संसार में आज लेखक बिकता है। जिसने बिकने से इन्कार किया उसकी पुस्तक का विज्ञापन नहीं हुआ, वह आलोचना के लिए नाममात्र को गयी, बरसों से खाते का हिसाब नहीं। जो लेखक आज बिकने को तैयार नहीं, क्या वह आज जी सकता है? मेरे इस प्रश्न का उत्तर

हिन्दी-संसार में आज कौन देगा ? बनारसीदासजी देंगें ? हरिभाऊजी देंगे ? श्यामसुन्दरदासजी देंगे ? हिन्दी का लेखक अपनी कृतिपर अपना कापी राइट अपना स्वामित्व माँगता है। वह पैसों का भूखा नहीं। जिसे आत्मसम्मान है वह मजदूरी करके भी पापी पेट भर लेगा।

"मैं नहीं मानता कि प्रकाशक लेखक को बनाता है। मैं नहीं मानता कि प्रकाशक लेखक को प्रोत्साहन देता है, कीर्ति देता है। वह लेखक को जन-साधारण तक पहुँचाने का एक साधन है, वाहन है। लेखक को बनानेवाला जीवन का गहन समुद्र है, संघर्ष है। वह जन्म ही से क्रान्ति-मति और गति लेकर आता है। यह मति व गति ही उसे बनाती है। प्रकाश को बाती नहीं बनाती, वह उसे बताती है।

"मुझे चारों ओर शोषण दिखायी देता है। जिधर देखो धनहीन मनुष्य, अवसरहीन ईश्वर की सन्तान, पिसते-मरते दिखायी देते हैं। रोग बड़ा गहरा है। कोरे विरोध-लेखों, चर्चाओं और प्रस्तावों से यह दानवत्व देवत्व में बदलने का नहीं। यह भयंकर शोषण तो सर्वस्व के त्याग से नष्ट करना पड़ेगा। आज हमारी वह मधुमयी दृष्टि ही बुझ चुकी है। आज हम पृथिवी के किसी भी जड़-चेतन के पास अमृत की दृष्टि, वाणी तथा हाथ लेकर नहीं जाते। हम तो जानते-अजानते आज फूल को लूटते हैं, बादल को सोखते और धरणी को काटते हैं। जिस संसार में तेल, सोना तथा भोगविलास के लिए प्रतिदिन लाखों को तलवार के घाट उतारा जाता हो, जहाँ करोड़ों को नागपाशों से सदियों जकड़ रखा जाता हो, जहाँ विद्वान् ब्राह्मण और स्वयंसेवक को दधीचि की भाँति अपनी हड्डियों तक को देदेना पड़ रहा हो, वहाँ हिन्दी के प्रकाशक की चुटिया पकड़ झकझोरने से होगा भी क्या ?

"यह तो तब सम्भव है, जब हिन्दी के लेखक इसे कीर्ति, यश तथा धन की दृष्टि से देखें, समझें। इस शर्मनाक, हीन, दोनों को पतित करनेवाली अवस्था का नाश तो तब हो जब लेखक पृथिवी तक को आत्म की रक्षार्थ त्याग देने को तैयार रहे। यह मनुष्यत्व का सवाल होगया है; मानवता की जीवट के साथ रक्षा करने का सवाल है। राष्ट्रभाषा के आभारतीय गौरव से जगमग हिन्दी का लेखक, कवि "इस अभिनव रसभारती का मधुपुत्र-पुत्री—क्या अपना ख़ून बेचना चाहता है चाँदी के टुकड़ों के लिए ? क्या वह प्रकाशकों के दरवाज़े दुम हिलाया करे इसकी बनिस्बत मिट्टी खोदकर मक्की की राबड़ी पीना पसन्द न करेगा ? क्षुब्ध तथा जाग्रत हिन्दी का मधुपुत्र व उसकी अमृतपुत्री अपने मनोरथ, अपनी कल्पनाएं, अपने अमृत-फल कदापि न बेचेंगे।

"मैं कभी-कभी सोचता हूँ—क्या लेखक अपना संगठन नहीं बना सकते ? अपना प्रकाशन तथा बिक्री नहीं कर सकते ? जब हम अन्य संस्थाएँ चला सकते हैं, तो प्रकाशन-संस्था क्यों नहीं ? राजनीति और समाज में समाजवाद चाहे परसों आवे, हमारे घर तो उसे आज ही आना है। हम लेखक और कवि नये जमाने के के पहिले जाग्रत श्रमजीवी बनें। हमें नम्रता किंतु दृढ़तापूर्वक अपना महत्त्व जानना और प्रतीत करना चाहिए; हमें ज्ञात होना चाहिए। राष्ट्रभाषा के रसघनों को वास्तव में समुद्र पर कर बफ-दझकर भी अमृतजलों की वर्षा करना है। भारतीय राष्ट्र के अमृत वाणी-पुत्र को तो आज नहीं कल पृथिवी के राज की कामना छोड़नी पड़ेगी। वह तो एक सघन मेघ के समान है। वह अपनी अभिनिधि के साथ घहरता है और राष्ट्र की वसुधा को सींच जाता है।

"पर इसका यह अर्थ तो है ही नहीं कि वह अपना स्वमान बेच दे; अपना धर्म और मनुष्यत्व बेच दे। आखिर राष्ट्र भी मानव-जीवन की यात्रा में एक विश्राम - स्थान है। अवश्य वह शीतल शान्त सघन विश्राम-स्थान है। पर वह अन्तरात्मा के प्रकाश से बढ़कर नहीं है। यह सुन्दर, सरस, सघन पृथ्वी आत्मा से बढ़कर नहीं। वह उसके लिए है। राष्ट्रभाषा

हिन्दी का लेखक आत्मा के लिए पृथिवीतक का जिस दिन त्यागना सीखेगा, उस दिन राष्ट्र की वाणी को लेकर वह एक राजहंस के समान चिरंतन मानसरोवर में विहार करेगा। उस दिन उसे नीर और क्षीर का भेद करना आ जायेगा। उस दिन वह एक सतर्क क्रान्तिदर्शी के जीवन का अबाध-आनन्द, तेज तथा संजीवन पा जायेगा। उस दिन वह पृथिवी पर एक अमृत मेघ के समान छाना तथा बरसना सीख लेगा।"

अश्लीलता का दमन

राष्ट्रीय संन्यासी स्वामी विवेकानन्द एक स्थल पर कहते हैं—

"सभी महान् गुरुओंने यह उपदेश दिया है कि 'बुराई का अवरोध न करो,' क्योंकि अवरोध न करना एक उच्च नैतिक आदर्श है। परंतु हम सभी जानते हैं कि यदि हममें से कुछ व्यक्ति इस आदेश का पूर्ण रूप से प्रयोग करने का प्रयत्न करें तो हमारी सामाजिक व्यवस्था ही छिन्न-भिन्न हो जायेगी और दोष हमारे जीवन तथा हमारी निधियों पर अधिकार करके हमारे साथ जो चाहेंगे सो करेंगे। यदि एक दिन के लिए भी इस अवरोध न करने के आदर्श का पालन किया जाये तो इसका परिणाम भीषण होगा।

इस सिद्धान्त का प्रचार मानव-जाति के अधिकांश भाग को निन्दनीय ठहराने के तुल्य है। इतना ही नहीं इससे मनुष्यों को यह अनुभव होगा कि वे सदा गलती पर रहे और उनके सारे कार्यों के संबंध में उनके अन्तकरण में संशय उत्पन्न हो जावेगा। यह उन्हें दुर्बल बना देगी। अन्य कोई दुर्बलता इतने दोष उत्पन्न नहीं करती जितनी कि निरन्तर आत्मग्लानि करती है। जो व्यक्ति अपने से घृणा करने लग गया है उसके लिए पहले पतन का मार्ग खुल जाता है। यही बात जाति के लिए सत्य है।

"हमारा कर्तव्य सर्वप्रथम यह है कि हम अपने से घृणा न करें; क्योंकि उन्नति के लिए पहले हमारा अपने-आपमें विश्वास होना चाहिए और फिर भगवानं में। जिस मनुष्य का अपने आपमें विश्वास नहीं वह भगवान में भी विश्वास नहीं रख सकता।……"

अश्लीलता भी एक बुराई है। यदि इसका अवरोध न किया जाये तो इससे भी वही दुष्परिणाम निकलेंगे जिनका उल्लेख स्वामीजी के शब्दों में ऊपर किया गया है। जबकि हमारा सामाजिक वातावरण दूषित है, आत्मोद्धार के लिए अश्लील साहित्य का दमन अनिवार्य हो जाता है। यह ठीक है कि विकार मनुष्य में उपजता है परन्तु उस विकार को प्रोत्साहन तो बाहर से मिलता है। दूषित वातावरण में विचार पहले से ही खराब होते हैं, जरा-सा प्रोत्साहन मिलने पर वे भड़क उठते हैं। विकार मनुष्य के मस्तक में मँडराने लगते हैं, और मनुष्य कुमार्गगामी हो जाता है। इसार रसिकतापूर्ण साहित्य और आग में इंधन का काम करता है।

स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध नैसर्गिक है; परन्तु मानव-जीवन के अन्य कार्यों की भाँति इस सम्बन्ध में भी संयम की अधिक बल्कि सबसे अधिक आवश्यकता है। रोग-निवारण के लिए दवा का प्रयोग उचित है, परन्तु उसका निरन्तर सेवन मनुष्य के अंगों को दुर्बल और शिथिल बना देता है। यही सिद्धान्त स्त्री-पुरुष-संबन्ध में लागू होता है। अतः जिस साहित्य के अध्ययन से काम-विचार मन को लुभाते और विचलित करते रहें वह तो जीवन को गिरावट की ओर ही ले जायेगा। अतः अश्लील साहित्य का दमन और आत्मसंयम ही उत्कृष्ट मार्ग है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि **"आत्मसंयम प्रदर्शित कार्यों की अपेक्षा अधिक शक्ति का द्योतक है। चार घोड़ों से जुती गाड़ी पहाड़ी पर से भगायी जाये और सारथि द्वारा उन घोड़ों को रोका जाये इनमें कौनसा कार्य अधिक शक्ति का द्योतक है? उनको जाने देना या रोके रखना ?"**

ऐसे तो बहुत कम मनसा स्वस्थ मनुष्य होंगे जो अश्लील साहित्य का भी सत्य की हवा और धूप में अध्ययन करें, जिससे अश्लीलता के कीटाणु मर जावें।

कुँवरकिशोर सेठ

कसौटी पर

मध्यप्रदेश का इतिहास : लेखक—रायबहादुर डॉ०हीरालाल; प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा काशी, पृ० १०६ मूल्य १॥)

मध्यप्रदेश के अन्धकार में पड़े हुए प्राचीन इतिहास की खोज करनेवाले विद्वानों में स्वर्गीय रायबहादुर डॉ० हीरालाल सबसे आगे हैं। प्रस्तुत 'मध्यप्रदेश का इतिहास' उनकी मृत्यु के बाद काशी नागरी प्रचारिणी सभा की कृपा से प्रकाश में आया है।

इस इतिहास में अन्धकारमय प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक का क्रमबद्ध इतिहास दिया गया है जिसे पढ़ने से हमारे देश के प्राचीन भूभाग दण्डकारण्य, विदर्भ, महाकोशल, चेदि, माहिष्मण्डल और डाहल तथा उनकी राजधानियाँ श्रीपुर, भद्रावति, कुण्डिनपुर, त्रिपुरी, रत्नपुर, गढ़मण्डल, विनीतपुर आदि-आदि की समृद्धि चलचित्र की भाँति सामने आती जाती हैं और प्राचीन राजवंश मौर्य, शिशुनाग, शुंग, आन्ध्र-भृत्य, गुप्त, हूण, वाकाटक, राष्ट्रकूट, कलचुरि, हैहय, नाग, तथा आधुनिक काल के परमार, चन्देल, गौड़, बुन्देलों और मराठों की गौरवगाथा हमारे बोध-पथ में फिर से संचरण करने लगती है। जिन प्रतापशाली राजाओं और रानियों ने इन भूभागों और वंशों को अपनी कृति और चरित्रों से उज्वल किया उन कार्तवीर्य, चन्द्रगुप्त मौर्य, खारवेल, समुद्रगुप्त, विक्रमादित्य (चन्द्र गुप्त), यश वर्मन, महाशिवगुप्त, हर्षवर्द्धन, गांगेयदेव, कर्णदेव, रत्नराज, सोमेश्वर, रानी दुर्गावती, छत्रसाल, और गोविन्दराय के विषय में अनेक ज्ञातव्य बातें इसमें मिलती हैं।

स्वर्गीय डाक्टर साहब ने अथक परिश्रम से शिलालेखों, ताम्रपत्रों और प्रशस्तियों के आधार पर इस प्रदेश के क्रमिक इतिहास की प्रतिष्ठा की है, यद्यपि कहीं-कहीं इनसे सहायता न मिलने पर सूत्र जोड़ने के लिए कल्पना और जनश्रुति का भी आधार उन्हें लेना पड़ा है। इतिहास का विशाल भवन बनाने के लिए नींव उन्होंने डाल दी है। भवन की पूर्णता के लिए अभी बहुत-सी बातों की खोज करना शेष है जिनके बिना वह अधूरा ही रहेगा। लेखक ने कई बातें ऐसी भी लिखी हैं जिनका पूर्ण रीति से कभी निर्णय नहीं हो पाया है। कुछ बातें विवादग्रस्त भी हैं। उदाहरण के लिए उनके मत से दण्डकारण्य इसी भाग का प्राचीन नाम था। और रावण की लंका भी इसीके आस-पास अमरकण्टक में थी। इस सम्बन्ध में डाक्टर साहब ने अपने जीवनकाल में पत्र-पत्रिकाओं में लेख भी छपवाये थे; किन्तु इसके विपरीत ऐतिहासिक और भौगोलिक प्रमाणों से ये स्थान दक्षिण ही में सिद्ध होते हैं।

माहिष्मती के मण्डला अथवा मान्धाता में होने के विषय में भी मतभेद है। साथ ही आपने एक जगह स्वीकार किया है कि "खारवेल के पूर्व महाकौशल में किसका राज्य था, इसका पता नहीं चलता। अनुमान से मौर्यों का आधिपत्य माना जा सकता है।" चौथी शताब्दि में महाराज समुद्रगुप्त ने जिस महेन्द्र नामक राजा को जीता था "उसके उत्तराधिकारी कौन हुए ? इसका पता नहीं चलता।" इस बात का भी अभी निश्चय नहीं हो पाया है कि राजर्षि-तुल्यकुल और राजर्षि वंशकुल एक ही थे या अलग-अलग। इसी प्रकार श्रीपुर में राजधानी स्थापित करनेवाले सोमवंशी राजा का भी पता अभी तक नहीं चला। बरार में दर्भ न होने के कारण उसका नाम 'विदर्भ' पड़ना और कुश की बहुलता होने के कारण 'कोशल' नाम रखा जाना भी कल्पना ही मानी जायेगी। सागर हर्ष के राज्य में सम्मिलित था इसके लिए वर्तमान सागर ज़िले में वैद्यों की अधिकता होना कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार हैहयों की प्राचीन राजधानी त्रितसौर्य कहाँ पर थी, इसका पता भी अभी तक नहीं लग सका है। ये सब बातें ऐसी हैं कि जिनकी इतिहास के

अन्वेषकों को अभी भी खोज करनी है ।

किन्तु इससे भी लेखक का महत्त्व कम होने के बदले बढ़ता ही है क्योंकि उन्होंने उपेक्षा के गर्त में पड़े हुए मध्यप्रान्त के इतिहास का उद्धार किया और उसकी ओर देश का ध्यान आकर्षित कराया । अब उनके उत्तराधिकारियों पर यह भार है कि वे उनके बताये हुए मार्ग पर चलकर अपने इतिहास को पूर्ण और समृद्ध बनावें । प्रस्तुत पुस्तक इस विषय की सर्वप्रथम पुस्तक है, इसलिए वह पथप्रदर्शक और उपादेय है ।

ब्योहार राजेन्द्रसिंह

कताई-गणित (१) : लेखक—श्री कृष्णदास गांधी; प्रकाशक—हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, सेवाग्राम; पृ० ६०; मू० ।)

वर्धा-शिक्षा-योजना में उद्योग के द्वारा शिक्षा देने का नया सिद्धान्त स्वीकार किया गया है । पर इस विषय की पुस्तकें अभी नहीं के बराबर हैं । हिन्दुस्तानी तालीमी संघ इस कमी को पूरा करने का बराबर प्रयत्न कर रहा है । इसी सिलसिले में खादी-विशेषज्ञ श्रीयुत कृष्णदास गांधी ने मूल उद्योग—कताई के शिक्षाओं तथा विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी है ।

प्रस्तुत पुस्तक में कताई-सम्बन्धी वे बातें दीगयी हैं जो शुरू के कातनेवालों के लिए बहुत ही जरूरी हैं । विद्यार्थियों के विचार से प्रश्न दिये गये हैं और प्रश्नों को हल करके दिखाया गया है । इसमें कताई-सम्बन्धी इतनी बातें दी गयी हैं कि इसे केवल 'कताई-गणित' के बदले 'आरंभिक कताई-शास्त्र' कहें तो अधिक ठीक होगा ।

'कताई-गणित' में कताई की क्रियाओं का वर्णन अनुभवों के आधार पर किया गया है । बच्चों की डायरी कैसे रखी जाये, उन्हें जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि कताई द्वारा कैसे सिखाये जायें, यह उदाहरण देकर समझाया गया है । कताई-सम्बन्धी परिभाषिक शब्द भी उपयोगी हैं । पुस्तक को आदि से अंत तक पढ़ जाने से पाठक कताई-शास्त्र का आरंभिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कताई में पड़नेवाली कठिनाइयों को स्वयं दूर कर सकता है ।

कताई का काम जबतक गरीब ग्रामीण कत्तिनों का काम था, तबतक वह 'एक साधारण धंधा बना रहा, और शिक्षा तथा कला की दृष्टि से उसमें कुछ विशेषता लोगों को नहीं दिखायी दी । परन्तु पिछले कुछ वर्षों से यह कार्य शिक्षा तथा कला की दृष्टि से देशवासियों का ध्यान अपनी ओर खींच रहा है । ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन से निस्सन्देह इस कला का समुचित विकास होगा ।

पूर्णानन्द

नागरिक-शिक्षा : लेखक—श्री भगवानदास केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला वृन्दावन; पृष्ठ-संख्या १२८; मूल्य ॥=)

हिन्दी में राजनीतिक और अर्थशास्त्र-विषयक साहित्य के पाठक केलाजी से काफी परिचित हैं । उन्होंने इन उपयोगी विषयों पर अनेक अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखी हैं ।

नागरिक-शिक्षा में श्री केलाजी ने नागरिकों के लिए ज्ञातव्य बातों का वर्णन किया है जिनका अज्ञान ही हमारे भारतीय समाज की अधिकांश कमज़ोरी का कारणरूप है । भारतवर्ष का शासन-यंत्र किस प्रकार टिका हुआ है और उसके अलग-अलग पुर्जे किस प्रकार अपनी-अपनी धुरियों पर घूमते हुए सारी मशीन को चला रहे हैं, इसको स्पष्ट करने के लिए सरकार के व्यवस्था, शासन और न्याय विभागों के अतिरिक्त सेना, पुलिस, जेल, डाक तार, रेलवे, शिक्षा और कृषि आदि विभागों का सीधा और सरलवर्णन किया गया है । इसके अतिरिक्त नागरिक-जीवन और उसके सुधार के लिए अलग-अलग दृष्टिकोणों से विवेचन करते हुए उन्होंने पुस्तक को ऐसा रूप दिया है कि वह ग्रामसुधार तथा उसके कार्यकर्त्ताओं के लिए विशेष उपयोगी बन गयी है ।

नागरिकों और राजनीति के विद्यार्थियों को प्रारम्भिक जानकारी के लिए यह पुस्तक अत्यन्त आवश्यक है । किन्तु इस पुस्तक का मूल्य ॥=) कुछ अधिक जान पड़ता है । इससे साधारण ग्रामीण को इसे खरीदने में कुछ कठिनाई होगी ।

'गद्य-सुमन (संकलन) : प्रकाशक—हिन्दी विद्यापीठ, बम्बई; मूल्य अजिल्द ।), सजिल्द ॥) पृष्ठ-संख्या ११०।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखकों के ये छोटे-छोटे लेख विद्यार्थियों के कोमल मस्तिष्कों पर शिक्षा के अलग-अलग दृष्टिकोण द्वारा अपनी छाप बैठाते हैं। भावों को व्यक्त करने की भाषा और शैली कहीं-कहीं क्लिष्ट होती हुई सामान्यतः मधुर और सरस है। साधारण हिन्दी भी पाठकों के मनोरंजन चीज़ है।

वर्तमान युद्ध में पोलैण्ड का बलिदान : ले०—ठाकुर राजबहादुर सिंह; प्रकाशक—वर्तमान साहित्य मंडल, बाजार सीताराम दिल्ली; पृष्ठ-संख्या १२३; मूल्य अजिल्द १), सजिल्द १॥)

इस पुस्तक के प्रथम १६ पृष्ठों में लेखक की केवल एक पृष्ठ में आसकनेवाली भूमिका और एक तिहाई पृष्ठ में आ सकनेवाले प्रकाशकीय निवेदन के अतिरिक्त और कुछ न रखकर आज के कठिन समय में १) या १।) देकर पुस्तक खरीदनेवाले पाठक को लूटा गया है। एक-एक पृष्ठ के लिए पैसा चुकानेवाले पाठक को १६ फ़िज़ूल पृष्ठों को पलटने में कितना कष्ट उठाना पड़ता होगा! इस पुस्तक को देखकर यह जान पड़ता है कि उसका कलेवर बढ़ाने के लिए ही उसमें ऐसे कई छोटे-छोटे अनावश्यक लेख जोड़ दिये गये हैं जिनका 'पोलैण्ड के बलिदान' शीर्षक में स्थान होना ही नहीं चाहिए था। 'युद्धारम्भ' और 'उपसंहार' अध्यायों के ४८ पृष्ठों में ही पोलैण्ड का खातमा हुआ; बस यही एक चीज़ है जिसका कि पुस्तक के नाम से सीधा सम्बन्ध है। वैसे भाषा और शैली अच्छी है।

भारती (संकलन) : प्रकाशक—हिन्दी विद्यापीठ, बम्बई; पृष्ठ-संख्या ६४; मूल्य ।)

यह पुस्तक छोटी-छोटी कहानियों और कविताओं का संग्रह है। राष्ट्रीय भावना का इसमें ध्यान रखा गया है। बालक-बालिकाओं के लिए अच्छी चीज़ है।

'विश्व-धाय'—ले०—भगवानदास वर्मा; प्रकाशक—साहित्य सदन अबोहर (पंजाब); पृष्ठ-संख्या ६४; मूल्य ।)

गाय, उसकी उपयोगिता और महत्त्व तथा उसकी रक्षा के साधनों पर इस पुस्तिका में चर्चा की गयी है, किन्तु रक्षा के साधनों में व्यापारिक दृष्टिकोण को ही माध्यम बनाकर उसके द्वारा होनेवाले फ़ायदों से पाठक को फुसलाया गया है। गो-रक्षा के किसी ठोस साधन का इस पुस्तक में अभाव-सा है। बनस्पति घी का प्रचार और नये से नये जूते पहिनने की होड़ को घटाने तथा इसे प्रोत्साहन देनेवाले लोगों का सामाजिक बहिष्कार कराकर गोरक्षा हो सकती थी, यह इसमें नहीं है।

पुस्तिका में छै-सात चित्र भी हैं।

सामान्यतः पुस्तक अच्छी है। म. श.

कहानी—एक कला : ले०—श्रीगिरिधारीलाल शर्मा गर्ग; प्रकाशक—ग्रन्थ-माला कार्यालय, बाँकीपुर; मूल्य १)

इस पुस्तक में लेखक ने कहानी के कलात्मक और शास्त्रीय रूप का विवेचन किया है। इसका प्रथम अध्याय जहाँ नीरस, शुष्क और किसी अंग्रेज़ी ग्रन्थ का अनुवाद-मात्र जान पड़ता है, वहाँ इसके अगले अध्याय सजीव जान पड़ते हैं। कहानी के मुख्य अंग, चरित्र-चित्रण, कहानी का प्रारंभ और समाप्ति आदि विविध अंगों की विस्तार से चर्चा की गयी है। बीच-बीच में विविध कहानियों से उद्धरण देकर अपने मत का समर्थन किया गया है, लेकिन 'कहानी का उद्देश्य' और 'यथार्थवाद' दो अध्याय अस्पष्ट रह गये हैं। उद्देश्य में तो पंडुक की कहानी ने स्थान बहुत ले लिया है, परन्तु विषय पर प्रकाश बहुत कम डाला है। 'हिन्दी कथा-साहित्य की प्रगति' भी बहुत संक्षिप्त हो गयी है।

अब भारत में गल्पकार इतने अधिक हो गये हैं कि अब भी विदेशी विद्वानों के ही वाक्य उद्धृत करना अनावश्यक प्रतीत होता है।

गल्पहार : संकलनकर्त्ता—भानुकुमार जैन; प्रकाशक—बम्बई हिन्दी विद्यापीठ, बम्बई

यह पुस्तिका आठ कहानियों का संग्रह है। संग्रह एक विशेष दृष्टिकोण से किया गया है। राष्ट्रीयता, मानवता, सांप्रदायिक एकता आदि की भावनाएँ सब कहानियों में प्रधान हैं। जहाँ रवीन्द्र, प्रेमचन्द, सुदर्शन और जाकिर-हुसैन की कहानियाँ सरस हैं, वहाँ "भैंस की कहानी" कुछ अनावश्यकरूप से लम्बी हो गयी है और शेष कहानियों से मेल नहीं खाती। 'अमर पिकेटिंग' में थोड़ी सी असावधानी हो गयी है। पिकेटिंग करनेवाली बाला कामान्ध व्यक्ति को 'भाई' के रूप में सम्बोधित करने के बदले यदि 'पिता!' कहकर चुम्बन देने के लिए तैयार होती, तो भारतीय संस्कृति की दृष्टि से अधिक उचित होता।

देशदर्शन-(थाइ देश; रूस और हालैण्ड) : सम्पादक—श्री रामनारायण मिश्र; प्रकाशक—भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद; मूल्य ४) प्रति वर्ष; एक अङ्क का ।=)

श्री रामनारायण मिश्र और उनके 'भूगोल'-कार्यालय ने हिन्दी-साहित्य में भौगोलिक ज्ञान की कमी को बहुत-कुछ अंश में दूर कर दिया है। उनकी अन्य प्रवृत्तियों के सिवाय 'देशदर्शन' योजना भी चालू है। प्रति मास एक-एक देश का संक्षिप्त परिचय, संक्षिप्त इतिहास, जलवायु रहन-सहन, पहरावा, पेशे, खेलकूद, बालक, उपज, खनिज और संपत्ति आदि का संक्षेप से विवरण दिया जाता है। विषय शुष्क तथा नीरस न हो, इस दृष्टि से बालकों की कथाएँ आदि देकर उन्हें मनोरंजक बनाने का प्रयत्न किया गया है। बीच-बीच में चित्रादि की बहुलता से पुस्तक और भी दिलचस्प हो गयी है। तीन अंक हमारे सामने हैं। थाई देश और हालैण्ड के वर्णन जितने रोचक बन पड़े हैं, उतना रोचक रूस का नहीं हो सका। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने किसी बहुत पुरानी पुस्तक के आधार पर लिखा है, जिसमें नवीन रूस के नये जीवन का परिचय अच्छी तरह से [illegible] दिया जा सका।

उपनिषदों की कथाएँ : लेखक—श्री शंकर दत्तात्रेय देव; अनु०—श्री० शकुन्तला पाठक; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, मूल्य ।)

हर्ष की बात है कि अब सस्ता साहित्य मंडल ने राजनैतिक साहित्य से भिन्न इस नवीन दिशा में पहला कदम रखा है। इसमें उपनिषदों से ली गयी ९ कथाएँ हैं, लेकिन लेखन-शैली स्वतंत्र है। प्रत्यक कथा के आध्यात्मिक स्वरूप की रक्षा करते हुए उसे आजकल की परिस्थिति के अनुरूप बनाने का प्रयत्न किया गया है।

दो-तीन कहानियों के अन्त में उपनिषदों के मूल श्लोक भी दिये गये हैं। यदि यह परिपाटी सभी कथाओं में रखी जाती, तो अधिक अच्छा होता। फिर श्लोक अन्त में न देकर यथा-स्थान (और टिप्पणी में अर्थ) देना ज्यादा संगत होता।

कृष्ण

पड़ोसी : लेखक—ठाकुर श्रीनाथसिंह; प्रकाशक—नेशनल लिटरेचर कंपनी, कलकत्ता; पृष्ठ-संख्या १६८; मूल्य १।=)

'पड़ोसी' ठा० श्रीनाथसिंह की बारह मौलिक कहानियों का संग्रह है। ठाकुर साहब की लेखनी से हिन्दी जगत भलीभाँति परिचित है। उनकी भाषा बड़ी मँजी हुई और भाव स्पष्ट होते हैं :—

"किसान की टेंट में जब कुछ पैसे जाते हैं तब प्रायः उसे गीत सूझता है और वह कुछ अकड़कर भी चलता है। बंसी एक अच्छा पहलवान और ख़ासा गवैया था। इसीलिए जब वह जसरा-बाज़ार से एक कनस्टर घी बेचकर लौटा तब घमंड से उसकी छाती कुछ फूल गई थी और वह मुक्त स्वर से कुछ अलाप भी रहा था।" (पृष्ठ २०)

वैसे तो संग्रह की प्रायः सभी कहानियाँ सुन्दर हैं और उनमें मानव-प्रकृति का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है; लेकिन 'स्त्री का इच्छुक' कहानी विशेष रूप से मज़ेदार है।

आशा है पाठक संग्रह चाव से पढ़ेंगे।

हिल्लोल : लेखक—श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'; प्रकाशक—शान्ति-सदन, काशी विश्वविद्यालय; पृष्ठ-संख्या ९६; मूल्य १)।

कवि की सफलता-असफलता की परीक्षा के लिए हम देखते हैं कि कवि की अनुभूतियों में निखिल विश्व की अनुभूतियों की छाया कहाँतक मिलती है ? इस कसौटी पर श्री 'सुमन' की कविता बहुत-कुछ खरी उतरती है। उनके सुख-दुख में संसार अपने सुख-दुख की छाया पाता है।

लेकिन कवि इस चेतना को लेकर कविता लिखने नहीं बैठता। उसके हृदय में वेदना है और दो-चार आँसू गिर जाने से वेदना का भार हल्का होजाता है। इसीलिए कवि अपनी पीड़ा से क्षणिक छुटकारा पाने के लिए रोता-गाता है—

"मेरे उर में जो निहित व्यथा
कविता तो उसकी एक कथा
छंदों में गागा-कर ही मैं
क्षणभर को कुछ सुख पाजाता।

'सुमन' वर्तमान को अधिक महत्त्व देते हैं। उसी को वह पहचानते हैं। भविष्य की उन्हें चिंता नहीं। मालिन पुष्प तोड़ने आती है तो पुष्प कहता है—

"आओ क्षणभर हँस खिल मिललें
कल की कल पर छोड़ो।

जीवन का नाम प्रगति है। प्रगति रुकी कि चेतन जड़ होजाता है। 'सुमन'जी प्रगतिशील हैं। उनमें अदम्य उत्साह है। मंजिल दूर है तो रुकना कैसा ? चलना ही धर्म है। रुक बैठना तो कायरता है। वह कहते हैं—

चलना हमारा काम है !
गति प्रबल पैरों में भरी
फिर क्यों रहूँ दर-दर खड़ा,
जब आज मेरे सामने
है रास्ता इतना पड़ा ?
जबतक न मंज़िल पा सकूँ
तबतक मुझे न विराम है।

कंगाली के अभिशाप का तुलनात्मक ढंग से कवि ने सजीव चित्रण किया है—

आगे - पीछे दाँये - बाँये
जल रही भूख की ज्वाल यहाँ।
तुम एक ओर, दूसरी ओर
चलने-फिरने के काल यहाँ।
इस ओर रूप की ज्वाला में
जलते अनगिनत पतंगे हैं,
उस ओर पेट की ज्वाला से
कितने नंगे-भिकमंगे हैं !

'सुमन' की शैली यद्यपि अभी परिमार्जित नहीं है; पर उनकी कविता में चुभन है। लेकिन उनकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह है—जिसका श्री केशवप्रसाद मिश्र ने अपने 'आमुख' में उल्लेख किया है—"सुमन' के रोने में भी एक दृढ़ता है, और तड़पने में भी एक आत्म-प्रतीति।

आशा है हिन्दी-जगत भाई 'सुमन' की इस पुस्तक का समुचित आदर करेगा। **यशपाल**

सुगम बाल-बोध : लेखक—अध्यापक मुन्नीलाल गुप्त 'विशारद'; प्रकाशक—मास्टर बलदेवप्रसाद, सागर, सी० पी०। पृष्ठ-संख्या ३६; मूल्य =)

यह पुस्तक पहली कक्षा के लिए नवीन शिक्षा-क्रम के अनुसार तैयार की गयी है। मोटा टाइप, ठीक रंग और सचित्र होने से यह बालकों के लिए मनोहर और उपयोगी है। अगर पढ़ानेवाला 'निर्जीव' न हो तो इसकी सहायता से बालकों को बड़ी जल्दी व पढ़ने की चाट लगायी जा सकती है।

लोरियाँ और बाल-गीत : लेखक और प्रकाशक—श्री कन्हैयालाल 'मत्त', ईंटारोडी, बुलन्दशहर। पृष्ठ-संख्या ६४; मूल्य =)

जैसा कि इसके नाम से प्रकट है, यह छोटे बालकों के लिए है। काव्य की दृष्टि से यह ऊँचे दर्जे की न हो, लेकिन छोटे बच्चों को बहलाने के लिए अच्छी है। मार्च-गीत प्रेरणात्मक और साहस व निर्भयता की भावना से भरे हुए हैं। बाल-पाठ ज्ञानप्रद हैं अपने बच्चों को बहलाने और प्यार-प्यार में उनके अन्दर अच्छी भावनाएँ भरने के लिए माताएँ इसे काम में ला सकती हैं।

मुकुट

हिन्दी की हलचलें

अ० भा० हिंदी-साहित्य-सम्मेलन

अ० भा० हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का अगला अधिवेशन अबोहर (पंजाब) में दिसम्बर १९४१ में होगा। साहित्य-सदन अबोहर द्वारा इसके लिए जोर-शोर की तैयारियाँ हो रही हैं।

सम्मेलन के अन्तर्गत साहित्य, समाजशास्त्र (इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र) दर्शनविज्ञान, तथा राष्ट्रभाषा परिषदें तथा कवि-सम्मेलन, पुस्तकालय-सम्मेलन, ग्राम-साहित्य-सम्मेलन, साहित्य-प्रदर्शिनी, अध्यापक और संपादक-सम्मेलन तथा महिला-सम्मेलन किये जाने की योजना बनी है। समस्त हिंदी-प्रेमियों का सहयोग वाञ्छनीय है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की अर्द्धशताब्दी

सं० २००० वि० में सभा की अर्द्ध शताब्दी मनायी जानेवाली है। उक्त अवसर पर सभा की जो विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित होगी, उसमें सभा का कार्यविवरण, हिन्दी की प्रगति, हस्त-लिखित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पुस्तकालय तथा कलाभवन की सूची, समस्त प्रांतीय हिंदी-संस्थाओं की सूची आदि महत्त्वपूर्ण अंग होंगे।

मध्यभारत हि० सा० सम्मेलन

आगामी ११, १२ और १३ अक्टूबर को म० भा० हि० सा० सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन महू में पं० सूर्यनारायणजी व्यास साहित्याचार्य्य, उज्जैन के सभापतित्व में मनाया जायेगा। सम्मेलन में निम्न आयोजन होंगे:—

(१) साहित्य-परिषद (२) कवि-सम्मेलन : (३) शिक्षा-परिषद (४) साहित्य-प्रदर्शिनी।

साहित्य-परिषद के श्री हरिभाऊजी उपाध्याय (यदि स्वास्थ्य ठीक रहा तो), और शिक्षा-परिषद के प्रो० ज्वालाप्रसादजी सिंहल एम. ए. एल.-एल. बी., एम. आर. ए. एस. सभापति होंगे।

प्रतिनिधि शुल्क १) रखा गया है। प्रतिनिधि किसी भी हिन्दी-संस्था के सदस्य, शालाओं के हिन्दी-शिक्षक, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग या अन्य हिन्दी-संस्थाओं द्वारा संचालित परीक्षोत्तीर्ण व्यक्ति तथा हिन्दी-प्रेमी, लेखक या कवि हो सकेंगे।

साहित्य-प्रदर्शिनी में मध्यभारत से निकलनेवाली समस्त प्रकाशित एवं अप्रकाशित पुस्तकें तथा मासिक पत्र-पत्रिकाएँ और मध्यभारतीय लेखकों की पुस्तकों की एक-एक प्रति प्रकाशकों या लेखकों को सम्मेलन-कार्यालय में भेज देनी चाहिए।

चतुर्वेदी-स्मृति-ग्रंथ

स्व० पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी की स्मृति-रक्षा के लिए सर्वश्री बाबूराव विष्णु पराड़कर, अंबिकाप्रसादजी वाजपेयी, बनारसीदासजी चतुर्वेदी, सनेहीजी, तथा हालनाजी "चतुर्वेदी-स्मृति ग्रंथ" प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे हैं—जिसमें चतुर्वेदीजी विषयक लेख, कविताएँ तथा संस्मरणादि होंगे।

त्रिपाठीजी साहित्य-क्षेत्र से विदा

लगातार पच्चीस वर्ष तक दिमाग़ी परिश्रम करते-करते थककर अब विश्राम के लिए मैं साहित्य-क्षेत्र से विदा ले रहा हूँ। हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग और हिन्दी-मन्दिर प्रेस मैंने दिल्ली के सस्ता-साहित्य-मंडल को दे दिया है।……

मैं सर्वसाधारण के लिए यह सूचना प्रकाशित करा रहा हूँ, कि उक्त बुकडिपो और प्रेस पर जिनका आजतक कुछ पावना था उसे मैं अपनी जानकारी के अनुसार चुकता किये जा रहा हूँ। फिर भी भूल से किसी का कुछ रह गया हो तो पत्र-द्वारा हिसाब भेजकर वे मुझसे अपना पावना ले लें। और जिनपर आज की तारीख तक हिन्दी-मन्दिर बुकडिपो या प्रेस का कुछ पावना बाकी है, वे कृपा करके उसे मेरे नये पते पर मुझे भेज दें।

हिन्दी-मन्दिर बुकडिपो अभी अपने ही नाम से कायम है। उससे जिनका पुराना सम्बन्ध था, वह अब समाप्त हो रहा है। नये संबंध के लिए, अब हिन्दी मन्दिर प्रयाग को या सस्ता साहित्य-मंडल को नये सिरे से लिखना चाहिए।

नया पता— **रामनरेश त्रिपाठी**

बसंत-निवास, सुलतानपुर २५—९—४१

प्रगति की ओर

[इस स्तम्भ में जीवन और राष्ट्र-निर्माणकारी प्रवृत्तियों तथा संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय व विवरण दिया जायगा। जो प्रवृत्तियाँ व संस्थाएँ देश व समाज में 'समभाव' बढ़ाने की दृष्टि से काम कर रही हैं उन्हीं के लिए इस स्तम्भ में स्थान रहेगा। 'समभाव' ही हमारे नजदीक उसकी प्रगतिशीलता की कसौटी होगी। —सम्पादक]

अखिल-भारत चर्खा संघ, वर्धा

१९४० के कार्य-विवरण से मालूम होता है कि उस वर्ष ५१ लाख रुपये की नयी खादी तैयार हुई। इसके लिए कुल ६०८ केन्द्र चलाये गये। बिक्री ७८ लाख रुपये की हुई जिसके लिए कुल २८४ बिक्री-भंडार चलाये गये। बंगाल, पंजाब, तामिलनाड, आन्ध्र, संयुक्तप्रान्त, गुजरात, कर्नाटक, म० महाराष्ट्र व बम्बई प्रान्तों में वस्त्र-स्वावलम्बन की दिशा में प्रयत्न हुआ। जीवन-निर्वाह मजदूरी अधिकांश शाखाओं में ३ आने तक पहुँच गयी है। यह आशा प्रकट की गयी है खादी का सम्पूर्ण काम जीवन निर्वाह मजदूरी की उक्त दर तक जल्दी पहुँच जावेगी। देशी राज्यों में मैसोर, बड़ौदा, भावनगर में वर्षों से राज्य की ओर से खादी-कार्य हो रहा है। इस वर्ष में औन्ध, मिरज, फलटन और ग्वालियर राज्यवालों ने अपने यहाँ खादी-कार्य का सिलसिला शुरू किया। सन् ३८ में संघ ने यह निश्चय किया था कि बचत का रुपया कारीगरों को दिया जाये। सन् ४० में यह निर्णय हुआ कि एक साल में इस कोष में जमा की हुई रकम उसके आगामी साल में खर्च करदी जाया करे। ५३,४५१ गाँवों में चर्खा-संघ के कार्य द्वारा कुल २,७६,१४६ कारीगरों को सहायता मिली। चर्खा-संघ ने अबतक ३,६९,००,०००) से अधिक मजदूरी बाँटी है। औजारों में सुधार भी हुए। धनुष-तकुआ, धुनाई के बदले तुनाई, स्वयं धुनकर पूनी बनानेवाले यंत्र में तथा कपास औटने के यंत्र में बैल का उपयोग, मगन चरखे का श्री शतीशचन्द्रदास गुप्त का संशोधित मॉडल तथा पेटीदार मगन-चर्खा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कपास की जाति में भी सुधार करने का प्रयत्न कहीं-कहीं हुआ— विशेषकर संयुक्तप्रान्त में। संघ में कुल २९३९ कार्यकर्ता रहे, इनमें १८६९ का वेतन २०) मासिक से कम है, ९४१ का २०) से ४०) के दरमियान और ५०) से अधिक पानेवालों की संख्या ८३ है। चर्खा-संघ द्वारा खादी की प्रथमा, मध्यमा, विशारद नाम की तीन परीक्षाएँ भी कायम की गयीं। प्रत्येक की पढ़ाई का क्रम एक-एक साल का है।

राष्ट्रभाषा-प्रचारक मण्डल, सूरत

यह मण्डल राष्ट्रभाषा और उसके साहित्य के प्रचार तथा प्रसार का काम सन् १९३७ से कर रहा है। १९४१-४१ का कार्य-विवरण हमें मिला है। इसकी मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं—

(१) हिंदी विद्यामंदिर; (२) राष्ट्रभाषा-अध्यापन-मदिर; (३) पुस्तकालय; (४) वाचनालय, और (५) आमसभाएँ

इस विद्या-मंदिर की ११ शाखाओं में ४७६ भाई और १६१ बहिनों ने शिक्षा पायी और ४५ सेवाभावी अध्यापकों ने अध्यापन किया। सभी आयु, जाति, धर्म या व्यवसाय के भाई-बहन इसमें राष्ट्रभाषा की शिक्षा पाते हैं।

अध्यापन-मंदिर में १०९ अध्यापक भाई-बहिनों ने अध्ययन किया। मंदिर गुजरात की सर्वोत्तम राष्ट्रभाषा-प्रचारक संस्था सिद्ध हुआ है।

पुस्तकालय में २४४० हिंदी, गुजराती, अंग्रेज़ी पुस्तकें है, जिनका मूल्य ३२०६॥=) १० पाई है। इसके १८० सदस्य हैं।

वाचनालय से इस वर्ष १०००० वाचकों ने लाभ उठाया। इसमें ४५ पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं।

४ वर्षों में मंडल ने ५२ प्रचार-सभाएँ और २९ आमसभाएँ कीं। इस समय मंडल के १७७ सदस्य हैं। इन सब प्रवृत्तियों में मण्डल ने ४ वर्षों में १२२००) खर्च किया है।

क्या और कैसे ?

पंजाब की जिम्मेदारी

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन यदि एक मुस्लिम रियासत—हैदराबाद ने अपने यहाँ नहीं होने दिया तो दूसरे मुस्लिम-प्रधान प्रान्त—पंजाब ने उसे करने का बीड़ा उठाकर हैदराबाद को अपने कर्त्तव्य की ठीक दिशा दिखायी है। सम्मेलन का आगामी अधिवेशन पंजाब में होगा व साहित्य-सदन, अबोहर ने उसकी जिम्मेवारी अपने ऊपर ली है। पंजाब में यह संस्था 'मरुस्थल में जलस्रोत' की तरह एक नियामत है। साहित्यिक ही नहीं, दूसरी उपयोगी सेवाओं ने भी इसे पंजाब का भूषण बना दिया है। इसके कर्ता-धर्ता स्वामी केशवानन्द निरपेक्ष सेवा के नमूना हैं। उनके साथी कार्यकर्ताओं का सादा व सेवामय जीवन स्फूर्तिदायी है। हमें विश्वास है कि अबोहर की सहायता के लिए सारा पंजाब दौड़ पड़ेगा और सम्मेलन अपूर्व सफलता के साथ होगा।

'आलोचक-मण्डल' की स्थापना

श्री प्रेमनारायण टण्डन एम० ए० (रानी कटरा, लखनऊ) सूचित करते करते हैं कि 'सहयोगी आलोचक मंडल' की योजना को वे आगामी नवम्बर से कार्यरूप में ले आवेंगे। योजना का अबतक जिस तरह स्वागत हुआ है, उससे उनको प्रोत्साहन मिला है। इस योजना से पत्र-संपादकों और प्रकाशकों को जो लाभ होगा वह उनके शब्दों में इस प्रकार है—

"इससे पत्र-सम्पादकों का काम हलका हो जायेगा। पुस्तकों की आलोचना करने से तो वे छुटकारा पा ही जायेंगे, साथ ही उनके प्रेषकों से आवश्यक पत्र-व्यवहार के झंझट से भी उन्हें मुक्ति मिल जायेगी। पुस्तक की एक प्रति उनके पास पहुँचती ही रहेगी और हमारे मण्डल के सहायक सदस्य बन करके आर्थिक लाभ भी उठा सकेंगे। वर्तमान स्थिति में उन्हें एक प्रति के अतिरिक्त और मिलता ही क्या है?

प्रकाशकों को इस योजना से जो लाभ होगा वे स्वयं समझ सकते हैं। (१) पुस्तक की यथार्थ आलोचना हो (२) नियत समय पर हो (३) अधिकारी व्यक्ति के द्वारा हो, यही वे चाहते हैं। इन्हीं के लिए हमारा प्रयत्न है। फिर यदि मंडल के द्वारा उनकी १५ पत्रों में आलोचना छपी तो जहाँ आजकल उन्हें दो प्रतियों के हिसाब से पुस्तक की ३० प्रतियाँ देनी पड़ती हैं वहाँ केवल १७ (१५ पत्रों को, १ मंडल को, १ आलोचक को) देनी होंगी। इस प्रकार वे १३ प्रतियाँ बचा सकेंगे, और आलोचना के लिए बार-बार सम्पादकों को लिखने से बच जायेंगे।"

पहले प्रत्येक पत्र से प्रति पृष्ठ १) लेने की बात थी। अभी तो वे उनसे वार्षिक शुल्क के रूप में ५) लिया करेंगे। यह धन दो किश्तों में दिया जा सकेगा। समालोचनाएँ वे उस समय छापेंगे जब पुस्तक की एक प्रति उनके पास पहुँच जायेगी।

प्रकाशकों को मंडल से विशेष लाभ होगा। अतः प्रत्येक पुस्तक की आलोचना के लिए वे मण्डल को कुछ आलोचक-शुल्क देंगे। १०० पृष्ठों की (या उससे कम की) पुस्तक के लिए उन्हें २) और फिर प्रति १०० पृष्ठों के लिए (अथवा कम हों) ।।)। इससे वे घाटे में नहीं रह सकते; क्योंकि इससे दस गुने मूल्य की पुस्तकें वे आसानी से बचा सकेंगे।

इस प्रकार पत्र-संचालक सहयोगी सदस्य, प्रकाशक ग्राहक सदस्य और आलोचक सहायक सदस्य होंगे।

आलोचकों को आरम्भ में १) या १।) प्रति पृष्ठ से अधिक न दे सकेंगे। कुछ आलोचकों के नाम और बढ़ाये हैं।"

लेखक व प्रकाशक आलोचक-शुल्क के साथ अपनी पुस्तकों की प्रतियाँ भेजें। एक-एक प्रति उन्हें उन पत्रों में भी भेज देनी चाहिए जिनमें वे

आलोचना छपाना चाहते हों। इन पत्रों के नाम वे टण्डनजी को भेज दें।

हमें खुशी है कि टण्डन जी की योजना इस हदतक आगे आ गयी है। हमें आशा है कि हिन्दी के प्राय: सभी पत्र-पत्रिका, प्रकाशक व आलोचक इस मण्डल को सहयोग देते रहेंगे व इससे लाभ उठाते रहेंगे।

जरूरी आयोजन

भाई श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने 'मधुकर' में स्वाध्याय-मण्डलों का प्रस्ताव किया है। आप लिखते हैं—

"अब वक्त आगया है कि साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्यों के लिए हम लोग स्वाध्याय-मण्डलों तथा घुमक्कड़-दलों की आयोजना करें।"

"स्वाध्याय-मंडल में भाग लेने के लिए आठ-दस व्यक्तियों से अधिक निमंत्रित न किये जावें। जो महानुभाव आवें वे कम से-कम दो निबन्ध लिखकर अपने साथ लावें।

"हमारे यहाँ अनेक उत्सव वैसे ही हुआ करते हैं—यथा तुलसी-जयन्ती, कवि-सम्मेलन, प्रान्तीय या जिला साहित्य-सम्मेलन इत्यादि। उन अवसरों पर हम लोग स्वाध्याय-मण्डल के अधिवेशन कर सकते हैं। इस प्रकार खर्च में भी किफायत हो सकती है। कालेजों के विद्यार्थी तो ऐसी आयोजना आसानी से कर सकते हैं। ठोस साहित्यिक कार्य के सिवाय सात्विक मनोरञ्जन की सामग्री भी होनी चाहिए। खूबी तब है जब आनन्द तथा उल्लास के वाह्य वातावरण के के भीतर हम ठोस काम कर दिखावें। निकट के मनोहर प्राकृतिक स्थलों की यात्रा का प्रबन्ध अवश्य किया जाये। इन यात्राओं के चित्र भी लिये जावें। खेलकूद, भाग-दौड़, कबड्डी, रस्साकशी, तैरना फुटबाल, बैडमिण्टन इत्यादि का प्रबन्ध आवश्यक है। साहित्य-सेवी होने के मानी मनहूसियत नहीं है। साहित्यिकों को तो सबसे अधिक सजीव होना चाहिए। "जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है।"

"इस प्रकार के स्वाध्याय-मण्डलों के सफलतापूर्वक सञ्चालन के लिए सबसे अधिक आवश्यक वस्तु है सहिष्णुता, बन्धुत्व की भावना, दूसरों की त्रुटियों के प्रति उदारता। यदि यह नहीं तो सारा गुड़ गोबर हो जायगा।"

हम इस प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन करते हैं। साथ ही चतुर्वेदीजी की इस राय से भी अपनी सहमति प्रकट करते हैं—"सखेद हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि हम लोगों में—हिन्दी साहित्य-सेवियों में वैसी लगन नहीं पायी जाती जैसी देश के अनेक राजनैतिक कार्यकर्ताओं में पायी जाती है। हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र को आवश्यकता है असाधारण व्यक्तित्ववाले ऐसे साहित्यिकों की जिनमें आदर्शवादिता के साथ-साथ व्यापार-बुद्धि तथा प्रबन्ध-शक्ति भी हो, जो अपने को साहित्यिक शक्ति का केन्द्र बनाकर अपने चारों ओर सच्चे कार्यकर्त्ताओं का एक छोटा समूह इकट्ठा कर सकें। यदि देश के प्रत्येक जनपद में एक भी ऐसा साहित्यसेवी विद्यमान हो तो स्वाध्याय-मण्डल बड़ी आसानी से चलाये जा सकते हैं।"

फायदा नहीं

चर्चिल सा० के यह कहने पर कि एटलांटिक-घोषणा का हिन्दुस्तान की राजनीति पर कोई असर नहीं पड़ेगा, भारत के राष्ट्रीय नेताओं में बड़ी नाराजगी फैली है। तरह-तरह से ब्रिटिश-सरकार पर यह दबाव डाला जा रहा है कि वह राष्ट्रीय सरकार की स्थापना यहाँ कर दे, जैसे कि पूने में कांग्रेस ने माँग की थी। इसमें तो कोई शक ही नहीं कि यदि ब्रिटिश सरकार को युद्ध में सफलता पानी है, व भारत के साथ न्याय करना है तो 'राष्ट्रीय सरकार' से कम कोई कार्रवाई कारगर नहीं हो सकती; परन्तु ऐसा मालूम होता है कि युद्ध के अंत तक भारत व ब्रिटेन का समझौता होने से किसी को कोई लाभ होने की आशा नहीं है। ब्रिटिश राजनेता शायद यह मान रहे हैं कि गुलाम भारत उनके जितने काम आ जायेगा उतना सत्ताधारी भारत नहीं। इसीलिए वे टालमटोल कर रहे हैं। इधर मुझे ऐसा लगता है कि इस

बीच समझौता करने से भारत को भी लाभ के बजाय उल्टी ज्यादा हानि होगी। जबतक युद्ध का अन्त नहीं हो जाता तबतक दोनों की ऐसी स्थिति नहीं माननी चाहिए कि कोई निश्चित बात तय पा सके व टिक सके। युद्ध में सहायता देने की शर्त पर ही ब्रिटेन कांग्रेस के साथ समझौता कर सकता है। लेकिन इस शर्त को मानने से खुद कांग्रेस के ही छिन्न-भिन्न हो जाने का अन्देशा है, जैसा कि पूनावाली माँग के बाद वह होने चली थी। कांग्रेस की ओर से बार-बार यह दुहराया जा रहा है कि वर्तमान सत्याग्रह युद्ध के अन्त होने तक, बल्कि भारत के स्वतंत्र होने तक, चलता रहेगा। ऐसी हालत में युद्ध के बाद शीघ्र ही भारत को स्वतंत्र कर देने व तबतक सरकार तुरन्त स्थापित करने की शर्त पर भी ब्रिटेन से समझौता करने में हमें तो कोई फ़ायदा नजर नहीं आता।

ध्यान देने लायक

कायदेआज़म हठीले हैं व अपनी हठ में उन्होंने हिन्दुस्तान को बहुत नुकसान पहुँचाया है यह सच है। दूरंदेशी से सोचने पर मुसलमानों का भी उन्होंने काफी अहित किया है, यही प्रतीत होगा। परन्तु हाल में उन्होंने मुसलिम लीग के उन तमाम मेंबरों पर, जिन्होंने वाइसराय की नयी कौन्सिल में या डिफेन्स कौन्सिल में जाना मंजूर कर लिया था, आनुशासनिक कार्रवाई करने का जो सिलसिला शुरू किया वह इस बात की तरफ़ जरूर ध्यान दिलाता है कि किसी संस्था के प्रमुख को अपनी संस्था की प्रतिष्ठा व मान-मर्यादा की रक्षा में कितना तत्पर रहना चाहिए। यदि किसी संस्था के सदस्य या कर्मचारी या कार्यकर्त्ता ही उसके आदेशों व विधि-विधानों की अवहेलना करने लग जायें तो वह संस्था चल ही नहीं सकती, न दूसरों को प्रभावित व आकर्षित ही कर सकती है। ऐसे लोग भी होते हैं जो किसी संस्था में, उसके मान-गौरव से लाभ उठाने के लिए या उसे नुकसान पहुँचाने की नीयत से ही उसमें शामिल होते हैं व मौका पाकर अपना दाँव साधते हैं। ऐसे स्वार्थियों से संस्था की रक्षा करने के लिए यदि संस्था के सञ्चालक सतर्क व सजग न हों तो वे अपने कर्त्तव्य से चूकते हैं। संस्थाएँ सेवा के साधन हैं, न कि स्वार्थ के। ह० उ०

स्व० ठाकुर केसरीसिंह बारहठ !

उस दिन राजस्थान उस 'राजस्थान-केसरी' में अपने एक ज्वलन्त देशभक्त सपूत, ओजस्वी कवि और सुयोग्य पत्रकार, साधक और तपस्वी को खो बैठा ! अपने सुपुत्र श्री प्रतापसिंह को देश-भक्ति की वेदी पर बलि चढ़ाकर, स्वयं ५ वर्ष तक कारागार में रहकर, वर्धा के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'राजस्थान-केसरी' के संचालन में योग देकर अपनी कविताओं और 'चेतावनियों' द्वारा एक राजा ही को नहीं, प्रजा को भी उद्बुद्ध करके स्व० ठाकुर साहब ने राजस्थान और राष्ट्रीय भारत के इतिहास में अपना अमिट स्थान बना लिया था। हम उनके परिवार के इस दुख में दुखी हैं। मु०

गांधी महाराज

मुखपृष्ठ की कविता का अर्थ इस प्रकार है :

गांधी महाराज के शिष्य कोई तो धनी हैं, कोई निःस्व हैं; परन्तु एक जगह हमारा मेल है :

हम गरीब को मारकर पेट नहीं भरते, धनी के निकट नतशिर नहीं होते; आतंक से हमारा मुख कभी नीला नहीं पड़ जाता।

संडा जिस क्षण गुस्से में भरकर, घूँसा उठा और डंडा घुमाकर आता है, हम हँसकर उस जवान से कह देते हैं—ये तुम्हारी लाल-लाल आँखें बच्चों की नींद उचकानेवाली ही हैं; उनसे हम भय नहीं पाते; भय किसे दिखाओगे ?

हम सीधी भाषा में बात कहते हैं, उस(बात) की सरलता स्वच्छ है। उसमें कूटनीति की कोई असुविधा (दाँवपेंच) नहीं होती। जेल के लिए कानून की बात की उलझन में पड़ना नहीं पड़ता; वह उसे सीधे जेल के द्वार ले जाता है।

जो झुण्ड के झुण्ड घर छोड़-छोड़कर चलने लगे, उनका अपमानों का शाप धुल गया; चिरकाल की हथकड़ी खिसककर आप ही आप धूल में गिर पड़ी और भाल पर गांधीराज की छाप लग गयी।

कमज़ोर, भद्दे कागज़ों के पेकिंग से होनेवाली

अपने व्यवसाय की हानि को बचाइए

हमारा मज़बूत, चीमड़ व सुन्दर

गैंडा मार्का

बैम्बू पल्प का बना हुआ क्राफ्ट पेपर

आपकी कठिनाइयों को हल करदेगा

यह उच्चकोटि का
रैपिंग कागज़ है

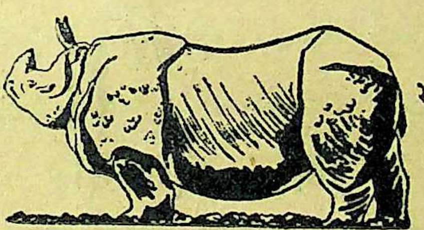

भारतीय बाजार में आज
इसका सानी नहीं

एक बार इस कागज़ का व्यवहार करलेने पर
आप दूसरे पेकिंग कागज़ का नाम न लेंगे

अपना आर्डर तुरन्त भेजिए

ओरियण्ट पेपर मिल्स लिमिटेड
८, रायल ऐक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

दिल्ली में सब प्रकार की उत्तम छपाई और खास करके

हिन्दी पुस्तकों की छपाई

का काम

फेडरल ट्रेड प्रेस

नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७

में

बहुत अच्छा और सावधानी से किया जाता है

एक बार परीक्षा कर देखें

यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था

'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें

हमारे यहाँ छपती हैं।

"राष्ट्रभाषा-समाचार"

[राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा का मुखपत्र]

सम्पादक : श्रीमन्नारायण अग्रवाल

हर महीने की १४ तारीख को निकलता है

अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी की प्रगति

भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं की चुनी हुई छोटी सुन्दर कहानियाँ,
निबन्ध, जीवन-परिचय अित्यादि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा
की सभी प्रवृत्तियाँ,

अगर आप यह सब सामग्री अेक ही जगह और अेक ही साथ पढ़ने के अिच्छुक है
तो "राष्ट्रभाषा-समाचार" के ग्राहक बनिए

अिसका वार्षिक चन्दा सिर्फ १० आना मनीआर्डर से है।
यह वी० पी०से नहीं भेजा जाता

प्रबन्ध सम्पादक—"राष्ट्रभाषा-समाचार" वर्धा।

बिड़ला जूट मैन्युफ़ैक्चरिंग कम्पनी लि०

के

जूट कार्पेट

ट्रेडमार्क—पद्म (लोटस)

हर प्रकार की सजावट के लिए

सबसे बेहतरीन चीज़

सस्ते, आकर्षक और मज़बूती के लिए प्रसिद्ध

दिल्ली, लाहौर, अमृतसर इत्यादि
मेसर्स एम. डी. ज़िन्दल एण्ड सन्स,
मरीना होटल आर्केड, **नई दिल्ली.**

बनारस, कानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर
मेसर्स खन्ना इन्डस्ट्रीज़,
बीबीहटिया, **बनारस सिटी.**

आगरा, अलीगढ़, मथुरा,
मेसर्स सुखलाल जमसावाल
१ ताजरोड **आगरा,**

देहरादून, मेरठ, मसूरी
मेसर्स एस. एल. अग्रवाल ऐण्ड कम्पनी,
१३ जी. राजपुर रोड, **देहरादून.**

बरेली, मुरादाबाद, रामपुर
मेसर्स बी. डी. गोयल एण्ड सन्स,
बांस-मण्डी, **बरेली.**

नैनीताल, अलमोड़ा, रानीखेत
मेसर्स हरिदत्त एण्ड ब्रदर्स,
दी माल, **नैनीताल.**

सेलिंग एजेन्ट्स :

सब एजेण्ट और स्टाकिस्ट प्रत्येक जगह हैं।

मैनेजिंग एजेन्ट्स,

बिड़ला ब्रादर्स, लिमिटेड.

८, रायल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता।

टेलीग्राम:—"जूटवीवर" टेलीफोन:—कलकत्ता ५६५.

हिन्दी-संसार में हलचल मचा देनेवाला

‘जीवन-सखा का ‘व्यायाम-अंक’

जनवरी सन् १९४२ में प्रकाशित होगा

जो प्राकृतिक साधनों द्वारा स्वास्थ्य-लाभ करने के इच्छुक हिन्दी-प्रेमियों के लिए स्वास्थ्यविषयक एक अभूतपूर्व ग्रंथ होगा ।

इसमें क्या रहेगा ?

१ फेफड़ा और मांसपेशियों पर व्यायाम का प्रभाव ।
२ हृदय पर व्यायाम का प्रभाव ।
३ जर्मन व्यायाम-प्रणाली ।
४ स्वीडिश व्यायाम-प्रणाली ।
५ फ्रांस व्यायाम-प्रणाली ।
६ जापान व्यायाम‘प्रणाली ।
७ हिन्दुस्तानी व्यायाम-पद्धति ।
८ युवक और युवतियों के लिए व्यायाम ।
९ पेट की कमजारी और आँत उतरने का का इलाज ।
१० व्यायाम बीमारियों के लिये ।
११ मालिश ।
१२ कब्ज का इलाज ।
१३ श्वास-रोग का इलाज ।
१४ रक्त-संस्थान की बीमारियों का इलाज ।
१५ मोटापा, इसका कारण और इलाज ।
१६ नाड़ी-दौर्बल्य और दर्द में व्यायाम-चिकित्सा ।
१७ फालिज का इलाज ।
१८ भोजन और व्यायाम ।
१९ आँखों के लिये व्यायाम ।
२० सूर्य्य-नमस्कार ।
२१ योग-व्यायाम ।
२२ अन्दरूनी सफाई के लिये योग-क्रियायें ।
२३ हिन्दुस्तान के व्यायाम केन्द्रों-का सिंहावलोकन ।
२४ व्यायाम के समय शरीर की आन्तरिक अवस्था
२५ व्यायाम के लिए अवस्था, व्यवसाय तथा स्त्री-पुरुष का विचार ।
२६ खिलाड़ियों (Sportsmen) का व्यायाम ।
२७ स्कूलों की व्यायाम-पद्धति ।
२८ कालेजों और विश्वविद्यालयों में व्यायाम
२९ लड़कियों के स्कूलों और कालेजों में व्यायाम ।
३० कन्धों की विषमता का कारण और इलाज ।
३१ हकलाना और गले का इलाज ।
३२ व्यायाम और बिश्राम ।
३३ शरीर के अंग-प्रत्यंग का व्यायाम ।
३४ हिन्दुस्तानी व्यायाम-प्रवर्तकों की जीवनी और उनका कार्य ।
३५ हिन्दुस्तान के प्रान्तों में व्यायाम ।
३६ शरीर पर व्यायाम का प्रभाव ।
३७ देश में व्यायाम-प्रसार की आवश्यकता ।

अनेक चित्रों से सुसज्जित इस वृहद् विशेषांक का मूल्य १) होगा, किन्तु ‘जीवन-सखा’ के सभी नये पुराने ग्राहकों को मुफ्त मिलेगा । इसलिए यदि आप अबतक ‘जीवन-सखा’ के ग्राहक न बने हों, तो शीघ्र बनकर इसे प्राप्त करें । १५ दिसम्बर के पूर्व ही १) अग्रिम भेजकर विशेषांक की कापी अपने लिये रिजर्व करा सकते हैं । युद्ध के कारण जो अनिवार्य कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयी हैं उनकी वजह से यह विशेषांक सीमित संख्या में प्रकाशित होगा । इसलिए १५ दिन के पूर्व ही जिन्होंने विशेषांक की प्रति के लिये आवेदन नहीं किया, उन्हें फिर बाद में अंक प्राप्त नहीं हो सकेगा । अतः शीघ्रता कीजिए, अन्यथा निराश होना पड़ेगा ।

मैनेजर—‘जीवन-सखा’, ८७ हिम्मतगंज, इलाहाबाद

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रति दिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५००	रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,०००	,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५०	,,
१९३७ ई० में	३५,५९,५००	,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५०	,,
१९३९ ई० में	५०,११,९६८	,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५०	,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

शाखायें—**कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद (दक्षिण), अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना।**

हंस

के विशेषांक हिन्दी-साहित्य के सृजन में अग्रणी क्यों हैं ?

क्योंकि

उनका दृष्टिकोण सदैव ही प्रगतिशील रहा है ।
उनके लेखक अपने विषय के दिग्गज विद्वान हैं ।
उनके विषयों का चुनाव अभिनव रहा है ।

हंस : कविता-अंक

के लेखक हैं

सुमित्रानन्दन पन्त
सियारामशरण गुप्त
'निराला'
'नवीन'
मैथिलीशरण गुप्त
बच्चन
दिनकर
अज्ञेय
महादेवी वर्मा
रामकुमार वर्मा
माखनलाल चतुर्वेदी
नरेन्द्र शर्मा
अंचल
भगवतीचरण जोशी
उमाशंकर जोशी
स्टीफेन स्पेंडर
हरीन्द्र चट्टोपाध्याय
हीरालाल गोदीवाला
आरदेशर फ० खबरदार
सुनीतिकुमार चटर्जी
शिवदानसिंह चौहान
प्रभागचन्द्र शर्मा
देवेन्द्र सत्यार्थी
एहतिशाम हुसैन
केदारनाथ अग्रवाल
नगेन्द्र
नेमिचन्द्र जैन
नरोत्तमप्रसाद नागर
रामविलास शर्मा
'सत्येन्द्र'
नन्ददुलारे वाजपेयी
हजारीप्रसाद द्विवेदी
गुलाबराय
प्रकाशचन्द्र गुप्त
आदि आदि···

अपनी प्रतियों के लिए अभी से न लिखने पर आपको निराश न होना पड़े, इसलिए अपना चन्दा आज ही भेज दीजिये ।

कविता-अंक की प्रति सरस्वती-प्रेस बुकडिपो, अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ; कामताप्रसाद कक्कड़ रोड, प्रयाग से मिलेंगी। आप अपना चन्दा इन शाखाओं में जमा कर मनीआर्डर खर्च बचा सकते हैं ।

वार्षिक ६)
एक अंक का आठ आने
कविता-अंक का १)

व्यवस्थापक,
'हंस'
बनारस कैंट

केवल १५ सितम्बर से ३१ अक्टूबर तक

❀ नये ग्राहकों को नयी सुविधा ❀

परीक्षांक — सम्मेलन की 'विशारद' और 'रत्न' परीक्षा, यू० पी० की 'विशेष योग्यता' पंजाब की 'प्रभाकर,' 'भूषण' आदि और दक्षिण की 'राष्ट्रभाषा विशारद,' सूरत की 'कोविद' और बिहार की 'साहित्यालंकार' परीक्षाओं को दृष्टि में रखकर निकाला गया है।

— एवं —

हिन्दी लेकर जो विद्यार्थी इंटर, बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाओं में प्रविष्ट हो रहे हैं, उन्हें यह अंक विशेष रूप से सहायता देगा।

परीक्षांक

देखिए

परीक्षांक के
कुछ निबंध

चन्द और पृथ्वीराज रासो
विद्यापति का हि० सा० में स्थान
कबीर और सृष्टि-विज्ञान
जायसी का प्रेम-काव्य
सूर का वियोग-शृंगार
केशव की काव्य-कला
सेनापति का कवित्त-रत्नाकर
कामायनी
साकेत पर एक दृष्टि
सेवा-सदन
गोदान
रस और दोष

मुफ्त मिलेगा

'साहित्य-सन्देश' हिन्दी का एकमात्र समालोचनात्मक पत्र है, जिसमें हिन्दी-साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियों, विभिन्न वादों और समस्याओं पर प्रति मास नियमित लेख छपते हैं। हिन्दी-साहित्य में उसके लेखकों और उनके ग्रंथों पर आलोचनात्मक प्रकाश डालनेवाला यही सर्वप्रथम मासिक है।

वार्षिक मूल्य ३) साधारण अंक का नमूना मुफ्त मँगाइए **विद्यार्थियों से २) साल**

पत्र-व्यवहार का पता—**साहित्य-सन्देश कार्यालय, आगरा।**

नववर्ष के विशेषांक में नवीनता

'कहानी' भेंट

◆

- युद्ध और शान्ति की रोमांचकारी कहानियाँ
- अद्वितीय गाम्भीर्य और हास्य
- आधुनिक प्रेम-कथायें
- निम्नवर्गों की मार्मिक गल्पें
- भारत और विदेशों की चुनी कहानियाँ
- कहानी-कला पर समीक्षात्मक लेख
- पद्यबद्ध रसमय कथायें
- कलात्मक रेखाचित्र, नखचित्र

आदि के साथ

अनेकों सादे बहुरंगे मनोरम और कलापूर्ण चित्र।

इनके अतिरिक्त——————

भेंट में

◆ दो रुपये मूल्य का एक उत्कृष्ट उपन्यास

यह आठ आने मूल्य का कहानी-कला का ग्रन्थरूप विशेषांक और भेंट-पुस्तक केवल वे ही ग्राहक पा सकेंगे जो अपना चन्दा ४) मनीआर्डर से २५ सितम्बर तक भेज देंगे।

विशेषांक और भेंट-पुस्तक की सीमित प्रतियाँ छप रही हैं

इसलिए चार आने भेज कर अगस्त की कहानी में विवरण देखें या हमसे पूछें—

'कहानी' कार्यालय, बनारस कैंट।

'पथ के दावेदार' गवर्नमेण्ट ने जब्त कर लिया है।

बम्बई के भूतपूर्व गृह-सचिव श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

गुजरात के इस श्रेष्ठ कलाकार की

रचनाओं को सस्ते-से-सस्ते मूल्य में हमारी

'सुलभ साहित्यमाला' में

अवश्य पढ़िए। अबतक

मुन्शी-साहित्य के

दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं। मूल्य दस-दस आना इन भागों में

मुंशी का सबसे पहला ऐतिहासिक रोमान्स

पाटन का प्रभुत्व

निकला है। शरत् बाबू की सम्पूर्ण रचनाओं की तरह मुंशी की भी सम्पूर्ण रचनाओं को हम 'सुलभ साहित्य माला' में निकालने का निश्चय कर चुके हैं। अन्य भाग शीघ्र निकलेंगे।

शरत-साहित्य

का प्रकाशन भी हो रहा है। शेष-प्रश्न सितम्बर के अन्त तक निकल जायगा

मूल्य दो भागों का सवा रुपया

राधा

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार पण्डित उदयशंकर का यह भाव-नाट्य

हाल ही प्रकाशित हुआ है। मूल्य दस आने.

संचालक—हिन्दी ग्रंथरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग़, गिरगाँव, बम्बई

Regd No L 4671

इलाहाबाद में

सस्ता साहित्य मंडल

की

नयी शाखा

जीरो रोड
इलाहाबाद

'मण्डल' के प्रेमी

पाठकों और ग्राहकों

तथा

हितचिंतकों और सहयोगियों

को

यह जानकर प्रसन्नता होगी

कि

विजयादशमी से

इलाहाबाद में 'मण्डल' की नयी शाखा
खुल गयी है

हिन्दी-मन्दिर प्रयाग

के

समस्त प्रकाशनों का स्टॉक और उसका स्वामित्व

अब 'मण्डल' ने मोल लेलिया है

इसलिए अब

उसकी पुस्तकें मँगाने के लिए

'मंडल' को लिखने की कृपा कीजिए

पूरा विवरण अन्यत्र पढ़िए

अब—

हिन्दी-मन्दिर

इलाहाबाद

की

प्रकाशित सब पुस्तकें

'मण्डल' ही से लीजिए

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छपकर वहींसे मार्तण्ड उपाध्याय

तमसो मा ज्योतिर्गमय

जीवन साहित्य

र्ष २ : अंक ४ नवम्बर : १९४१

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

भविष्यवाणी

इस महासमर के पश्चात् हमें एक विभिन्न प्रकार के ही साहित्य की आवश्यकता होगी। अर्थात् अबतक साहित्य की जो दिशा है, उससे अब हमारा कार्य नहीं चल सकेगा। आगामी युग के साहित्यिक काल्पनिक होने के साथ ही कर्मवीर भी होंगे।

केवल कल्पना-कुंज के विलासी कलाकार आनेवाले युग के दैनिक अथवा जीवन-व्यापार में कुछ अधिक 'भाव' से नहीं आँके जायेंगे। आगामी युग 'कर्म' की कसौटी पर कसे हुए कलाकारों की कल्याणी वाणी ही ध्यान से सुनेगा। भविष्यद्-युग के निकट—जिसे इस विध्वंस के बाद निर्माण करना होगा—केवल कल्पना-विलास के लिए समय होगा ही नहीं।···रुपया-आना-पाई की तुला-वाले कलाकार आगामी युग के बाजार में उच्च मूल्य से अंकित हो सकेंगे यह मैं मानने को तैयार नहीं हूँ! अब तो वेदव्यास, बाल्मीकि, कालिदास और तुलसी-से कलाकारों की प्रतीक्षा है, जिन्होंने 'रॉयल्टी' या 'फ़र्मे' के भाव पर अपनी दिव्य वाणी का व्यवसाय न कर जो कुछ भी किया—'परानुग्रहकांक्षया' और 'स्वान्तःसुखाय' किया। जलवायु और रवि-किरण-प्रकाश की तरह जगत् को कलाकारों की दिव्य रचनाओं का 'रस' अनायास और अमूल्य सुलभ होना चाहिए!······

सारे राष्ट्र का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह अपने सुयोग्य कला-कोविदों की सुरक्षा के भार का उत्तरदायित्व वहन करे। जिनके गीत उनके बच्चे गायेंगे, जिनकी कहानियाँ उनकी बालाएँ पढ़ेंगी, परिवारों के प्राणों तक को स्पर्श करनेवाले इन कलाकारों की रक्षा 'नगर-रक्षिका' के 'दीप-दण्डों' की तरह राष्ट्र या समाज को करनी चाहिए। मुझे भविष्य दिखायी देता है कि आनेवाले युग में ऐसा ही होगा। कुछ ऐसे ही वातावरण में बसने के लिए हमारे सुयोग्य कलाकारों को प्रस्तुत रहना चाहिए।

—सूर्यनारायण व्यास—

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल

विषय-सूची

१. नवजागरण (कविता) १०९
[श्री सोहनलाल द्विवेदी, एम.ए. एलएल. बी.]

२. रचनात्मक सुझाव ११०
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]

३. प्रेमचन्द [श्री मैथिलीशरण गुप्त] ११३

४. मुक्ति-मार्ग ११५
[श्री रणजीतकुमार सील]

५. हिन्दी के कवि इधर ११७
[श्री सोहनलाल द्विवेदी, एम.ए. एलएल.बी.]

६. राष्ट्रभाषा की ठोस सेवा ११९
[श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम. ए.]

७. साहित्य की उपयोगिता १२१
[श्री हरिश्चन्द्र 'विशारद']

८. गुरुदेव के दर्शन १२३
[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]

९. नये मसविदे पर मेरी व्याख्या १२५
[श्री जैनेन्द्रकुमार]

१०. प्रस्तुत प्रश्न १२९
अश्लीलता को मिटाने के लिए व्यावहारिक सुझाव [श्रीअवधकिशोर शरण]; निजी पुस्तकालय का आकार [श्री कुँवर किशोर सेठ, बी. ए. एलएल. बी.] नये रोग से सावधान [श्री धूमकेतु; अनु०—श्रीप्रेमांशु]

११. कसौटी पर १३३
भारत के समाज और इतिहास पर स्फुट विचार; नटी की पूजा; म्यूसिपल शासन; बिहार के दर्शनीय स्थान; लगन; 'भूगोल' का आसाम-अंक; सहयोगियों के विशेषांक

१२. जीवन-समस्याएँ १३७

१३. प्रगति की ओर १३८

१४. हिन्दी की हलचलें १३९

१५. सहयोगियों में से १४०

१६. क्या और कैसे ? १४२
सम्मेलन के सामने कार्य; म. भा. साहित्य सम्मेलन; समिति का कर्तव्य; हिन्दू-महासभा का क्षेत्र; हार मानने को तैयार हैं ?; उचित आपत्ति

१७. हिंदी सर्वमान्य राष्ट्रभाषा कैसे बनेगी ? १४५
[श्री डॉ० राजेन्द्रप्रसाद]

१८. 'मण्डल' की ओर से १४८

आप बेकार क्यों बैठे हैं ?

हमारे काम में हाथ बटाइए न !

उसका अर्थ स्वतः सेवाकार्य भी हो जायगा

हमारी विशुद्ध ओषधियाँ, रस, भस्म, आसव, अरिष्ट सुगन्धित तैल और पापड़ इत्यादि बेचकर आप रुपये कमा सकते हैं और हमारे द्वारा अनाथों और पीड़ितों के सेवा-कार्य में भी इस प्रकार आप सहायक हो सकते हैं।

तुरन्त पत्र-व्यवहार कीजिए

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी ३९१ अपर चितपुर रोड कलकत्ता

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग के प्रकाशन

[सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली के संचालकत्व में]

१) देकर स्थायी ग्राहक बनने पर सब पुस्तकें पौने मूल्य में। जो सज्जन 'मण्डल' के ग्राहक हैं वे इसके ग्राहक समझ लिये जावेंगे और 'मण्डल' तथा हिन्दी मन्दिर-की पुस्तकें पौने मूल्य में प्राप्त कर सकेंगे। 'जीवन-साहित्य' के १।।) वाले ग्राहकों को एक वर्ष तक ये पुस्तकें पौने मूल्य मे मिलेंगी। हिन्दी-मन्दिर की ये पुस्तकें 'मण्डल' की सब शाखाओं पर इन्ही नियमों के अनुसार मिला करेंगी—

साहित्यिक

१. कविता-कौमुदी पहला भाग ३)
२. कविता-कौमुदी दूसरा भाग ४।।)
३. ,, ,, चौथा भाग-उर्दू ३)
४. ,, ,, सातवाँ भाग-बँगला ३)
५. तुलसीदास और उनकी कविता भाग १ : २)
६. ,, ,, ,, ,, २ : २।।)
७. सुदामा-चरित, सटीक ।)
८. पार्वती-मंगल ,, ।)
९. अयोध्या कांड ,, १)
१०. हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास ।=)
११. सुकवि-कौमुदी ।।।)
१२. नीति के श्लोक, अर्थ सहित ।।)
१३. मारवाड़ के मनोहर गीत ।)
१४. उर्दू ज़बान का संक्षिप्त इतिहास ।-)
१५. समाज और साहित्य (निबंध) (दो भाग) : आनन्दकुमार १।।)
१६. शिवा-बावनी : रामनरेश त्रिपाठी ।)
१७. स्वप्नों के चित्र ।।।)
१८. हिन्दी-कविता का विकास (आलोचना) आनन्दकुमार

कविता

१९. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी ।।)
२०. मिलन ,, ।-)
२१. स्वप्न ,, ।।)
२२. मानसी ,, ।।)
२३. पुष्पवाण : आनन्दकुमार ।।)
२४. सारिका ,, ।।)
२५. रत्ना : कुँ० सोमेश्वरसिंह ।-)
२६. दृगजल ,, ।-)
२७. हिमानी : शांतिप्रिय द्विवेदी ।।)

नाटक

२८. प्रेमलोक : रामनरेश त्रिपाठी ।।।)
२९. जयंत ,, ।।।)
३०. बफाती चाचा (हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए) ।।)
३१. कौन जागता है ? ।।)

कहानियाँ

३२. तरकस : रामनरेश त्रिपाठी ।-)
३३. वीथिका : श्रीगोपाल नेवटिया ।।-)
३४. यूरोप की कहानियाँ २।।)
३५. बीस कहानियाँ : रामचंद्रटंडन २)

स्त्री शिक्षा

३६. कुल-लक्ष्मी (अनुवाद) : पुरुषोत्तमदास लोहिया ।।)
३७. दम्पति-सुहृद : भगवानदीन पाठक १-)
३८. सोहरा : रामनरेश त्रिपाठी ।)

पिंगल

३९. हिन्दी-पद्य रचना : रामनरेश त्रिपाठी ।-)

गद्य-काव्य

४०. तूणीर : देवदूत ।।)

अंग्रेज़ी

४१. Hindi folk Songs : A. G. Shirreff १)
४२. Songs of Mirabai १)

वैद्यक

४३. घर का वैद्य : आत्रेदेवगुप्त १२)
४४. घरेलू इलाज ।)

कोष

४५. हिन्दुस्तानी कोष : रामनरेश त्रिपाठी २)
४६. पॉकेट डिक्शनरी (हिंदी-अंग्रेज़ी) १।।)

व्यायाम

४७. योग के आसन और कसरतों के चित्र : रामनरेश त्रिपाठी १।
४८. कबड्डी : मुनीश्वरप्रसाद त्रिपाठी ।)
४९. सद्गुरुरहस्य : कोशलेन्द्र प्रतापसाही २।)

५०. हिन्दुओं के व्रत और त्योहार : कुँ० कन्हैयाजू १।।)
५१. अंग्रेजी शिष्टाचार २)
५२. चिन्तामणि (भजनों का संग्रह) ।~)

किसानोपयोगी

५३. नमूने का गाँव और मिट्टी के सुखदायक घर: रामनरेश त्रिपाठी १)
५४. किसानों की कहावतें : आनन्दकुमार ।)
५५. किसानों के काम की बातें : रा० न० त्रि० ।)
५६. हमारा ग्राम-साहित्य २)

प्रहसन

५७. दिमाग़ी-ऐयाशी : रामनरेश त्रिपाठी ।।)

जीवन-चरित्र

५८. अशोक : रामनरेश त्रिपाठी ।)
५९. चन्द्रगुप्त ,, ।)
६०. महात्मा बुद्ध ,, ।)
६१. आल्हा ,, ।)
६२. हरिश्चन्द्र : काशिनाथ नारायण त्रिवेदी ।)
६३. मुसलिम सन्तों के चरित : श्रीगोपाल नेवटिया २)

रीडरें

६४-६९. हिन्दी-ज्ञानोदय, छः भाग २।~)
७०-७५. कन्या-शिक्षावाली ,, १।।~)
७६. हिन्दी प्राइमर नं० १ ~)।।
७७. ,, नं० २ ~)।।
७८. नया हिन्दी प्राइमर नं० १ ~)।।
७९. ,, नं० २ ~)।।
८०. हिन्दी पत्र-शिक्षक =)

भ्रमण

८१. काश्मीर : श्रीगोपाल नेवटिया ५)

मनोहर बाल-साहित्य

८२. बानर-संगीत, (प्रहसन) ।)
८३. पेखन : रामनरेश त्रिपाठी ।~)
८४. मौत के सुरंग की कहानी ।=)
८५. इतिहासों की कहानियाँ ।)
८६. भूतों का क़िला ।=)
८७. कहानी के कलपुर्जे ।)
८८. जवाहर ताश
८९. गुपचुप कहानियाँ भाग १ ।)
९०. ,, भाग २ ।)
९१. बताओ तो जानें (गोरखधंधा) ।)
९२. बाल कथा कहानी १७ भाग प्रत्येक ।=)
९३. परियों की कहानियाँ भाग १ : आनंदकुमार ।=)
९४. परियों की कहानियाँ भाग २ : द्वारकाप्रसाद ।=)
९५. राक्षसों की कहानियाँ : आनन्दकुमार ।=)
९६. जादू की कहानियाँ ,, ।=)
९७. मोहन-माला (कविता) : रा० न० त्रि० ।।।)
९८. हंसू की हिम्मत रा० न० त्रि० ।=)
९९. खोजो, खोज निकालो ,, ।)
१००. मोतीचूर के लड्डू ,, ।)
१०१. गड़बड़ गुम ,, =)
१०२. बुढ़िया ! बुढ़िया ! तुझे खाऊँ ? =)
१०३. पकड़ पुछकटे को ,, =)
१०४. डंकू ,, =)
१०५. चटक-मटक की गाड़ी ,, =)
१०६. तीन सुनहले बाल ,, =)
१०७. भय बिन होय न प्रीति =)
१०८. चुड़ैल रानी ,, =)
१०९. सियार राजा और मेंढक-राजकुमार =)
११०. तीन मेमने ,, =)
१११. फूल रानी ,, =)
११२. रूपा ,, =)
११३. बेलकुमारी ,, =)
११४. आदमी की कीमत ,, =)

शरत्-साहित्य का बीसवाँ-इक्कीसवाँ भाग

शेष प्रश्न

छपकर तैयार है। यह शरत्‌बाबू के अन्तिम दो उपन्यासों में से एक है और सबसे निराला है। यह हमारे परम्परागत विचारों और धारणाओं में उथल-पुथल मचा देनेवाली और एक नये ही दृष्टिकोण से सोचने समझने के लिए मजबूर करनेवाली चीज है। बड़े-से-बड़े सुधारक और स्त्री-स्वातंत्र्य के पक्षपाती भी इसकी मुख्य नायिका कमल के विचार सुनकर आपे से बाहर हो जायँगे। पृष्ठ संख्या ३१२। मूल्य सवा रुपया।

शरत्साहित्य का तेरहवाँ-चौदहवाँ भाग 'पथ के दावेदार' जब्त हो गया है।

पाटन का प्रभुत्व

के० एम० मुंशी के उपन्यासों में से यह पहला उपन्यास दो भागों में छपकर निकल गया है। मूल्य सवा रुपया। दूसरा उपन्यास 'गुजरात का नाथ' छपाने का प्रबन्ध हो रहा है। दिसम्बर तक निकल जाने की आशा है।

राधा—सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार पं० उदयशंकर भट्ट का यह भाव-नाट्य हिन्दी में बिलकुल नये ढंग की रचना है। मू० दस आने।

कुलीनता—सेठ गोविन्ददास जी का नया ऐतिहासिक नाटक। मू० १)

दो चिड़ियाँ—श्री जैनेन्द्रकुमार जी की कहानियों का संग्रह। मू० १)

सुनीता—जैनेन्द्रजी का प्रसिद्ध उपन्यास। मूल्य सिर्फ दस आने

परख-स्पर्द्धा—जैनेन्द्रजी के दो छोटे उपन्यास। मूल्य सिर्फ दस आने

दो फूल—श्रीमती सत्यवती मलिक की सुन्दर कहानियाँ। मू० १।)

कबीर

लेखक—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी शास्त्राचार्य

सन्त कबीर के विषय में अपूर्व ग्रंथ। छप रहा है। मूल्य लगभग ढाई रुपया

नोट—कार्ड लिखकर सूचीपत्र मँगाइए।

संचालक—

हिन्दी ग्रंथरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग
के
प्रकाशन

१—**प्रेमघन-सर्वस्व (प्रथम भाग)**—ब्रजभाषा के आचार्य स्वर्गीय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का सुसम्पादित और सम्पूर्ण संग्रह । भूमिका माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन और प्रस्तावना आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी है । मूल्य ४।)

२—**वीरकाव्य संग्रह**—हिन्दी-साहित्य के वीररस के कवियों की चुनीहुई सर्वश्रेष्ठ कवितायें और उनके साहित्य की विस्तृत आलोचना । सम्पादक—श्री भागीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न और श्री उदयनारायण त्रिपाठी एम० ए० । मूल्य २)।

३—**डिंगल में वीररस**—डिंगल भाषा के आठ श्रेष्ठ वीररस के कवियों की कवितायें तथा तथा उनकी साहित्यिक कृतियों की आलोचना । सम्पादक—श्री मोतीलाल मेनारिया एम० ए० । मूल्य १।।)

४—**संक्षिप्त हिन्दी-साहित्य**—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त और आलोचनात्मक इतिहास प्राचीन काल से आधुनिक काल तक की हिन्दी-साहित्य की समस्त धाराओं तथा प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालतेहुए विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है । लेखक—पंडित ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' । मूल्य ।।।)

५—**चित्ररेखा**—हिन्दी के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि प्रोफेसर रामकुमार वर्मा एम० ए० की कविताओं का अपूर्व संग्रह । लेखक को इसी पुस्तक पर देवपुरस्कार प्राप्त हुआ है । मूल्य १।)।

आधुनिक कवि—(१) प्रतिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० की लिखीहुई अब तक की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संग्रह । यह संग्रह स्वयं कवयित्री ने किया है और पुस्तक के प्रारम्भ में अपनी कविताओं की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है । मूल्य १।)

बाल-साहित्य-माला
१. **वीरशतमन्यु** (कविता) मूल्य ।)
२. **छत्रपति शिवाजी** (जीवनी) मूल्य ।)
३. **बालभारती** (कविता) ठाकुर श्रीनाथसिंहजी की बालोपयोगी सर्वश्रेष्ठ कवितायें । मूल्य ।-)
४. **बालकथा** (कहानी) सौभाग्यवती श्रीमती कमलाबाई किबे मूल्य ।=)
५. **बालकविलावली** (कविता) मूल्य ।)

'सम्मेलन-पत्रिका'

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग की यह मुखपत्रिका है, इसमें प्रतिमास पठनीय साहित्यिक लेख प्रकाशित होते हैं । हिन्दी के प्रचार और प्रसार पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है । सम्मेलन की प्रगति का परिचय प्रतिमास मिलता रहता है । इसके सम्पादक साहित्य-मन्त्री श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल' हैं । वार्षिक मूल्य केवल १) ।

पता— **साहित्य-मन्त्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग ।**

कमज़ोर, भद्दे कागज़ों के पेकिंग से होनेवाली

अपने व्यवसाय की हानि को बचाइए

हमारा मज़बूत, चीमड़ व सुन्दर

गैंडा मार्का

बैम्बू पल्प का बना हुआ क्राफ्ट पेपर

आपकी कठिनाइयों को हल करदेगा

यह उच्चकोटि का
पेकिंग कागज़ है

भारतीय बाजार में आज
इसका सानी नहीं

एक बार इस कागज़ का व्यवहार करलेने पर
आप दूसरे पेकिंग कागज़ का नाम न लेंगे

अपना आर्डर तुरन्त भेजिए

ओरियण्ट पेपर मिल्स लिमिटेड
८, रायल ऐक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

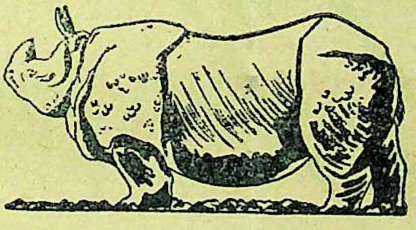

केवल १५ सितम्बर से ३१ अक्टूबर तक

❀ नये ग्राहकों को नयी सुविधा ❀

परीक्षांक — सम्मेलन की 'विशारद' और 'रत्न' परीक्षा, यू० पी० की 'विशेष योग्यता' पंजाब की 'प्रभाकर,' 'भूषण' आदि और दक्षिण की 'राष्ट्रभाषा विशारद,' सूरत की 'कोविद' और बिहार की 'साहित्यालंकार' परीक्षाओं को दृष्टि में रखकर निकाला गया है।

— एवं —

हिन्दी लेकर जो विद्यार्थी इंटर, बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाओं में प्रविष्ट हो रहे हैं, उन्हें यह अंक विशेष रूप से सहायता देगा।

प

री

क्षां

क

देखिए

परीक्षांक के

कुछ निबंध

चन्द और पृथ्वीराज रासो
विद्यापति का हि० सा० में स्थान
कबीर और सृष्टि-विज्ञान
जायसी का प्रेम काव्य
सूर का वियोग-शृंगार
केशव की काव्य-कला
सेनापति का कवित्त-रत्नाकर
कामायनी
साकेत पर एक दृष्टि
सेवा-सदन
गोदान
रस और दोष

मुफ्त मिलेगा

'साहित्य-सन्देश' हिन्दी का एकमात्र समालोचनात्मक पत्र है, जिसमें हिन्दी-साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियों, विभिन्न वादों और समस्याओं पर प्रति मास नियमित लेख छपते हैं। हिन्दी-साहित्य में उसके लेखकों और उनके ग्रंथों पर आलोचनात्मक प्रकाश डालनेवाला यही सर्वप्रथम मासिक है।

वार्षिक मूल्य ३) साधारण अंक का नमूना मुफ्त मँगाइए **विद्यार्थियों से २) साल**

पत्र-व्यवहार का पता—**साहित्य सन्देश कार्यालय, आगरा।**

आपको

रुपया चाहिए

और हमको

आपका समय चाहिए

रुपये तथा समय की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि रुपया तो वापस भी मिल सकता है, परन्तु बीता समय फिर कभी हाथ नहीं आ सकता।

प्रति दिन नियमित रूप से आप केवल २ घण्टे का समय देकर

न्यू एशियाटिक

की जीवन-बीमा पालिसी

बेचकर हजारों रुपये कमा सकते हैं

आप प्रगतिशील कम्पनी के साथ प्रगतिशील बनें

जिसने—

१९३४ ई० में	१५,३८,५००	रु०
१९३५ ई० में	२५,०१,०००	,,
१९३६ ई० में	३०,६६,७५०	,,
१९३७ ई० में	३५,५९,५००	,,
१९३८ ई० में	४१,७४,७५०	,,
१९३९ ई० में	५०,११,७६८	,,
१९४० ई० में	६०,१३,२५०	,,

के बीमे किये हैं

आज ही पत्र भेजकर विवरण मँगाकर देखें

न्यू एशियाटिक लाइफ़ इन्शुरेन्स कम्पनी लिमिटेड

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली

शाखायें—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपूर, हैदराबाद (दक्षिण), अर्नाकुलम (कोचीन), लाहौर तथा पटना।

हाहाकार-भरी गृहस्थियों को सुखमय बनानेवाली

'भाई के पत्र' के लेखक श्री रामनाथ 'सुमन' की दो नयी पुस्तकें

१. आनन्द-निकेतन

२५ अध्याय और ३०० पृष्ठ

गृहस्थ-जीवन का पथ-प्रदर्शन करनेवाली श्रेष्ठ पुस्तक। प्रत्येक युवक, कुमारी और स्त्री के लिए माता-सी हितकारी। उपन्यास-सी मनोरंजक पर अमृत-सी कल्याणकारी। जिन लोगों ने 'सुमन' जी की पुस्तक 'भाई के पत्र' पढ़ी है वे जानते हैं कि उनकी रचनाओं में जीवन को बल और प्रकाश देने की कैसी शक्ति है। जो लोग विवाह करना चाहते हैं, करने जा रहे हैं या कर चुके हैं उन सबको एक बार इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। कितने ही सज्जन इस पुस्तक की प्रतियाँ बँटवाने के लिए खरीद रहे हैं। लगभग साढ़े तीन सौ पृष्ठ, सुन्दर कागज़ और छपाई मनोरम रंगीन कवर, मूल्य केवल २)

२. घर की रानी

[श्रीरामनाथ 'सुमन']

कुमारियों और विवाहिता स्त्रियों के जीवन को सफल और सुखी बनाने के व्यावहारिक उपाय बतानेवाली अत्यन्त मनोरंजक पुस्तक। पत्रों के रूप में छपी हुई है। प्रत्येक कन्या, स्त्री के हाथ में देने योग्य है। इस पुस्तक की लगभग १००० प्रतियाँ छपने के २० दिन के अन्दर बिक गयी हैं। मूल्य केवल १)

३. भक्त-तरंगिणी

इसमें प्राचीन काल से लेकर आजतक के १०० एक सौ कवियों की भक्ति-भावपूर्ण श्रेष्ठ कविताओं का संग्रह किया गया है। इसके संग्रहकर्ता अनेक पुस्तकों के लेखक, 'भारत' के भूतपूर्व प्रधान सम्पादक और अंग्रेजी के विख्यात दैनिक 'लीडर' के सहकारी सम्पादक श्री केशवदेव शर्मा हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमें एक भी कविता ऐसी नहीं है जिसमें सुरुचि का अभाव वा अश्लीलता या गन्दी शृंगारिकता की गन्ध हो। स्कूलों-कालेजों में पढ़ायी जाने योग्य। मूल्य १)

४. अहंवादी की आत्मकथा

रूस के प्रसिद्ध उपन्यासकार के एक प्रसिद्ध उपन्यास का हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ उपन्यास और कहानी-लेखक श्री इलाचन्द्र जोशी द्वारा किया अनुवाद। संघर्ष में पड़े व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व की सुन्दर कहानी। उच्चकोटि का मनोवैज्ञानिक उपन्यास। मूल्य १)

साधना-सदन ६९, लूकरगंज, इलाहाबाद

नोट—ये पुस्तकें 'मण्डल' की सब शाखाओं पर भी मिलेंगी।

जीवन-साहित्य

असतो मा सद्‌गमय ; तमसो मा ज्योतिर्गमय ; मृत्योर्माऽमृतंगमय ।

दूसरा वर्ष
चौथा अंक

सम्पादक
हरिभाऊ उपाध्याय

नवम्बर, १९४१
नई दिल्ली

नव-जागरण

आज सोये प्राण जागे ! आज भूले गान जागे !
जागरण का प्रात आया,
स्फूर्ति नव उत्साह छाया,
आज सदियों में अभय के, विजय के अभियान जागे !
सज चली अक्षौहिणी है,
बज चली रण-किंकिणी है,
कोटि-कोटि चरण-धरण से युगों के प्रस्थान जागे !
हटा अवगुंठन मुखों का,
मोह-सम्मोहन सुखों का,
बढ़ीं कन्याएँ, बहन, माँ, मधुर-मङ्गल गान जागे !
है हिमाचल आज उन्नत
देख निज गौरव समुन्नत;
आज जन में, जनपदों में, उरों में उत्थान जागे !
नीलसिंधु गरज रहा है,
बार-बार बरज रहा है,
सावधान ! दिगंत दिग्गज, राष्ट्र के अभिमान जागे !
बेड़ियाँ हैं झनझनाती,
हथकड़ी हैं खनखनाती,
आज बंदी के स्वरों में क्रान्ति के आह्वान जागे !
आज मृत-हत जाति में नवजन्म के बलिदान जागे !

सोहनलाल द्विवेदी

रचनात्मक सुझाव

'लेखक बनाम प्रकाशक' की चर्चा ने एक ओर जहाँ अप्रिय विवाद का रूप धारण कर लिया तहाँ कुछ मित्रों ने बहुत उपयोगी व रचनात्मक सुझाव भी भेजे हैं। 'जी० सा०' में चर्चा 'विवाद' के लिए नहीं 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' की शुभ भावना से, इसका अच्छा व सही हल ढूँढने के इरादे से शुरू की गयी थी। यह दुःख की बात है कि हम अलिप्त भाव से उचित सीमा मे किसी विषय पर सांगोपांग चर्चा करने में सफल नहीं होते, व्यक्तिगत व संस्थागत राग-द्वेषों या पूर्व-संस्कारों से प्रभावित हो जाते हैं। ऐसी हालत में एक प्रौढ़ मित्र सूचित करते हैं—"जी० सा० में आपने लेखकों व प्रकाशकों और साहित्यकारों आदि का विवाद छेड़ा है उसको मैं निरन्तर व रुचि-पूर्वक पढ़ता आ रहा हूँ। आपकी सब स्थापनाओं से सर्वांश में सहमत न होते हुए भी मेरा खयाल है कि अब यह विवाद एक पक्ष की ओर से औचित्य का उल्लंघन कर गया है। इसी प्रसंग में म० गाँधी व गाँधीवाद को भी किसी-किसी आलोचक ने अप्रासंगिक तथा अशिष्ट रूप में घर घसीटा है। अतः मेरा अनुरोध है कि यह विवाद अब आप बन्द करदें तो अच्छा।" यदि मेरे किसी विचार या प्रणाली में कोई बुराई किसी को दीख पड़े तो उसके लिए गांधीजी या गाँधीवाद पर प्रहार करना अन्याय की हद तक पहुँच जाना है; परन्तु इस पहलू को यहीं छोड़कर मैं उन सुझावों को यहाँ रख देना ठीक समझता हूँ जो कुछ मित्रों ने रचनात्मक ढँग से सोचकर भेजे हैं।

वर्धा से श्री ललिताप्रसाद श्रीवास्तव ने 'हिन्दी पुस्तक पब्लिशिंग एजेन्सी' की योजना भेजी है जिसका उद्देश 'प्रकाशकों और लेखकों के बीच रहकर उनके हितों की रक्षा करना' होगा। वह दोनों (लेखकों और प्रकाशकों) में मध्यस्थ का काम करेगी। पुस्तक लेने या प्रकाशित करने के पहले वह लेखक से रायल्टी अथवा कापीराइट के सम्बन्ध में सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त कर लेगी। फिर प्रकाशक से कम या अधिक पारिश्रमिक तय करना लेखक की राय पर होगा। पर लेखक को भी अपनी अर्थलिप्सा की एक सीमा बना लेनी होगी। लेखक की राय में 'अच्छा हो कि उक्त एजेन्सी एक लिमिटेड फ़र्म हो। इसकी शाखाएँ हिन्दुस्तान के हर प्रान्त में रह सकें। एजेन्सी की कार्यकारिणी प्रायः लेखक, प्रकाशक और कुछ प्रतिष्ठित लोगों द्वारा बनायी जाय। आवश्यकतानुसार एजेन्सी कहीं-कहीं सभी प्रकाशकों की लभ्य पुस्तकों की एक स्टाल खास-खास जगहों में खोले।'

श्री भानुकुमार जैन ने बम्बई से 'सत्साहित्य-प्रसारक संस्था' की एक योजना बनायी है। उसका सार यहाँ दे रहा हूँ। उसका उद्देश हो—सत् व पठनीय साहित्य को प्रोत्साहित व प्रमाणित करना।' जीवन-सम्बन्धी प्रत्येक विषय की पुस्तक उसके अवलोकन-क्षेत्र में रहे। जैसे चरखा-संघ शुद्ध खादी की उत्पत्ति व प्रचार करता है तथा शुद्ध खादी के लिए प्रमाण-पत्र देकर अशुद्ध खादी की रोक करता है उसी तरह यह संस्था सत्साहित्य व गन्दे विज्ञापनों की रोक का काम करे। इसके लिए क़ानून, सरकार, कांग्रेस, जनता सबकी मदद ले। चर्खा-संघ की तरह यह कांग्रेस से स्वतन्त्र रहकर भी उसका अखण्ड अंग मानी जाय। उसके कार्यकारी-मण्डल में कम-से-कम नीचे लिखे व्यक्ति अवश्य हों—

महात्मा गाँधी, श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री किशोरलाल मश्रुवाला, श्री राजेन्द्र बाबू,
श्री जमनालाल बजाज, श्री काका कालेलकर, श्री राजगोपालाचार्य, श्री कन्हैयालाल मुन्शी,
श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन या श्री सम्पूर्णानन्द, श्री क्षितिमोहन सेन, श्री जैनेन्द्रकुमार,
श्री रामानन्द चटर्जी, श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री हरिभाऊ या मार्तण्ड उपाध्याय,
श्री श्रीराम शर्मा या श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री झवेरचन्द मेघाणी, श्री प्रभाकर माचवे।

संस्था यह भी प्रयास करे कि साहित्य-जगत् का शोषण बन्द हो। वह लेखक, अनुवादक,

प्रकाशक, विक्रेता और ग्राहक सबके हिस्से व सबके हित का बराबर ख़याल रखे। ऐसी संस्था बनाने में 'सस्ता साहित्य मण्डल' अगुआ हो।

'लेखकम्मन्य' के नाम से एक विचारशील लेखक मित्र ने भी एक लम्बा लेख लिखकर भेजा है, जिसमें वे लिखते हैं—

"मेरी राय में लेखकों का शोषण रोका नहीं जा सकता, कुछ कम अवश्य किया जा सकता है, आप प्रकाशकों पर अंकुश नहीं लगा सकते। लोगों की रुचि बदलने की कोशिश कीजिए। मिल-मालिकों के मुकाबिले में गाँधीजी जिस ढंग से खादी का प्रचार कर रहे हैं उसी तरह आप भी सत्साहित्य के प्रचार का बीड़ा उठा लीजिए व समालोचना के दुधारे शस्त्र द्वारा जहाँ अच्छे उत्कृष्ट साहित्य की ओर रुचि पैदा करें वहाँ निकृष्ट साहित्य का विरोध भी करें। समालोचक निर्भय व पक्षपातहीन हो, किसी प्रकाशक से न दबनेवाले, स्वार्थ-मोह से रहित। खादी-प्रचार में जैसे आप कोई कसर नहीं रखते हैं वैसे ही सत्साहित्य के प्रचार का भी प्रयत्न कीजिए। धीरे-धीरे जनता की रुचि बदलेगी, वह अच्छा साहित्य खरीदेगी और प्रकाशकों का ध्यान खिंचेगा। प्रकाशक लेखकों को उचित मूल्य देने को बाध्य होंगे।

"प्रकाशक से मित्रता रखकर भी लेखक कमा सकता है, पर यह मार्ग बहुत प्रशंसनीय नहीं—फिर भी दुनिया में चलता है। आपके हज़ारों उपदेश भी व्यवहार-कुशल प्रकाशक व लेखक को उससे नहीं रोक सकते।

"लेखकों ने संगठन का एक नारा लगाया है। विचार बहुत अच्छा व ऊँचा है। लेकिन क्या मेंढकों को इकट्ठा करना आसान है? जहाँ सभी नेता व विचारक हों वहाँ संगठन असम्भव है।

"यह न भूलिए कि प्रकाशक एक व्यापारी दुकानदार है। सेवा का अर्थ सिर्फ यही है कि वह दूध बेचकर पैसा कमाता है शराब बेंचकर नहीं। लेखक हो या प्रकाशक पैसा कमाना बुरा नहीं है। ऐसी चीज़ न दें जिससे जनता के चरित्र का विनाश हो, वह मार्गभ्रष्ट हो।"

सच बात तो यही है, जैसा कि एक उच्चकोटि के विचारक व साधुमना लेखक ने लिखा है—'लेखक-प्रकाशक के इकरारनामे पर कितनी चर्चा हुई! लेखन-प्रकाशन कार्य को सेवा नहीं बल्कि धंधा बनाया गया है। तभी ये सवाल खड़े हो रहे हैं।' लेकिन जबतक वह धंधा है तबतक उसकी कठिनाइयों को भी हल करना ही होगा। इस दृष्टि से इन विचारों व सुझावों को पाठकों के सामने रखकर मैं संक्षेप में इस प्रश्न पर अपनी राय देते हुए इस चर्चा को समाप्त करता हूँ। जो लेखक अपनी रचना का मूल्य चाहते हैं उन्हें वह मिलना चाहिए। जो लेखक स्वयं प्रकाशक नहीं बन सकते वे यदि नैतिक स्वत्व की रक्षा करनी हो तो रायल्टी की शर्त पर और अधिक पैसा चाहिए तो 'कापीराइट' की शर्त पर अपनी रचना प्रकाशक को दें। पारिश्रमिक की नाप का कोई गज़ बनना बड़ा कठिन हो रहा है। प्रकाशक की मनोवृत्ति, बाज़ार की हालत, लेखक का श्रम, रचना की योग्यता आदि बातों पर यह अवलम्बित है।

लेखक व प्रकाशक दोनों परस्पर पूरक हैं। प्रकाशक जब धनसंग्रह करने लगता है तो या तो वह लेखक के परिश्रम से या पाठकों की परिस्थिति से बेजा फ़ायदा उठाता है। लेखक सेवा-भावी प्रकाशकों से अपना सम्बन्ध रक्खें, जहाँ उन्हें न चोरी का डर हो न अन्याय या शोषण का।

इसके साथ ही ग़रीब, निराश्रित और नवीन लेखकों की सहायता और प्रोत्साहन का भी कोई जरिया होना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक प्रकाशक अपने यहाँ एक सहायक निधि रक्खे। पुस्तक की लागत में इसके लिए एक अंश जोड़कर वह रक़म इस निधि में जमा की जाये। इसमें से ऐसे

लेखकों को समय-समय पर सहायता दी जाये । खुशहाल लेखक अपने पुरस्कार की रक़म इस निधि में शामिल कर सकते हैं ।

इसके साथ ही इक़रारनामे का वह मसविदा भी यहाँ छाप दिया जाता है जिसे भाई जैनेन्द्रजी ने तैयार किया है और मुझे तो ठीक जँचता है । इसपर अपने सुझाव भेजने की कृपा करें । ह० उ०

लेखक और प्रकाशक के बीच इक़रारनामे का मसविदा

श्री..................................नामक पुस्तक के लेखक / अनुवादक / संग्राहक / सम्पादक हैं और श्री.. उसे प्रकाशित करना चाहते हैं इसलिए दोनों के बीच तय पाया कि—

१—प्रकाशक उस पुस्तक को आज..............से..........महीने के भीतर छापकर उसके विक्रय और प्रचार का जिम्मा लेते हैं ।

२—प्रकाशक पुस्तक की............प्रतियाँ छापेंगे ।

३—कुल छपी प्रतियों पर १० प्रतिशत तक भेंट आदि में दी जासकती हैं । उनमें से २५ प्रतियाँ प्रति हज़ार लेखक को मिलेंगी । भेंट आदि में जो प्रतियाँ भेजी जायेंगी, प्रकाशक उसकी सूचना लेखक को देते रहेंगे ।

४ (अ) इस तरह सौ प्रतियाँ प्रति हज़ार को छोड़कर शेष पर विक्रय मूल्य का......प्रतिशत रॉयल्टी के रूप में प्रकाशक लेखक को देंगे । या

(आ) पुस्तक पर प्रति पृष्ठ के हिसाब से पारिश्रमिक प्रथम संस्करण के लिए प्रकाशक लेखक को देंगे ।

५—अनुमानित रॉयल्टी / पारिश्रमिक का एक चौथाई पाण्डुलिपि के स्वीकार पर लेखक को मिलेगा । उतनी ही / शेष रकम लेखक की सुविधानुसार पुस्तक के छपने के साथ या उसके अनन्तर लेखक को मिल सकेगी ।

६—रॉयल्टी की रकम का हिसाब हर छमाही / वर्ष प्रकाशक लेखक को भेजेंगे । प्रकाशक की हिसाब-बही इस सम्बन्ध में लेखक के लिए खुली रहेगी ।

७—पुस्तक का एक संस्करण समाप्त होने पर एक वर्ष के अन्दर प्रकाशक उसका दूसरा संस्करण करालेंगे । अगर प्रकाशक को खास वजहों से समय बढ़ाना हो तो लेखककी रजामन्दी से समय बढ़ाया जा सकता है । इस अवधि तक भी अगर पुस्तक न छपी तो तीन महीने का नोटिस देकर लेखक दूसरी जगह से उसे प्रकाशित करने में स्वतंत्र होंगे और प्रकाशक का उसपर अधिकार समाप्त समझा जायेगा ।

८—पुस्तक की छपाई, गेटअप और कीमत आदि के निर्णय में लेखक की सहमति ली जायेगी ।

९—पुस्तक में किसी प्रकार का हेर-फेर, उसका अनुवाद अथवा किसी दूसरी तरह के उसके उपयोग के लिए लेखक की अनुमति आवश्यक होगी; पर पुस्तक में अगर कुछ सम्पादन कराना प्रकाशक आवश्यक समझें तो या तो वे सुधार लेखक स्वयं कर देगा या लेखक न कर सके तो उपयुक्त व्यक्ति से लेखक को सूचित करके प्रकाशक करा लेगा । ऐसी हालत में सम्पादन का खर्च लेखक के जिम्मे होगा ।

१०—लेखक श्री...........प्रमाणित करते हैं कि पुस्तक में जहाँ-तहाँ जो कुछ बाहर से सहायता लीगयी है, या उद्धरण आये हैं उनको यथाविधि स्वीकार किया गया है और इस सम्बन्ध में प्रकाशक को अँधेरे में नहीं रखा गया है ।

११—प्रकाशक श्री……………… प्रमाणित करते हैं कि प्रकाशन-सम्बन्धी प्रकाशक की ओर से क़ानूनी स्थिति का सब दायित्व उनपर है।

१२—इन शर्तों के भंग पर दूसरा पक्ष उसकी लिखित सूचना प्रतिपक्ष को देगा। उस सूचना की पहुँच के ३० दिन के भीतर उत्तर न आने पर इकरारनामा रद्द समझा जायेगा।

१३—आपस में मतभेद होने पर दोनों पक्ष अपने-अपने पंच चुनेंगे जो अपनी सम्मिलित सम्मति से, यदि आवश्यक हो तो किन्ही तीसरे व्यक्ति को साथ मिलाकर निर्णय देंगे। यह निर्णय दोनों पक्षों को मान्य होगा।

प्रेमचन्द

[मैथिलीशरण गुप्त]

[राजबंदी राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने यह भाषण सेंट्रल जेल आगरा में साहित्यिक राजबंदियों द्वारा मनाये गये "प्रेमचन्द-जयन्ती"- समारोह के सभापति-पद से दिया था, जो हमें श्री जैनेन्द्रकुमार-द्वारा प्राप्त हुआ है। यह हिन्दी के सबसे बड़े कवि की अपने समय के सबसे बडे कथाकार के प्रति संस्मरणात्मक श्रद्धाञ्जलि है। —सम्पादक]

प्रेमचन्दजी के जन्म-दिवस पर अपने साथी राजबंदियों के साथ में हार्दिक सम्मान और श्रद्धा प्रकट करता हूँ।

प्रेमचन्दजी की रचनाओं के पात्र अधिकतर हमारे ही बीच के प्राणी हैं। उनकी सुन्दर कल्पना ने कुछ ऐसी चतुराई से हम लोगों को दिखाया है कि स्वयं हम अपने आपको नया-सा अनुभव करते हैं। 'कायाकल्प' को अपवाद मानें तो उनकी कला ने आकाश के फूल तोड़ने की चेष्टा न करके हमारी ही भूमि पर अपने राग-रंग दिखाये हैं।

अपने भविष्य की अणुमात्र चिन्ता न करके उन्होंने हमारे वर्तमान का ही ध्यान रक्खा है। यही कारण है कि वे सर्वथा हमारे हैं।

जहाँ तक मैं जानता हूँ, बंगला से वे प्रभावित न थे, जब उन्होंने अपनी रचनाओं का आरम्भ किया। उर्दू की 'आज़ाद कथा' उन्हें बहुत प्रिय थी परन्तु एक नवीनता लेकर ही वे साहित्य-संसार में आये। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि हिन्दी के कथाकारों पर उन्होंने अपना प्रभाव डाला है।

प्रेमचन्दजी के हम चिरऋणी हैं।

वे कठिनाइयों से जूझते रहे और एक तपस्वी की भाँति अपनी साधना में रत रहकर उन्होंने हमारे सम्मुख एक आदर्श उपस्थित किया। सन्तोष की बात है, उनके सुयोग्य पुत्र ने उनके 'हंस' को मोती चुगाने की क्षमता प्राप्त की है। परन्तु उसके प्रति इससे हमारा कर्त्तव्य पूरा नहीं होता।

यदि प्रत्येक कलाकार यह चाहता है कि उसकी रचनाएँ अधिक-से-अधिक प्रचार प्राप्त करें तो प्रेमचन्दजी ने अपनी कला के द्वारा जो प्रचार-कार्य किया है उसके लिए हमें उनका कृतज्ञ ही होना चाहिए।

इस प्रचार में उन्होंने हिन्दू-मुसलमान का भेद-भाव नहीं रक्खा। मुझे उनकी एक कहानी याद आ रही है जिसमें एक ग़रीब मुसलमान बालक का सुन्दर वर्णन है। वह ईद के मेले में अपनी दो-चार पैसे की पूँजी लेकर गया था। अनेक प्रलोभन उसके सामने थे। भाँति-भाँति की मिठाइयाँ, भाँति-भाँति के खिलौने और भाँति-भाँति की अनेक दूसरी वस्तुएँ। परन्तु उसने सौदा किया एक लोहे के छोटे से चिमटे का। उसकी बूढ़ी माँ या दादी उसके लिए रोटी सेकते समय अँगुलियाँ झुलसने से बहुधा विकल हो उठती थी। उसी विकलता ने बच्चे के मन

में एक द्वन्द्व उत्पन्न कर दिया। अन्त में उसने अपनी सब लालसाओं का दमन करके वृद्धा का दुःख दूर करने में अपनी सारी सम्पदा निछावर करदी।

परन्तु फिर भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि बंकिमचन्द्र अथवा शरच्चन्द्र के समान उनमें अपनी संस्कृति के निदर्शन नहीं मिलते।

विद्वानों की राय है, उपन्यासों की अपेक्षा कहानियाँ लिखने में वे अधिक सफल हुए हैं। मुझे जान पड़ता है, उनकी परिस्थितियाँ भी उनको मिली सफलता में बाधा पहुँचाती रहीं।

जो हो, उनके आख्यानों में यत्र-तत्र ऐसे सुन्दर वाक्य दिखाई पड़ते हैं जैसे जलाशयों में झलझलाते हुए तारे!

एक बार मैं उनके यहाँ बैठा था। श्रीचन्द्रभालजी जौहरी भी उस समय उपस्थित थे। बातों-बातों में मैंने कहा—प्रेमचन्दजी, मैं नहीं जानता आपकी भाषा में एक-आध प्रयोग मुझे क्यों नहीं रुचता। जैसे—अमुक की बाछें खिल गयीं। सुनकर मुस्कराये। चन्द्रभालजी ने मुझसे पूछा—आप इसके स्थान पर क्या लिखना पसन्द करेंगे? मैंने कहा—यह तो मैंने नहीं सोचा, परन्तु इसे न लिखकर 'अमुक पुलक उठे' अथवा 'पुलकित हो उठे' भले ही मैं लिख दूँगा। प्रेमचन्दजी ने कहा, मैं ऐसा न करूँगा।

प्रेमचन्दजी उर्दू से हिन्दी में आये थे और अन्त तक उनकी हिन्दी संशोधन की अपेक्षा करती रही।

मुझे उनका अनुग्रह प्राप्त था और इसे मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ।

एक बार एक कहानी को लेकर स्वर्गीय शालग्राम शास्त्री से उनका झगड़ा होगया था और अरजी-अदालत की नौबत आगयी थी। उसें शान्त कराने में मैंने कुछ भाग लिया था और मुझे सन्तोष है, मेरा प्रयत्न अन्त में सफल हुआ था।

आलोचकों ने उनकी कड़ी आलोचनाएँ भी कीं, परन्तु उनमें अपना एक विश्वास था और उसके बल पर वे अपने विरोधियों से दबे नहीं।

उस बार 'हिन्दुस्तानी एकेडमी' की बैठक में सम्मिलित होने के लिए मैं प्रयाग गया था। एक दिन सवेरे प्रेमचन्दजी मेरे ठहरने के स्थान पर आगये। हम लोगों ने साथ ही भोजन किया। फिर कुछ इष्ट मित्रों से मिलने के लिए हम दोनों साथ ही चले। एक स्थान पर उनके एक विरोधी लेखक से भी भेंट होगयी और बातों-बातों में आलोचना-प्रत्यालोचना की चर्चा भी चल गयी, दोनों पक्ष अपनी-अपनी कहते रहे। प्रेमचन्दजी अपनी बात पर सर्वथा अटल रहे। अन्त में उक्त सज्जन ने कहा—प्रेमचन्दजी, मैं आपको कलाकार मानता था। परन्तु जबसे आपने मुझे गुण्डा माना तब से मैं आपको कलाकार नहीं मानता। सहसा हँसकर मैं बीच में बोल उठा-- सत्य तो कला से भी बड़ा है। बात यह थी कि वे सज्जन भी मुझपर स्नेह रखते थे। इसीसे मुझसे ऐसी ढिठाई होगयी और हँसी में वह विवाद उड़ गया।

उनके अन्तिम दिनों में भी दो-एक बार मैं उनसे मिलने गया था। उनकी दशा चिन्तनीय थी। वे स्वयं भी जीवन से निराश हो चुके थे। परन्तु उस समय भी उनकी गृहिणी श्री शिवरानी देवी का धैर्य, साहस और उनकी सेवा देखकर मैं जैसे अभिभूत हो उठा था।

एक बार मेरे शोक के दिनों में सान्त्वना देते हुए उन्होंने मुझे एक पत्र लिखा था। उसे उनके सहानुभूतिपूर्ण हृदय का निदर्शन समझकर मैंने रख छोड़ा था। सम्भव हो वह अब भी कहीं सुरक्षित रक्खा हो।

अपने क्षेत्र में वे आरम्भ से अन्त तक अग्रवर्त्ती ही रहे।

मुक्ति-मार्ग

[रणजीतकुमार सील]

मानव सभ्यता की इमारत ख़ून की बाढ़ में बही जा रही है । इस सभ्यता को घड़ने में कितने ही युगों से कितने ही साधकों को दिल और दिमाग़ की शक्ति ख़र्च करनी पड़ी थी । ब्रिटिश म्यूज़ियम जैसी एक संस्था का संगठन करना आसान बात नहीं । सिर्फ ईंट और लकड़ी ही नहीं लगती उसके साथ बहुत दिनों का इकट्ठा किया हुआ संपद भी । एक युग की साधना के सहारे दूसरा युग प्रगति की राह पर आगे बढ़ता है । आज हिटलर के दिगंतव्यापी कुरुक्षेत्र की ध्वसलीला सब कुछ धूल में मिला रही है । किस नींव पर हम लोग घड़ेंगे नया संसार ? इस ध्वंसलीला को अगर बंद न किया जाये तो सस्कृति के कंकाल पर नूतन सभ्यता की रचना होना मुश्किल है । क्या हिंसा की इस बर्बरता ने जीवन को भी कुछ कम नुक़सान पहुँचाया है ? हज़ारों परिवारों का अस्तित्व मिट चुका है, हज़ारों बच्चे मर रहे हैं, हज़ारों औरतें मर रही हैं । यह बर्बरता किसी को भी नहीं छोड़ती । इसके अभियान को बंद न कर सकने पर मनुष्य के जीवन और संस्कृति की रक्षा नहीं हो सकेगी, और हम सब हो जायेंगे जंगली ।

हिंसा की नाकामयाबी हमारी आँखों के सामने हररोज़ साबित हो रही है । लड़ाई का तो भयानक परिणाम देखा जाता है कि लड़ाई बंद हो जाने पर भी दिल के अंदर की घृणा नहीं जाती । शान्ति होती है शान्ति का एक हास्यकर स्वाँग । जिनके पति-पुत्र मर चुके हैं, घरबार उजड़ गये हैं, हाथ-पैर घायल हो गये हैं, उन लोगों की तीव्र प्रतिरोध-कामना दिल से बुझायी नहीं जा सकती । हज़ारों मनुष्यों के हृदय की इस संचित चिनगारी से नया कुरुक्षेत्र जन्म लेता है ।

लड़ने में मनुष्य की शूरता का परिचय है यह हम मानते हैं । लेकिन उस शूरता का परिचय देने का मौक़ा बहुत ही थोड़े आदमियों के नसीब में होता है । करोड़ों के जीवन में लड़ाई आती है । रोग और मृत्यु का दूत बनकर, शूरता का कोई भी परिचय देने के पहले ही वे मर जाते हैं घर में ही । हवाई जहाज चोर की तरह रात को आकर मनुष्य को बिछौने में ही मारकर फिर दिगंत के अंधकार में छिप जाता है, आजकल की लड़ाई लोगों के जीवन को शौर्य की गरिमा प्रदान नहीं करती ।

तलवार को तलवार से रोकना मुश्किल काम है । दोनों ही एक दूसरे को दानवी शक्ति से हराने की कोशिश करेंगे । जिनकी शक्ति ज्यादा है वे जीतेंगे । लेकिन जो हार गये वे मार खाकर मार हजम करेंगे किस तरह ? वे तो उस मार को व्याजसहित लौटा देने की जी-जान से कोशिश करते रहेंगे । इसी तरह इतिहास में खून की नदी बहाकर मार-पीट की कहानी चलती रहेगी । अचानक चारों दिशाओं को चमकाकर गरज उठेंगी आग बरसानेवाली तोपें, रात के अंधेरे में चीख मारेगी मार-काट की आवाज़ । निःशस्त्रीकरण की योजना के पीछे इस हत्या के नाटक को ख़त्म कर देने की इच्छा थी । लेकिन ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि लीग ऑव नेशन्स थी रवीन्द्रनाथ के भाषा में 'गुण्डों की जमात' । इस योजना को रूप दे सकता था निःस्वार्थ मन का अजेय संकल्प । अधिकारियों के मन में थी पहाड़ों की तरह ग़लतफ़हमी, शक्ति प्रियता थी आकाशस्पर्शी । कोई किसी का भरोसा नहीं करता था । ऐसी हालत में जो होना स्वाभाविक था वही हुआ । 'निःशस्त्रीकरण' शब्द सिर्फ़ एक शब्द ही रह गया । हैवलॉक एलिस के शब्दों में 'निःशस्त्रीकरण तो आत्मा में होना चाहिए, शस्त्रागार में नहीं ।

हिंसा के रहने से दुनिया में किसी दिन शांति आसकेगी, विवेकहीन कमज़ोर मस्तिष्क के सिवाय ऐसी बात पर कोई विश्वास नहीं करता ।

तो फिर इसके सिवाय और कौन-सा रास्ता है ? अहिंसा का रास्ता । कायर की अहिंसा नहीं । ऐसी अहिंसा से तो हिंसा कहीं अच्छी है । जरूरत है बलवान की अहिंसा की, जो अत्याचारी को रोकने के लिए जाकर मौत से सगाई कर ले । अत्याचारी को अगर हम स्वीकार ही नहीं करेंगे तो वे हमें गुलाम किस तरह बनाकर रखेंगे ? डराकर ? लेकिन जो डरता नहीं उसे डराने से होगा क्या ? फिर कायरता जहाँ नहीं, वहाँ अत्याचार भी नहीं टिक सकता । गांधीजी के सत्याग्रह के पीछे है यही क्रांतिकारी दर्शन (Philosophy) ।

सवाल उठ सकता है—अहिंसा से आज़ादी की रक्षा होनी असम्भव है । लेकिन क्या हिंसा से बर्बरता के आक्रमण को रोक सकते हैं ? पोलेंड, फ्रांस, बेलजियम, हालेंड, नार्वे, चेकोस्लोवाकिया, ग्रीस—ये सब देश तो हिंदुस्तान की तरह निशस्त्र नहीं थे । हिंसा की सहायता से उससे जबर्दस्त हिंसा के सामने आज़ादी को सुरक्षित रखना आजकल के दिनों में सम्भव नहीं है । पोलेंड, फ्रांस और ग्रीस आदि देशों में शस्त्रास्त्रों की कोई कमी नहीं थी । तब भी वे जर्मनी के आक्रमण को रोक नहीं सके । हम लोग अपने से महान् शक्ति को हटायेंगे कौन-सी शक्ति लेकर ? चाकू और लाठी से तो मशीनगन को घायल नहीं किया जा सकता ।

अहिंसा के मार्ग को छोड़कर मुक्ति का और कोई भी मार्ग हमारे सामने खुला नहीं है । क्योंकि इस मार्ग से किसी भी जाति ने आजतक आज़ादी हासिल करने की कोशिश नहीं की, इसलिए हम भी नहीं करेंगे—यह है अतीत की जंजीर से जकड़ी हुई पंगु दिल की बात । जो बूढ़े हैं, जिन्होंने अपनी जवानी गँवा दी है, सिर्फ़ वे ही अतीत की दुहाई देकर पुराने से चिपककर पड़े रहेंगे । मनुष्य का स्वभाव जड़बुद्धि है । इसी जड़बुद्धित्व के लिए ही वे गतानुगतिकता से चिपककर पड़े रहते हैं । नये रास्ते में चलने से डरते हैं । इस बुद्धि-जड़ता के कारण ही हिंसा की नीति को कृत्रिम जानकर भी हम नये मार्ग को स्वीकार नहीं करना चाहते । मनुष्य अपनी स्वाभाविक दुर्बलता को पीछे छोड़कर सत्य के लिए, आज़ादी के लिए खड़ा-खड़ा मर सकता है—इस बात पर जो हम विश्वास नहीं कर सकते, इसके पीछे है यही नसों में भरा हुआ संस्कार । इसी पर गांधीजी ने कहा है—शुद्ध अहिंसा का आचरण करना कठिन है—हमारी इस बद्धमूल धारणा का कारण है यही एक ढर्रे की चाल—जड़ता । इसी जड़ता को तोड़कर जो लोग नये रास्ते में आगे बढ़ सके हैं, उनकी प्रतिभा इतिहास में नये-नये आश्चर्यजनक आविष्कार लायी है । कोलंबस के अमेरिका की खोज करने के पहले, ऐसी एक घटना कभी हो सकती है, यह कोई भी विश्वास नहीं कर सकता था । जिस रोज वह विराट् समुद्र के ऊपर निकल पड़ा, अमेरिका का अस्तित्व था केवल उसकी श्रद्धा में । इस श्रद्धा ने ही उसको अनंत समुद्र में आगे बढ़ने की शक्ति दी थी । मनुष्य का इसी महान् श्रद्धा के सहारे इतिहास में युग-परिवर्तन का स्वर्णद्वार बार-बार खुला है । अहिंसा से हमलोग इष्ट लक्ष्य पर पहुँच ही जायेंगे, ऐसी कोई बात नहीं । लेकिन क्या इसीलिए जो हिंसा-मार्ग अनुपयोगी साबित हुआ, उसके भरोसे पड़े रहेंगे ? नये मार्ग में चलने के लिए हिम्मत न बांधेंगे ? अज्ञात की शोध में बाहर निकलने को डर जायेंगे ?

प्रयोगों से ही सत्य का शोध हुआ करता है अहिंसा भी एक प्रयोग है । इन दिनों में जो नौजवान हैं, सिर्फ़ वे ही अनेक युगों के पुराने मार्ग का बहिष्कार कर नये मार्ग में चलने की हिम्मत बाँधेंगे । और उनका अनुगमन करेगा सिर्फ नौजवानों का झुंड, जो अज्ञात समुद्र में कूदने की हिम्मत कर सकता है, जिसकी आँखें इतिहास की पुरानी कहानियों की तरफ़ नहीं हैं, जिसकी आँखों में इतिहास को नये सिरे से रचने का स्वप्न है, और हृदय में भीष्म की प्रतिज्ञा है ।

हिन्दी के कवि इधर

[सोहनलाल द्विवेदी]

When I Slept I found that life was beauty,
When I awoke I found that life was duty·

सस्ती भावुकता से भरे हुए गीत गानेवालों का किसी भी साहित्य में अभाव नहीं, किन्तु जिनका विवेक संतुलित हो, जिनकी भावनाएँ स्वस्थ बन चुकी हों, जिनके जीवन में निर्मलता आगयी हो, सत्य ने जिन्हें अपनी झाँकी दिखायी हो, जो अपनी उदात्त भावनाओं को ही अपने गीतों में ढाल देते हों, जिनके गीतों से तप्त विश्व में एक प्रकार की शीतलता छा जाती हो, जो हमारी निद्रित आँखों पर शीतल जल की फुहार सी बरसाते हों, जिनसे हम जगकर मानव जीवन की पुण्य तीर्थयात्रा में चल पड़ने को प्रस्तुत हों, अपना लक्ष्य पाने के लिए, उस कर्तव्य को पूरा करने के लिए जिससे मानवसमाज सुखी हो, सशक्त हो, ऐसी समझवाले और ऐसी समझ को गीत बना देनेवालों का सदा अभाव रहा है, और है ! हिन्दी के ऐसे साधक कलाकारों में कबीर, मीरा, तुलसीदास ही का नाम सबसे पहले आता है। उनके पश्चात् भारतेन्दु की देशभक्ति से भरी रचनाएँ, श्री मैथिलीशरण गुप्त के उदात्त भावोंवाले गीत, श्रीसियारामशरण, पंत, 'निराला', 'नवीन' 'दिनकर' सुधीन्द्र के स्वर हमारे अभीष्ट विषय की ओर संकेत करते हैं। संकेत इसलिए कि उनमें वह ओजम् नहीं है, जिसमें पूर्णत्व ढल गया है, जिससे एक ठेस-सी लगती है, और पाठक बरबस उसके रंग में रँग जाता है। हाँ, रवीन्द्रनाथ के महाप्राणों से अनुप्राणित गीतों में यह शक्ति अवश्य है। उनमें भी कहीं-कहीं, हमारी कामना ही को जाग्रत करनेवाली, आत्मा या निर्मल प्रेम को उठानेवाली नहीं, तान है। किन्तु, उन्होंने वे स्वर बड़े सँभाल कर साधे हैं, जिनसे स्वस्थ मांगलिक वातावरण छिन्न नहीं होने पाता। कवि कालिदास में तो इस प्रकार की शिव तथा अशिव भावनाओं का बड़ा मेल है। अपेक्षा है उनके उन्हीं अंशों को, रागों को दुहराने की जिनसे हमारी आत्मा ही ऊपर उठ सके, हमारा कल्मष नहीं।

पाठक महाकवि के ऊपर इतना गुरु आक्षेप करते देखकर कहेंगे—'छोटे मुँह बड़ी बातें' ! किन्तु, जिनमें विवेक-बुद्धि है, जिनमें अपना कुछ जीवट है, और जो परीक्षा करके ही अपना मत स्थिर करते हैं, उनके लिए ऐसे लोकमत की भी चिन्ता नहीं रहती। दूसरे, मैं आजीवन दूसरों की आँखों को मोल लेकर चलने की अपेक्षा जीवनभर गड्ढों में गिरना, लड़खड़ाना और आगे बढ़ते रहना ही श्रेष्ठ मानता हूँ। मैं अपनी बात कहूँगा, उसे कंठ में रखकर मरोड़ देना कायरता है।

निर्विवाद रूप से इस प्रकार, जिस कवि के हाथों में हम अपना तन-मन-जीवन सौंप सकते हैं, ऐसे तो एक महात्मा तुलसीदास ही हैं, किंतु वहाँ भी उन अंशों में सावधान रहने की आवश्यकता है जहाँ वे युगधर्म में पीछे हैं, और जहाँ अपनी जीवन की कटुता से बदला भँजाने के लिए, उन्होंने अपना प्रतिशोध प्रकट किया है। जो उनके जीवनवृत्त से परिचित हैं, उन्हें उधर संकेत करने की आवश्यकता नहीं।

कवि कालिदास की चार पंक्तियाँ 'मेघदूत' से लीजिए।

ज्ञातः स्वादो विवृत जघनां को विहातुं समर्थः,
याञ्चामोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामः।
मेघालोके भवति सुखिनोप्यन्यथावृत्तिचेतः,
कंठाश्लेषप्रणयनि जने किं पुनर्दूर संस्थे ?

ये पंक्तियाँ हमारे समक्ष विविध चित्र उपस्थित करती हैं, जिनके प्रत्यक्षीकरण से हमारी विविध भावनाएँ और विचार जाग्रत होते हैं।

मेरा मत है इसमें पहली पंक्ति का चित्र बहुत ही अश्लील है—'जिसने खुली जंघों के स्वाद को चखा है, वह उन्हें नहीं त्याग सकता।' इससे घनघोर संभोग शृंगार की भावना ही उद्दीप्त होती है, और चार-पाँच बार

इसे पढ़िए, तो मन न जाने कैसा होने लगता है, विचार की सरणि टूट जाती है, प्रेम की भावना दूर रहती है, एक प्रकार का शरीर-सुख ही अनुभूति में आता है, और वह हमारे काम को प्रदीप्त करता है। यह ठीक है कि कालिदास ने जिस स्थान में इसे लिखा है, जिस काव्य में इसे लिखा है, स्थान के निर्देश से इसका वहाँ औचित्य है, किन्तु, सर्वथा वरेण्य भावना वह नहीं कही जा सकती।

दूसरी पंक्ति—श्रेष्ठ व्यक्ति से प्रार्थना करना चाहिए, अधम से नहीं, क्योंकि श्रेष्ठ व्यक्ति के प्रति की गयी प्रार्थना यदि असफल रहे, तो वह अच्छी है, अधम व्यक्ति यदि प्रार्थना पूर्ण करदे, तो भी वह ग्राह्य न होनी चाहिए—से हमारे अज्ञान, अन्धानुकरण, नासमझी की दीवाल-सी भग्न हो जाती है। और कल हम जैसे थे, उसकी अपेक्षा आज अपने को अधिक विवेकपूर्ण अनुभव करते हैं।

अन्तिम पंक्तियाँ—**मेघों के देखने पर सुखी लोगों का मन भी अनमन हो जाता है, फिर जो एक-दूसरे के गले लगे रहते हों, ऐसे वियोग-विधुरों की बात ही क्या?**'—प्रणय की भावना को जगाती हैं। 'प्रणय' शब्द मैंने इसलिए प्रयुक्त किया है कि 'प्रणय' में मानसिक सम्बन्ध के साथ शरीर-सम्बन्ध का भी बोध पाता हूँ।

ये मुझे बड़ी ही प्रिय लगती हैं, क्योंकि वे हमारे मर्म को स्पर्श करती हैं, और व्यक्तिगत वेदना के साथ लोक के प्रति एक प्रकार की सहानुभूति भी जागरित करती हैं।

कवि कालिदास के छंद से ये उद्धरण इसलिए दिये गये हैं कि जिससे जान पड़े कि गुण-अवगुण, ग्राह्य-अग्राह्य सभी में कुछ न कुछ रहता है, किन्तु हमें तो वही ग्रहण करना है, जो हमें अपने लोक-कल्याण के पथ में, मानवता के कल्याण के पथ में आगे बढ़ावे। जो हमारी विवेक की आँखों को मूँदे नहीं प्रत्येक चरण 'ज्ञानांजन शलाकया' उन्हें खोल दे, हमारी उदात्त भावनाओं को मुखरित कर दे, और हमारी दुर्बलताओं को प्रश्रय न दे। ऐसे सजग कलाकार आज हिन्दी में हैं। ऐसी आर्य-भावना के संस्थापकों में इस समय कवि श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय और श्री गुप्तजी प्रमुख हैं। गुप्तजी की रुचि जितनी सँभली हुई है, उतनी बहुत कम कवियों की है। उनके ग्रन्थ हम अपनी स्त्री, पुत्रवधू, भाई, बहन, माँ-बाप सभी के सामने पढ़ सकते हैं। कहीं-कहीं प्रसादजी में, पंतजी में तथा निरालाजी में यौवन-विलास है। उन अंशों से बचकर चलना चाहिए। निरालाजी की 'जूही की कली' कालिदास की उपरोक्त रसिकता से कम नहीं, अधिक ही है। मेरी राय है, जिन्हें मकरध्वज खाने की आवश्यकता हो, उन्हें इस प्रकार की रचनाएँ पढ़ना चाहिए। जिनका खून यों ही काम रहता हो, उन्हें विवेक को, अपने को संयम में रखनेवाली रागिनियों को ही अपनाना चाहिए। इस सस्ती भावुकता के युग में, आज अधिकतर उमर-ख़य्याम के एक प्याले के लिए, एक और घूँट के लिए, एक और दौर के लिए ही हाहाकार-सा मचा हुआ है। तथापि कुछ नवीन कलाकारों ने स्वस्थ संतुलित भावनावाले गीत भी प्रदान किये हैं।

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने 'विश्व-साहित्य' में ठीक ही लिखा है!—

"वाल्मीकि भारतवर्ष के आदिकवि माने जाते हैं। उनकी गणना महर्षियों में की जाती है। हिंदू-समाज में ऋषियों का स्थान बहुत ऊँचा है। उनकी देवतुल्य पूजा होती है। उनके कथन का खण्डन करने का साहस कोई नहीं कर सकता। आदिकवि का ऋषि होना यह सूचित करता है कि कवि को वही स्थान प्राप्त है जो ऋषि को अतएव जिस कवि की रचना में वह गुण नहीं जो एक ऋषि के वचन में होता है, उसे हम कवि नहीं कहेंगे।...हम तो उससे यही आशा करेंगे कि वह हममें स्वर्गीय भाव भरदे।" (अपूर्ण)

राष्ट्रभाषा की ठोस सेवा

[श्रीमन्नारायण अग्रवाल]

'जीवन-साहित्य' के अगस्त के अंक में श्री जैनेन्द्रकुमार ने राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी एक पत्र लिखा था जिसमें टीकमगढ़ में जमा हुए कुछ हिन्दी साहित्यिकों की चर्चा का ज़िक्र था । जिस निष्कर्ष पर श्री बनारसीदासजी, जैनेन्द्रकुमारजी इत्यादि पहुँचे वह बहुत विचारयुक्त और नपा-तुला है । उसमें राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी सभी पहलुओं का सुन्दरता से समावेश होगया है ।

राष्ट्रभाषा का सवाल अगर वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाये, तो बहुत आसान है । जो भाषा देश में ज्यादा-से-ज्यादा बोली और समझी जाये वही हमारी राष्ट्रभाषा है । उसमें संस्कृत, अरबी फ़ारसी, अंग्रेज़ी इत्यादि के आसान और बोधक शब्द रहेंगे ही । जैसे-जैसे उत्तर हिन्दुस्तान का सम्पर्क दक्षिण से बढ़ेगा, राष्ट्रभाषा में दक्षिण की भाषाओं के सुन्दर शब्द भी अनायास आ ही जावेंगे । अगर भाषा को सुसम्पन्न और शक्तिशाली बनना है, तो उससे किसी भी शब्द का बहिष्कार नहीं किया जा सकता । अंग्रेज़ी एक अवैज्ञानिक भाषा है । उसका उच्चारण, स्पेँलिंग, व्याकरण, ध्वनि सभी अनियमित है । फिर भी वह आज संसार की एक जीवित और सम्पन्न भाषा है । इसका रहस्य यही है कि अंग्रेजी ने बिना किसी भेदभाव के, संसार की सभी भाषाओं के सुलभ शब्दों का स्वागत किया है और उन्हें अपनाया है । अगर सोलहवीं शताब्दी के भाषा-सुधारकों (purists) की चलती तो अंग्रेज़ी कभी भी इतनी विकसित नहीं हो सकती थी !

हमें राष्ट्रभाषा के प्रश्न को इसी दृष्टि से सोचना होगा । हिन्दी और उर्दू का झगड़ा, असल में देखा जाय, तो राष्ट्रभाषा की मुख्य समस्या नहीं है । वह तो वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति के कारण है । हमारी अंग्रेज़ी सरकार ने अपनी हस्ती कायम रखने के लिए इस देश में बहुत-सी चालें चली हैं । उनमें से सबसे भयंकर और दूषित है पृथक निर्वाचन-पद्धति (Separate electorates)। हिन्दू और मुसलमानों का अलग-अलग चुनाव होने के कारण दोनों सम्प्रदायों का एक दूसरे से सम्पर्क ही नहीं रहता । फिर भाषा एक कैसे हो ? जनाब जिन्ना साहब ने तो पाकिस्तान का सिद्धान्त अभी स्वीकार किया है । लेकिन उसका बीज तो हमारे अंग्रेज बहादुरों ने ही बड़ी चालाकी से बोया है ।

राष्ट्रभाषा के सवाल को सोचते समय राष्ट्रीय-वृत्ति ही रखनी होगी, साम्प्रदायिक नहीं । हिंदी और उर्दू को एक करने के लिए संस्कृत और फारसी शब्दों का किसी विशेष अनुपात में मिश्रण करने से काम नहीं चलेगा । भाषा के प्रश्न में अल्पसंख्यक अधिकार (minority rights) की बात नहीं उठनी चाहिए । भाषा मे राजनीति और प्रजातन्त्र-गणित (Arithmetical Democracy) का समावेश कराना सीधे शब्दों में मूर्खता ही होगी ।

हिन्दी-उर्दू का झगड़ा तो तभी तक होगा जब संयुक्त-निर्वाचन-पद्धति (Joint electorates) शुरू होजायगी । हिन्दू और मुसलमानों में जब सामाजिक सम्पर्क बढ़ेगा तब भाषा का अन्तर भी धीरे-धीरे अपने आप कम होता जायेगा ।

लेकिन, जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, हिन्दी-उर्दू का सवाल हमारे सामने खास बात नहीं है । राष्ट्रभाषा के प्रश्न को वैज्ञानिक और शास्त्रीय-ढंग से हल करना चाहिए । इस सम्बन्ध में मेरे नीचे लिखे सुझाव हैं—आशा है इन सुझावों के आधार पर कुछ ठोस कार्य किया जायेगा ।

१. राष्ट्रभाषा में उन शब्दों को अधिक पसन्द करना चाहिए जो हिन्दी-उर्दू के अलावा दूसरी प्रान्तीय भाषाओं में भी पाये जाते हैं । इसलिए हिन्दी और उर्दू के उन शब्दों का

संग्रह होना चाहिए जो बंगाली, मराठी, असामिया, उड़िया, गुजराती, तामिल, तेलगू इत्यादि भाषाओं में भी प्रचलित हों। इस तरह का कोष राष्ट्रभाषा के स्वरूप को स्थिर करने में बहुत सहायक होगा।

२. अन्य प्रान्तीय भाषाओं के उन सुलभ और बोधगम्य शब्दों का संग्रह करना चाहिए जो हिन्दी या उर्दू में आसानी से घुलमिल सकते हैं। इस प्रकार के संग्रह से राष्ट्रभाषा का शब्द-भंडार अधिक सम्पन्न बन सकेगा।

३. पारिभाषिक शब्दों की सूची बनाना बहुत ज़रूरी है। अभी तक इस ओर ठोस काम नहीं हुआ है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने इस काम के लिए एक उपसमिति शिमला अधिवेशन के समय बनायी थी। किन्तु उस समिति ने कुछ भी नहीं किया। अब यह जरूरी है कि कुछ हिन्दी-प्रेमी और विद्वान् पारिभाषिक शब्दों की एक सूची शीघ्र ही तैयार करें। इस सूची को बनाते वक्त यह ध्यान रखा जाये कि देशज और सहज ग्रामीण शब्दों के खज़ाने का पूरा उपभोग किया जाये। जहाँ यह सम्भव न हो वहाँ संस्कृत व फारसी दोनों से गढ़े हुए शब्द दिये जायें।

४. बुनियादी अंग्रेज़ी (Basic English) की तरह बुनियादी राष्ट्रभाषा बनाने का भी प्रयत्न होना चाहिए ताकि कम-से-कम शब्दों द्वारा सभी तरह के भाव और विचार व्यक्त किये जा सकें। अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए यह बुनियादी भाषा बहुत सुभीते की होगी।

ऊपर की सूचनाओं के बारे में क्या हम गम्भीरता से विचार करेंगे? इन सूचनाओं के अनुसार अगर कुछ परिश्रम किया जाये तो वह राष्ट्रभाषा की ठोस सेवा होगी। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा द्वारा हम इस दिशा में कुछ कार्य कर रहे हैं। किन्तु सबसे बड़ा दुख तो यह है कि हमें इस काम के लिए लगनवाले और सेवापरायण हिन्दी-भाषी कार्यकर्त्ता नहीं मिल रहे हैं।

स्त्रियों को कमाने का अधिकार

प्रत्येक मानव का—चाहे वह मर्द हो या औरत—काम करने और कमाने का अधिकार होना चाहिए। आजकल स्त्रियों ने बहुत से क्षेत्रों में अपनी आर्थिक कार्यशीलता प्रकट कर दी है और नागरिकता और उत्तरदायित्व के समान अधिकारों की माँग के द्वारा वे अपने लिए विशाल क्षेत्र और बड़े-बड़े अवसरों को प्राप्त करना चाहती हैं। इन सब चीज़ों को पाने के पूर्व बहुत-सी समस्याएँ सुलझानी होंगी। बहुत-से धन्धों में लगे हुए कानूनी प्रतिबन्ध हटाने होंगे। यदि समान अवसर दिये जायें तो स्त्रियों के लिए बहुत से व्यवसाय के क्षेत्र खोलने होंगे और जब यह हो जायेगा तब स्त्रियों को इन धन्धों की शिक्षा देने का प्रबन्ध करना होगा। और फिर यदि स्त्रियाँ आदमियों के समान और उतनी ही दक्षता से किसी काम को करें, जितनी कि पुरुष, तो वे पुरुषों के समान वेतन पाने की माँग रखेंगी।

दूसरा खयाल जिसे हमें सुलझाना होगा वह यह होगा कि वेतन पानेवाली स्त्री के शोषण को रोका जाये और उसे यह आश्वासन दिया जाये कि उसकी कमाई पर उसका अपना स्वत्व होगा। इसके बाद दूसरी समस्या यह होगी कि इस आर्थिक स्वतन्त्रता-प्राप्ति के दौरान में बढ़ते हुए बच्चों और घर की साल-सँभाल की उपेक्षा न होनी चाहिए और इन समस्याओं में सबसे बड़ी समस्या आर्थिक क्षेत्र में आनेवाली स्त्रियों के प्रति हमारे सामाजिक पक्षपात (Prejudice) को, जो आजतक बहुत ही प्रबल है, दबाने की होगी।

—श्रीमती कृष्णा हाथीसिंह—

साहित्य की उपयोगिता

[हरिश्चन्द्र]

“कला कला के लिए” को सृष्टि का ध्येय माननेवाले आज भी काफी हैं। उन्हीं लोगों में इसका भिन्न-भिन्न अर्थ लेनेवाले भी हैं। पर अधिकांशतः इस विचार के पोषक हैं—“कला सत्य और सौंदर्य्य की अभिव्यक्ति द्वारा आनन्द की सृष्टि करती है। शिवत्व के साथ उसका निश्चित और स्थायी सम्बन्ध नहीं। इत्तिफाक से उसके साथ वह भले ही सम्बन्ध हो जाये।” इस सिद्धान्त के कारण ही श्लीलता-अश्लीलता का संघर्ष हम साहित्य-संसार में देख रहे हैं। यदि शिवत्व के साथ उसका अनिवार्य्य सम्बन्ध सर्वमान्य हो जाता तो इस द्वन्द्व का अस्तित्व ही न रहता। तब साहित्य या किसी भी कला को जीवनोपयोगिता की कसौटी पर कसे जाने से किसी को भी विरोध न होता।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ कला में “सत्यं-शिवं-सुन्दरम्” के समन्वय के पक्षपाती थे। हम देखते हैं कि उनके काव्यों में कला का जो स्वरूप निखर उठा है, वैसा इन तीनों गुणों के समन्वय को न माननेवाले कितनों ही की कलाओं में नहीं आ पाया। कितने तो यह मानते हैं कि कला में ‘सत्यं-सुन्दरम्’ की अभिव्यक्ति हुई है, ‘शिवम्’ का आगम स्वाभाविक है। यदि यह सत्य है तो कला को जीवनोपयोगिता की कसौटी पर कसे जाने में कोई भय नहीं होना चाहिए। मुझे लगता है कि कला जो कलाकार के के हृदय से सत्य और सौन्दर्य्य के रूप में अवतरित हुई, किसी को अश्लील दीखे भी, इसे बरदाश्त करना कलाकार के लिए दुस्सह है। इसीलिए वह चाहता है कि मैंने इसे जिस दृष्टि से देखा है, सभी केवल उसी दृष्टि से—अविकल रूप में देखें। पर संसार में सबकी वृत्तियाँ और विचारधाराएँ एक-सी नहीं होती, न हो ही सकती हैं; अतः प्रत्येक कला, चाहते हुए भी, जीवन की कसौटी पर कसी जायेंगी।

और किसी वस्तु के उपयोगी होने के क्या चिन्ह हैं? किस आधार पर किसी वस्तु को उपयोगी ठहराया जाये? शायद जो वस्तु हमें अश्लीलता से श्लीलता की ओर, असुन्दर से सुन्दर की ओर, विषाद से आनन्द की ओर, तमस् से ज्योति की ओर, अपूर्णता से पूर्णता की ओर——इसी प्रकार संकीर्णता से उदारता, लघुता से महानता, असत्य से सत्य की ओर उन्मुख करती रहे, उसे उपयोगी कहेंगे। पर स्वतः सुन्दर, सत्य, आनन्द, श्लीलता आदि क्या हैं, इसका भी एक निश्चित स्वरूप निर्धारित कर देना बड़ा कठिन है। हम एक ही स्थान में, एक ही समाज तक में ऐसे व्यक्तियों को पाते हैं, जिनके सौन्दर्य्य, श्लीलता सत्य आदि की धारणाएँ एकदम विभिन्न हुआ करती हैं। जिस आधार पर हम किसी वस्तु में उपयोगिता का आरोप करेंगे, वह आधार ही स्वयं डगमग, अनिश्चित और चंचल दीख पड़ता है। फिर भी विकासोन्मुख, अपूर्णता से पूर्णता की ओर ले जानेवाली वस्तु में उपयोगिता के तत्त्व की प्रतिष्ठा सभी को मान्य है।

‘विकास’ शब्द के भी दो अर्थ लिये जाते हैं। है। एक निकृष्ट-स्थिति से निरन्तर उत्कृष्ट स्तर पर ले जानेवाला; दूसरा पहिये (रथचक्र) की भाँति नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे, ह्रास से विकास, विकास से ह्रास, एक ही स्थिति की पुनरावृत्ति करानेवाला। इनमें विकास का प्रथम अर्थ ही मुझे मान्य है। समस्त ऐतिहासिकों एवं वैज्ञानिकों का यही निर्णय है कि कोई स्थिति ठीक उसी रूप में कभी लौटकर आती ही नहीं। इस प्रकार के विकास की ओर ले जानेवाला तत्त्व जिस वस्तु में मौजूद है, वही जीवनोपयोगी कहलाने का अधिकारी है।

काव्य या अन्य कोई कलाएँ, स्वतः पूर्ण, सत्य, सुन्दर एवं आनन्दरूपिणी नहीं हैं,

केवल उस ओर ले जानेवाली, गति एवं प्रेरणा देने में साधन रूप हैं। ये सारे तत्त्व जीव-मात्र की आत्मा में मौजूद हैं या कहें स्वयं आत्मा ही इनका समन्वित रूप है। कविता आदि कला के साधनों से लोगों को उनकी आभा प्रतिभासित हो उठती है, या निकटतर पहुँचने से उनके प्रभाव-संस्पर्श से वे अधिक संवेदित हो उठते हैं। इनकी महत्ता और सफलता इसी में है कि ये उक्त साध्य को प्राप्त करा देने में अधिक से अधिक समर्थ हो। साधन, साध्य नहीं हो सकता, पर यदि साधन में साध्य को प्राप्त करा देने की अमोघ और अचूक शक्ति हो तो वह अपने स्थान पर पूर्ण कहा जा सकता है यद्यपि वे विकास साधिका कलाएँ, जो जीवन को विकास की ओर अपूर्णता से पूर्णता की ओर ले जायें, उपयोगी हैं। किन्तु मानव का विकास-क्रम सर्वत्र एक ही नहीं है। किसी में अभी पाशवता का प्राधान्य है, कोई पाशवता एवं मानवता के तुमुल संघर्ष में है, और कोई पाशवता पर विजय पाकर मानवता की ओर बढ़ रहा है। सृष्टि से ये क्रम विकास की स्थितियाँ मिटायी नहीं जा सकतीं।

संसरण-शील प्रवृत्ति के कारण ही इस विश्व का नाम संसार पड़ा है। यहाँ की किसी भी वस्तु-स्थिति में स्थिरता नहीं है। निरन्तर परिवर्तन-शीलता ही सृष्टि का मुख्य लक्षण है। किन्तु इस परिवर्त्तन में कोई वस्तु अपना स्वरूप छोड़ ठीक-ठीक उसी रूप में नहीं आती। इसीलिए निरन्तर परिवर्त्तन-शीलता का दूसरा नाम विकास है। वस्तु और व्यक्ति दोनों का विकास निरन्तर होता ही रहता है। इस दृष्टि से वस्तु या व्यक्ति की कोई भी स्थिति स्थिर नहीं, अतः वह सत्य नहीं, विनाशशील है। हम ज्यों-ज्यों इस 'अस्थिर' को छोड़ कर सत्य की, अमरत्व की ओर बढ़ते हैं, त्यों त्यों हमारा विकास होता है। इस गति का दूसरा नाम 'श्लीलता' है। पर ज्योंही हम किसी मोह-वश सत्य की ओर जानेवाले पथ में किसी किसी असत्य को ही सत्य समझकर उससे ठहर जाते हैं—लिपट जाते हैं त्यों ही हमारी अंगति होने लगती है। हम बहती हुई हीरे सी स्वच्छ-सरिता के स्थान में गदले जल के तालाब के रूप में बदल जाते हैं। यही अश्लीलता का उद्गम-स्थान है। इस संसार की कोई भी वस्तु-स्थिति सत्य नहीं, अतः हम एक के बाद दूसरे को निरन्तर त्यागते हुए बढ़ते चलें जबतक कि उस महान् विशुद्ध सत्य की उपलब्धि न हो जाये। जभी हम पथ के बीच की चीज़ों को अन्तिम लक्ष्य मानकर रुक जाते हैं, तभी हममें सड़न पैदा होने लगती है और अश्लीलता का महारोग हमें आ दबाता है।

काव्य या अन्य कलाओं को लोग सत्य और सौन्दर्य की ही अभिव्यक्ति माने बैठे हैं, पर वे वास्तव में स्वतः सत्य और सुन्दर नहीं हो सकतीं। उसमें जो सुन्दरता और सत्यता देख पड़ती है, वे सत्य और सौन्दर्य की निकटता का आभास या झलक मात्र हैं। वे जितनी ही निकटता प्राप्त करने में समर्थ होती हैं, उतनी ही वह दिव्यतर होती जाती हैं।

प्रत्येक कलाकार की महत्ता इसी में है कि उसके पूर्ववर्ती कलाकार अपनी कला को सत्य के जितना निकट पहुँचा सके हैं, उसे वे उससे भी निकटतर पहुँचावें। यदि वे उतनी ही दूर तक पहुँचा सकें या उल्टे उससे पीछे ही ले जायें, तो उनकी कलाओं की क्या विशेषता है? तब कलाकार को अपनी कला को जीवनोपयोगिता या श्लीलता-अश्लीलता की कसौटी पर कसने में किसी प्रकार डरने और घबराने की जरूरत नहीं। इस दृष्टि को रखकर कला-सृष्टि करने से वह तो चाहे-अनचाहे उपयोगी होगी ही।

ज्ञान या अज्ञात रूप से समस्त प्राणी विकास—यानी असत्य से सत्य, असुन्दर से सुन्दर की ओर जा ही रहे हैं। अपने पाये हुए ज्ञान को, ज्योति को, आँखों से ओझल होने देना वे नहीं चाहते। इसीलिए वे संसार में ऐसा सहारा जरूर ही ढूँढ़ेंगे, जो उनको सत्य के निकट-से-निकट ले जाये। इसीलिए साहित्य और कला में भी

उपयोगिता-अनुपयोगिता देखकर ही उसका ग्रहण अथवा परित्याग करेंगे । पाये हुए आंशिक आलोक के सहारे हम उसके मूल-स्तम्भ तक जा पहुँचें, यह ध्यान रखनेवाले की कला की महत्ता कभी घट ही नहीं सकती ।

मनुष्य के विकास में परिस्थिति का व्यापक प्रभाव पड़ता है । प्रत्येक व्यक्ति के अपने में जो कुछ है, उसके सिवाय विश्व की सभी वस्तुएँ, विचार, साहित्य, कला, समाज आदि परिस्थितियाँ ही हैं । परिस्थितियाँ उपेक्षणीय नहीं, यद्यपि एक ही परिस्थिति से भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रभाव ग्रहण करते हैं । परिस्थिति पैदा कर मनुष्य का निर्माण करना हम जर्मनी, जापान आदि देशों में प्रत्यक्ष देख ही रहे हैं । “मैं जो कुछ कहता हूँ, करता हूँ एवं निर्माण करता हूँ, वह मेरे सिवाय सभी के लिए परिस्थितियाँ हैं और उसकी भी एक महत्ता है ।’ इस विचार को अपनी बुद्धि और हृदय से एक करने के बाद ही साहित्यकारों और कलाकारों का अपनी रचना करना श्रेयस्कर है ।

गुरुदेव के दर्शन

[हरिभाऊ उपाध्याय]

प्रयाग का एक सभा-भवन । १९१४ या १५ में आपको चलना होगा । खचाखच भीड़ । नंगी खोपड़ियों का ताँता । सबके चेहरों पर कृतज्ञता व आत्मसम्मान का गौरव । एक गैलरी में मैंने अपने को खोया हुआ पाया । मैं मैट्रिक में पढ़ता था । उत्सुकता झुँझलाने लगी । प्रतीक्षा थकने लगी । एकाएक नीचेवालों की निगाह दरवाजे की ओर गयी । कोसे की धोती, कोसे का लम्बा कुरता, ऊपर कोसे की ही चादर पड़ी हुई—एक शान्त, भव्य, प्रसन्न मूर्ति आती दिखायी दी । विशाल आँखें, उन्नत ललाट, शानदार डाढ़ी, खुला सिर : बीसवीं सदी में यह उपनिषद् काल का ऋषि ही तो भूलकर नहीं आगया ! वाल्मीकि की प्रतिमूर्ति ही तो नहीं है ? सबने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया । वे मृदुल गंभीर स्वर में बोले । मैं न सुन सका, न समझ सका । पर उस सारे दृश्य को देख गद्गद् हो गया । जिन्होंने भारतवर्ष का नाम बढ़ाया, दुनिया ने जिसके कवित्व की दाद दी, भारतीय संस्कृति जिसके रोम-रोम से बोल रही थी, ऐसे महान् व्यक्ति के दर्शन से मैंने अपने को कृतार्थ माना । ‘गुरुदेव’ के ये प्रथम दर्शन थे । उस समय शायद वे पहले ही भारतवासी थे जिन्होंने संसारवासियों के मन में अपने लिए मान का स्थान प्राप्त किया ।

× × ×

उसके बाद उनके प्रत्यक्ष व नजदीक से दर्शन तथा वार्तालाप का सौभाग्य ४-५ साल पहले मिला जब कि मैं बोलपुर के हिन्दी वाचनालय के उद्घाटन के लिए बुलाया गया था । उसके पहले तक गुरुदेव के दर्शन उनके ग्रन्थों के द्वारा करता रहा । मुझे याद है, अपने विद्यार्थी-जीवन में ही मैंने उनके ‘गोरा’, ‘नौका डूबी’, ‘आँखों की किरकिरी’, ‘गीतांजलि’ पढ़े थे । उस समय इतनी योग्यता तो नहीं थी कि उनकी तमाम खूबियों को समझ सकता, पर इतना अवश्य याद है कि और उपन्यासों से इनमें कुछ विशेषता थी—वे मन पर एक उच्च संस्कृति व उदारता की छाप छोड़ते थे । ऐसा लगता था मानों आत्मा को कुछ भोजन मिल रहा है । कुछ नयी चीज पा रहे हैं ।

× × ×

अब एक ऐसा युग आता है जब गुरुदेव के प्रति मन में कुछ अरुचि; कुछ अश्रद्धा, कुछ विरक्ति का भाव होता है । यह १९२२-२३ की बात है । मैं साबरमती-आश्रम में था । महात्माजी ने विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलवायी थीं । एण्ड्रूज साहब ने उसपर ऐतराज किया था ।

गुरुदेव को इस बहिष्कार में असहिष्णुता, एकांगिता, संकुचितता दिखायी दी। उनकी विशालता, उदारता, मृदुलता व आर्यता को इस उग्र बहिष्कार व खादी-आन्दोलन से ठेस-सी लगी थी। उन्हें इसमें 'हिंसा'-'द्वेष' की गंध आती थी तो महात्माजी को गुलामी के कीड़ों से लदे इन विदेशी वस्त्रों की होली में 'स्वराज्य' के दर्शन होते थे। उनके उद्गारों व रचनाओं में वह अभिव्यक्ति हुई। 'माडर्न रिव्यू' में उन्होंने महात्माजी के इस आन्दोलन के विरोध में एक लेख लिखा, जिसका जवाब महात्माजी ने 'दि ग्रेट सेंटिनेल' के नाम से 'यं० इं०' में दिया। मुझे 'हिन्दी नवजीवन' के लिए उसका अनुवाद करना पड़ा था। इन्हीं दिनों 'मुक्त धारा' नामक गुरुदेव का एक रूपक प्रकाशित हुआ। हम युग-धर्म के उपासकों को, वन्दिनी माता की बेड़ियों को एक झटके से तोड़ डालने के लिए अधीर युवकों को, महात्माजी के तेज व प्रताप के वातावरण में रहनेवाले सत्याग्रह के सैनिकों को, 'गुरुदेव' की यह आवाज 'बेसुरी' मालूम हुई। हमें लगा—गुरुदेव भटक गये हैं, युग-प्रवृत्ति से दूर पड़ गये हैं, स्वराज्य-आन्दोलन की धारा में पिछड़ गये हैं। गुरुदेव व महात्माजी का यह वाग्युद्ध हमें अरुचिकर मालूम हुआ। हमारे व्याकुल हृदय चाहते थे कि गुरुदेव महात्माजी का साथ दें, अपने सहयोग से उनकी शक्ति बढ़ावें। इसके विपरीत उन्होंने 'एकला चलो रे' का अनुसरण किया। हमें गुरुदेव व महात्माजी में 'कवि' व 'कर्मी' का भेद दिखायी देने लगा। मैं उन दिनों कहा करता था आश्रम—साबरमती—में 'तप', शान्तिनिकेतन में 'कला' व गुरुकुल—काँगड़ी—में 'विद्या' है।

× × ×

फिर १९३२ में अत्यन्त हृदयस्पर्शी दृश्य आता है। महात्माजी ने हरिजनों के मताधिकार के संबंध में उपवास किया था। वृद्ध कवि अपनी आशीर्ष लेकर पूना जेल में पहुँचे। ऋषि व तपस्वी का—वाल्मीकि व वसिष्ठ का वह स्वर्गीय मिलन था। गुरुदेव ने प्रार्थना के रूप में अपना एक बंगला गीत गाया। महात्माजी ने अश्रु-गद्गद् हो उनका चरणस्पर्श करते हुए कहा—गुरुदेव से बड़ा यहाँ कौन है जिसका चरणस्पर्श करके मैं उपवास छोड़ूँ? जब यह समाचार मैंने पढ़ा तो सहसा मुख से निकल पड़ा—'गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणो, बली बलं वेत्ति न वेत्ति निर्बलः'। मुझे लगा साधना ने सरस्वती को सिर नवाया व सरस्वती ने कलकण्ठ से साधना को श्रेय व सिद्धि की आशीश दी। मुझे रोमाँ रोलाँ का यह वाक्य याद आ गया—'गांधी व रवीन्द्र एक हिमालय की गोद से निकलकर पूर्व और पश्चिम की ओर बहनेवाली गंगा और सिन्धु के सदृश दो महान् धाराएँ हैं।' मेरे हृदय ने कहा—रवीन्द्र व गांधी संसार को आर्य-संस्कृति की दो महान् देन हैं। एक में उसके हृदय की सुकुमारता व दूसरी में उसकी आत्मा की तेजस्विता चमकती है। दोनों इतने महान् हैं कि हम जैसो की स्थिति कबीर की तरह हो जाती है—'गुरु गोविंद दोनों खड़े काके लागूँ पायँ?' अपनी उस अरुचि व अश्रद्धा पर मन ही मन बड़ी ग्लानि होने लगी। अपने छोटे पैमानों से महापुरुषों को नापना कैसा 'अव्यापारेषु व्यापार' है, इसकी यथार्थ प्रतीति हुई।

× × ×

अब शान्ति-निकेतन के दर्शन व गुरुदेव के श्रीमुख से कुछ उपदेश सुनने का समय आता है। मेरा जीवन राजस्थान की सेवा के लिए अर्पित है। उस सेवा के निमित्त ही कहीं आता-जाता हूँ। कलकत्ते में जब-जब गया इच्छा हुई कि शान्ति-निकेतन देखूँ, परन्तु यही विचार मन में आया कि राजस्थान की सेवा से उसका क्या सम्बन्ध? हनूमान की वह एक निष्ठा मुझे अच्छी लगती है, जिसमें उन्होंने राम के दिये कंठहार की तमाम हीरक-मणियों को फोड़-फोड़कर देखा कि इसमें कहीं राम है? और राम न मिलने पर बहुमूल्य मणियों को कंकड़-पत्थर की तरह फेंक दिया। एक बार कलकत्ते के राजस्थानी मित्र भाई सीतारामजी सेकसरिया या वसन्तलालजी

मुरारका में से किसी ने मुझसे कहा--बोलपुर के हिन्दी वाचनालय के उद्घाटन के लिए मुझे बुलाया गया है, अच्छा हो कि आप चले जायें। इस निमित्त शान्तिनिकेतन व गुरुदेव के दर्शन हो जाने के प्रलोभन ने मुझे वहाँ भेज दिया। पंडित हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने गुरुदेव के दर्शन की व्यवस्था करायी व उत्तरायण के समीप मुक्त-गगन में गुरुदेव ने हमें दर्शन दिये। शान्ति-निकेतन की सारी शान्ति और श्री गुरुदेव में केन्द्रित हो रही थी। सादा-सफ़ेद चोग़ा उनके शरीर को ढके हुए था। उसी के सदृश सिर और डाढ़ी के सफ़ेद बाल उनके अन्तःकरण की स्वच्छ शुभ्रता का मानों प्रतिनिधित्व कर रहे थे। मैंने निवेदन किया कि हम राजस्थान की श्रद्धा लेकर इस तीर्थ में गुरुदेव से कुछ पाने के लिए आये हैं। उन्होंने हरिजनों और हिन्दू-मुसलिम वैमनस्य के सम्बन्ध में हमें उपदेश दिया, जिसमें इस पीड़ित मानवता के प्रति उनकी गहरी वेदना और राष्ट्रीय ऐक्य के लिए उनकी तीव्र चिन्ता प्रकट होती थी। शान्ति निकेतन में हमें ऐसा लगा मानों हम बटोही एक विशाल वटवृक्ष की सघन छाया में विश्राम कर रहे हों। लगभग आध घण्टे के अमृत-पान के बाद गुरुदेव के चरण छूकर हम विदा हुए। आज भी गुरुदेव की वह भव्य मूर्ति कई बार आँखों के सामने आ-आ जाती है और भूल जाता हूँ कि अब गुरुदेव इस धाम के नहीं रहे। वे जितना प्रेमादर हमसे ले गये उससे कहीं अधिक आशीर्वाद की वस्तुएँ हमारे लिए छोड़ गये हैं। क्या हम उसके पात्र साबित होंगे?

नये मसविदे पर मेरी व्याख्या

प्रिय सम्पादकजी,

मालूम हुआ कि लेखक-प्रकाशक के बीच के इक़रारनामे का मसविदा 'जी० सा०' के इस अंक में आप छाप रहे हैं। उसके साथ मुझे अपनी ओर से कुछ व्याख्या भी देनी है।

टीकमगढ़-प्रवास के समय स्वाध्याय-मंडल में एक रोज़ लेखक-प्रकाशक का प्रश्न भी आया था। उसपर श्री कृष्णानन्द गुप्त ने पूरी तैयारी की थी। अपने निबन्ध के अन्त में एक इक़रारनामा भी उन्होंने पेश किया था। प्रस्तुत मसविदा उसी का रूपान्तर है।

इस मसविदे में पहले से कुछ तो मूलभूत भेद हैं। बाक़ी उन बातों की सफ़ाई है जिनपर लेखक चिन्तित हुआ करता है। बुनियादी फ़र्क दो बातों में है।

एक तो प्रकाशक का कॉपी-राइट। उसको अनावश्यक कर दिया गया है। पुस्तक-प्रकाशन में लेखक और प्रकाशक का सहयोग है। वह सहयोग ही रहना चाहिए। हमेशा के लिए हर तरह का अधिकार कुछ रक़म के देन-लेन के आधार पर एक से छिन जाय और दूसरे को मिल जाय, यह धारणा पूँजीवादी है। आज के क़ानून में वह मान्य है, लेकिन हमें स्वेच्छा से उसे अमान्य ठहराना चाहिए। पारिश्रमिक के रूप को भी 'रॉयल्टी' की रीति के अधिकाधिक पास ले जाने की हमारी कोशिश होनी चाहिए। एकमुश्त रक़म देकर प्रकाशक बेशक़ खतरा भी लेता है, रॉयल्टी में वह ख़तरा नहीं है। उस ख़तरे को उठाने की एवज़ में लाभ के बटवारे में प्रकाशक का पलड़ा भी कुछ झुका रखा जाय, यह समझ में आता है। पर पुस्तक पर अतिरिक्त लाभ हो तो प्रकाशक क्यों न चाहे कि लेखक को भी इसमें साझा मिले? मसविदे में भरसक इस सहयोग-सम्बन्ध की कल्पना रखी गयी है। एक-दूसरे से फ़ायदा उठाने से अधिक एक-दूसरे को फ़ायदा पहुँचाना है।

दूसरा है लेखक का नैतिक दायित्व। उसको छूट है कि वह कॉपी-राइट-क़ानून से अजानकार

रहे। यह जान-बूझकर। हमारा क़ानून सदोष है। सच्चा क़ानून तो ईश्वर का यानी प्रेम का ही है। इससे नैतिक ज़िम्मेदारी उसकी है। क़ानूनी जिम्मेदारी उसपर नहीं डाली गयी। सम्पत्ति के धरातल पर लेखक की सत्ता शून्य हो तो आपत्ति नहीं है। पर प्रकाशक तो उसी तल पर रहता है। वह कारोबारी है। इसलिए कारबार में क़ानूनी स्थिति की रक्षा का जिम्मा उसका ही होना चाहिए। मसविदे की अंतिम दो धाराएँ इसी की द्योतक हैं। अपनी रचना को सर्वांगपूर्ण बनाने के लिए बाहर से जितनी सहायता ली जायगी लेखक उसे साभार स्वीकार करेगा। दूसरे के परिश्रम का उपयोग वह कर्त्तव्य के नाते करता है। किसी के अधिकार पर दखल डालने की उसे सुध ही नहीं। असल में देखा जाय तो पांडुलिपि तक तो अधिकार में दखल का सवाल उठता ही नहीं। रचना छपती है और बिकती है, तब अधिकार के प्रयोग अथवा अपहरण का सवाल आता है। इसलिए अधिकार के सम्बन्ध की देख-भाल उचित रूप में प्रकाशक के क्षेत्र की ही बात है। यह ग़लत है कि लेखक या अनुवादक मूल लेखकों से अधिकार पाने का दायी बनाया जाय। विलायत के समझदार बड़े लेखक तो शायद इस बारे में अनुवादक से बात भी न करें। बर्नार्ड शा का पत्र यहाँ हिन्दुस्तान में एक मित्र के पास मैंने देखा है। उन्होंने साफ़ अपने सेक्रेटरी से लिखा दिया कि अनुवादक से मुझे बात नहीं करनी है, प्रकाशक मुझे लिखें। इसलिए जब कि रचना के सम्बन्ध में नैतिक जिम्मेदारी लेखक ले, तब क़ानूनी और उसके कारण आनेवाली आर्थिक जिम्मेदारी प्रकाशक की ही हो सकती है।

मसविदे में ऊपर की ये दो बातें तो मौलिक भेद की हैं। शेष धाराएँ स्थिति में सफ़ाई लाती हैं। जैसे समय और संख्या का प्रश्न है। पुस्तक कितनी छपेगी और कब तक छपेगी?—रुपया मिलने पर भी यह लेखक की चिन्ता का विषय होता ही है। मसविदे में चाहा गया है कि लेखक के प्रति प्रकाशक इस बारे में साफ़ रहे। मार्तण्डजी ने कहा कि ऐन छपने के वक़्त से पहिले प्रतियों की संख्या का निर्णय मुश्किल भी हो सकता है। बात ठीक है; कागज़ की दर इत्यादि बाहरी बातें भी उस निर्णय पर असर डालती हैं। इसलिए गुंजाइश छोड़ी है कि अच्छा, जब निर्णय हो सके, तब लेखक को बतला दिया जाय।

लेखक को मिलनेवाली और भेंट-आलोचना आदि के लिए दी जानेवाली प्रतियों की संख्या की बात छोटी है। उस सम्बन्ध की सूचना को कामचलाऊ मानना चाहिए। पुस्तक ५००० छपे तो क्या सवा सौ प्रतियाँ लेखक माँग ले? और तब क्या पौने चार सौ प्रतियाँ समालोचनार्थ भेजी जायँगी? नहीं तब वैसा विचार किया जा सकता है। मामूली तौर पर एक और दो हज़ार के बीच पुस्तक छपती है। दस प्रतिशत और पच्चीस प्रति हज़ार की संख्या उसी दृष्टि से दी है।

आगे की क़लमें साफ़ हैं। मतभेद होने पर जो उपाय बतलाया है, वह भी इक़रारनामे का ज़रूरी अंग है। इक़रारनामा अविश्वास के बल पर नहीं चल सकता। हाँ, मतभेद की गुंजाइश है। सच पूछिए तो इक़रारनामा फ़र्क़ ही दिखलाता है, ऐक्य नहीं। पर उसके मूल में यह भी अनिवार्य है कि दोनों में पास आने और ऐक्य पाने की तबियत हो। अगर यह है तो एकदम ज़रूरी है कि सरकारी अदालत से वे अपना पिंड छुड़ा लें। सरकार जोर पर चलती है और उसकी अदालत भी मेल डालने की नीयत पर नहीं बैठी है। इसलिए अपने चुने हुए पंचों द्वारा ही फ़ैसला होना चाहिए।

मसविदे में एक कमी है। उसको दूर करने लायक़ फ़ार्मूला अभी निकाल नहीं पाया हूँ। धारा नं० ७ में नये संस्करण छपाने का जिक्र है। पर उसका आधार स्पष्ट नहीं किया गया है। सम्बन्ध रायल्टी का है, तब तो प्रश्न ही नहीं। पर यदि पारिश्रमिक दिया गया है, तब

जरूर सवाल उठता है कि नये-नये संस्करण निकलकर खपते जायँ, तो भी क्या एक बार पारिश्रमिक चुकाकर प्रकाशक अपने को उऋण मानले ? न्याय-रक्षक प्रकाशक तो इतने से सन्तुष्ट न होगा। वह कहेगा कि यह विधान तुम्हारा कैसा है कि लेखक को जितना दिया है, उससे कई गुना मुझे पुस्तक पर से कमाने दे रहा है और लेखक के पक्ष में वह मुझसे कुछ भी और नहीं माँग रहा है ? प्रकाशक की सद्भावना का तकाजा होगा कि वैसी हालत में लेखक को और प्रकाशक से और अतिरिक्त दिलाने की सुविधा भी मसविदे में वह चाहे। पर उसका मापक नियम अभी मुझे हाथ नहीं आया है। प्रकाशक कहेगा कि मेरी दया-भावना पर मौक़ूफ़ कुछ मत रखना। व्यवसाय में मैं भावना भूल जाता हूँ। भावना भरोसे कुछ न छोड़ना। अपनी कमाई में से लेखक को न दूँ तो यह तो शोषण है। इसलिए मेरे लिए तो साफ़-साफ़ नियम बनादो कि इतना इसविधि देना होगा। वैसा नियम हाथ लगते ही उसे धारा ७ के बाद जोड़ दिया जायगा। उस नियम का आशय यह रहेगा कि उचित अनुपात में अपनी लगायी पूँजी पर लाभ उठा लेने के अनन्तर जो फिर बिक्री से प्राप्त होगा उसका अमुक हिस्सा प्रकाशक लेखक को दिया करेंगे।

मसविदे में बीच में जो रिक्त है, उन्हें किस सिद्धान्त के अनुसार भरा जायगा, यह सबसे प्रधान प्रश्न है। इकरारनामे का रूप अपने आप में गौण है। वह तत्व मुख्य है। अर्थात् रायल्टी की या पारिश्रमिक की दर किन नियमों के अधीन तय की जायगी ?

आज का नियम बाज़ार का नियम है। बाज़ार ग़रज़ को देखता है। इससे जरूरतमन्द की जरूरतमन्दी बढ़ती जाती है और उसका श्रम सस्ता पड़ता जाता है। इस तरह जिसके पास श्रम की पूँजी है, वह शोषित और जिसके पास धन की पूँजी है वह शोषक बनने की सुविधा पाता है। नतीजे में मानव सहानुभूति सूखती और चतुराई फूलती है। औसत आदमी परिश्रम से जी चुराकर चतुर बनने की ओर आँख लगाता है। इस भाँति परस्पर विश्वास का और श्रमशीलता का ह्रास होता है। सीधे बाज़ार के हाथ मानव-संबंधों के नियम को छोड़ा नहीं जा सकता। बाज़ार में तो मुसीबत अच्छी है। ठठरी बना कंकाल वहाँ रिक्शा खीच रहा है और खासा दोहरा धनवान उस रिक्शे में खिंच रहा है। साहित्य से अगर आशा है कि वह इस शर्मनाक हालत से उबरने में मदद करे, तो उस साहित्य से संबध रखनेवाले लेखक और प्रकाशक को बाज़ार के हाथों में नहीं खेलना होगा बल्कि बाज़ार को सँभालने में लगना होगा। सही, कि हालत एकदम नहीं बदलेगी, पर मुँह तो ढलान की तरफ़ नहीं बल्कि लक्ष्य की तरफ़ रखना होगा।

सीधे-सीधे मैंने तो यह मान लिया है कि किताब के नफ़े में प्रकाशक और लेखक आधे-आधे के साझी बन जायँ। अन्तर हो तो अपरिग्रही के हक़ में हो। यानी प्रकाशक अपने व्यवसाय से परिग्रही है, इसलिए उसका हिस्सा ५०% से ४९% हो सकता है और लेखक अपरिग्रही है तो वह बाकी ५१% पा सकता है। ऐसा इसलिए कि अपरिग्रही धन के द्रुत और व्यवस्थित वितरण में मदद देगा जबकि परिग्रही उसके संचय और केन्द्रीयकरण का साधन होगा। मार्तण्डजी कहते हैं कि बराबर का साझा बराबर के पक्षों में तो ठीक है। पर लेखक व्यक्ति है, प्रकाशक संघ है। यानी लेखक को अपने और अपने परिवार को पालना है, पर प्रकाशक का काम तो इकले का है नहीं। इससे प्रकाशक का हिस्सा अधिक न हो तो काम नहीं चल सकता। फिर प्रकाशक यह तो नहीं कि अपना मस्तिष्क नहीं लगाता। कौन कहे कि प्रकाशक को कम कल्पना और कम सूझ से काम लेना होता है ? तिसपर वह पूँजी भी लगाता है। कुछ कहिए आज पूँजी कम चीज नही है। इसलिए एक हिस्सा परिश्रम डालने की खातिर

प्रकाशक को मिले, तब ठीक रहे। यानी प्रकाशक और लेखक के लाभ में दो और एक का अनुपात संगत है।

मैं उस हिसाब के ब्यौरे में नहीं गया हूँ। और अभी तो आधे-आधे साझे की बात ही मानता हूँ। इस दृष्टि से, और बाजार की कमीशन-दर ३३% मानते हुए, लागत से तिगुनी से चौगुनी कीमत पुस्तक की होने पर २०% रॉयल्टी की दर सही उतरती है। कीमत का अनुपात लागत से। उससे कम ज्यादा होने पर रॉयल्टी की दर नीची-ऊँची की जा सकती है।

अब रहा पारिश्रमिक। पारिश्रमिक हर हालत में इतना होना चाहिए कि श्रमी उस श्रम लायक स्वास्थ्य और सुविधा रख सके। यानी लेखक का लेखन-कार्य उसके लिए दुस्सह न बन जाय, बल्कि सहज और प्रिय बना रहे। मुझे अनुवाद का अनुभव है। मिहनत के मैं तीन घंटे रोज गिनता हूँ। एक घंटे में छपी पुस्तक के औसतन् ढाई पृष्ठ से ज्यादा नहीं होते। फिर उसमें संशोधन की ज़रूरत भी रहती है। इस तरह तीन घंटे के छः पृष्ठ माने जा सकते हैं। कुछ दिन हारी-बीमारी या आराम के देने चाहिएँ, फिर श्रम के वर्ष भी जीवन में परिमित हैं। यह भी ध्यान में रखना है कि प्रकाशन के केन्द्र बड़े शहरों में होते हैं और इसलिए लेखक भी अधिकांश शहरों में रहते हैं। शहर में निपट रहने के लिए भी नक़द ६०)·७०) का ठिकाना चाहिए। वक़्त-बेवक़्त के लिए बचत अलावा। इस तरह छः पृष्ठ पर ३) रुपये से कम अनुवादक को मिलने का कोई कारण नहीं है। यदि चाहा जाता है कि अनुवादक अनुवाद के लिए और लायक़ शेष रहे, तो कम-से-कम ॥) प्रति पेज उसे मिलना चाहिए।

मौलिक लेखन अनुवाद से अलग तरह का काम है। अनुवाद में तबियत के तैयार होने का उतना सवाल नहीं। लेखन बे-तबियत असम्भव होता है। इसलिए उसका परिमाण भी अनुवाद जितना नहीं हो पाता। अतः उसपर कम-से-कम १) रु० प्रति पृष्ठ दिया जाना चाहिए।

मैं मानता हूँ कि पारिश्रमिक की दर का निर्णय केवल श्रम की ओर से वकालत करने पर नहीं प्राप्त होगा। उसमें खपत और कीमत आदि का भी विचार करना होगा। कम प्रकाशक हैं जो पाठ्य से अतिरिक्त पुस्तक का दो साल से कम में एक हज़ार का एडीशन खपा पाते हैं। पुस्तक का विषय गम्भीर हो तो बिक्री और कम होती है। ऐसी हालत में पारिश्रमिक का मान कम रखकर पुस्तक की कीमत सस्ती रखी और शायद खपत कुछ बढ़ायी जा सके। यह सब विचार प्रकाशक और लेखक के बीच संगत है और उस दृष्टि से पारिश्रमिक की दर में तरतमता हो सकती है। गम्भीर पुस्तक में श्रम का महत्व तो बढ़ जाता है पर उसका उत्पन्न परिमाण अपेक्षाकृत कम होता है और उसकी खपत भी सीमित होती है। इन अवस्थाओं में वैसे गम्भीर और मूल्यवान बौद्धिक परिश्रम का समुचित एवज़ मिलने में सदा कठिनाई रहती है। समस्या के इस पहलू पर अलग से विचार करना होगा। यानी वहाँ ॥) और १) का नियम नहीं चल सकेगा। वहाँ घाटा उठाकर भी प्रकाशन करना होगा और ऐसी संस्थाओं को सार्वजनिक या सरकारी सहायता पाने का हक़ होगा। पर सामान्यता से ॥) और १) पारिश्रमिक की न्यूनतम दर के तौर पर माने जा सकते हैं। छपे इकरारनामे की पीठ पर रॉयल्टी, पारिश्रमिक और दूसरे तरह के सहयोग-साझे को अमल में स्पष्ट करनेवाले नीति-नियम भी छपे रहें तो उत्तम हो।

अच्छा हो कि आप इस मसविदे पर लोगों से राय माँगें और कम-से-कम जहाँ तक 'सस्ता-साहित्य-मंडल' का सम्बन्ध है, उसे एक मान्य रूप पहना दें। फिर दूसरे और प्रकाशकों से उसे मनवाने का प्रयत्न किया जाय। वह न भी हो तो भी लेखक तो उससे लाभ ले ही सकेंगे।

७ दरियागंज, दिल्ली
२२-१०-४१

विनीत
जैनेन्द्रकुमार

प्रस्तुत प्रश्न

अश्लीलता को मिटाने के लिए व्यावहारिक सुझाव

श्लीलता और अश्लीलता के प्रश्न पर पक्ष-विपक्ष के विचारों की चर्चा न करते हुए मैं अपनी ही बात कहना चाहता हूँ कि यह प्रश्न नैतिक ही नहीं, सांस्कृतिक है और अच्छाई की उपासना का नाम नैतिकता है तथा अच्छाई का मान निरपेक्ष है। अच्छाई-बुराई का मूल भौतिक उपयोगितावाद में नहीं, मनुष्य के एक रहस्यमय और सर्वोपरि सत्ता से सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयत्न में है। इसलिए यद्यपि देश, काल और पात्र के अनुसार नैतिक मानदण्डों में फेरफार होता है, तो भी उसके अन्तिम आदर्श सार्वकालिक और सार्वभौतिक हैं। तो, इस प्रकार यह प्रश्न केवल नैतिक ही नहीं वरन् सांस्कृतिक भी है। जो सुन्दर है, वह श्लील होगा, जो असुन्दर है वह अश्लील होगा। समझ में नहीं आता कि अश्लील साहित्य के अर्थ क्या हैं? साहित्य सदैव सुन्दर होता है, जो सुन्दर नहीं वह और कुछ भी हो, साहित्य कदापि नहीं हो सकता। सौन्दर्य और अश्लीलता दो परस्पर-विरोधी वस्तुएँ हैं, ये एक साथ नहीं रह सकतीं—अश्लील घटना, अश्लील विचार और अश्लील कर्म हो पर अश्लील साहित्य नहीं हो सकता। साहित्य में केवल श्लीलता, सौन्दर्य का स्थान है; असुन्दर अश्लील एवं अमंगल— इनसे साहित्य को कोई प्रयोजन नहीं।

और सौन्दर्य देखनेवाले की आँख में नहीं, पढ़नेवाले के मस्तिष्क में नहीं दृश्य, वस्तु और साहित्यकार के साहित्य में होता है।

इस सौन्दर्य, इस मंगल की साधना जीवन में नैतिकता है और इसी का बौद्धिक रूप संस्कृति है। जो इस नैतिकता को उत्साहित करता है, उसको निरन्तरता प्रदान करता है, तथा जो इस संस्कृति को परिवर्द्धित, उत्साहित और प्राणान्वित करता है—वही श्लीलता है, वही साहित्य है। इसके अतिरिक्त जो कुछ है वह साहित्य और कला नहीं—साहित्य और कला की यथार्थता की कसौटी यही नैतिकता और संस्कृति है।

साहित्य शक्तिदाता है और 'शक्ति' क्या है? वह वस्तु जो जीवन को उत्कर्ष की ओर, उन्नति की ओर ले जाये—जो जीवन को प्रगतिशील बनाये रक्खे। हमारे जीवन के चिरादर्श सत्य, सौन्दर्य, मंगल और सुख हैं। इनके निकट ले जानेवाली दिशा प्रगति की दिशा है, इनसे दूर करनेवाली प्रतिगामिनी।

अश्लीलता का वास्तविक मूल है साहित्यकार का जीवन। साहित्य और जीवन की, अथवा साहित्यकार के साहित्य और उसके जीवन की, जबतक पृथक् सत्ता मानी जायेगी, कोई प्रयत्न, कोई राजतंत्र, कोई समाज-व्यवस्था, कोई केन्द्रीय संस्था अश्लीलता का मूलोच्छेद करने में समर्थ नहीं हो सकते। साहित्य और कुछ हो या न हो, वह अपने निर्माता के जीवन की अभिव्यक्ति अवश्य है। साहित्य रचनेवाले के लिए अपने जीवन में सौन्दर्य की साधना आवश्यक है, साहित्य जीवन से अलग कोई वस्तु नहीं।

अतएव, हमारा पहला काम वर्तमान और भावी साहित्यकारों में इस प्रकार की चेतना जाग्रत और प्रचारित करनी होगी।

तो इस कारण अश्लीलता-निवारण के लिए साहित्यकारों को अपने जीवन की ओर दृष्टिपात करना होगा। इसीसे सम्बन्धित दूसरा काम समाज की नैतिक और सांस्कृतिक प्रगति तीव्र करना है। यह कार्य चार प्रकार से सम्पन्न हो सकता है—

(एक) साहित्यकार अपने जीवन को सुन्दर और नैतिक बनाये। सौन्दर्य और नैतिकता को

उनके रूढ़िगत अर्थ में न लेकर, जिस अर्थ में हम समझ रहे हैं, उसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। साहित्यकारों का जीवन सुन्दर हो जाने से उनके द्वारा प्रसूत साहित्य अश्लील, शक्तिहीन या जीवनबाह्य हो ही नहीं सकता, फिर चाहे उसका सृजन किसी भी उद्देश्य से किया गया हो। समाज में चेतना (विशेषकर सांस्कृतिक) उत्पन्न करने का सबसे प्रभावशाली साधन साहित्य ही है।

(दो) इसके साथ-साथ एक केन्द्रीय संस्था द्वारा संगठित और संचालित छोटे-छोटे मण्डल हों जिनका कार्य संस्कृति और नैतिकता का यथार्थ तत्व साहित्यिकों और जनता को हृदयंगम कराना हो। इंग्लैण्ड के ऑक्सफर्ड आन्दोलन की भाँति यह भी बहुत-कुछ कर सकता है। आगामी सम्मेलन को इस सम्बन्ध में प्रस्ताव पास करना चाहिए।

(तीन) साहित्य को व्यापारिकता से यथासम्भव दूर करने का प्रयत्न होना चाहिए। हमारे जीवन में असुन्दरता और अमंगलमयता बहुधा भौतिक उपयोगितावाद के कारण आती है। फिर, यह तो स्पष्ट ही है कि व्यापार का मूल यही उपयोगितावाद है। व्यापारिकता से जितना दूर हमारा साहित्य होगा, कुत्सितता उसमें उतनी ही कम होगी। इसका एक साधन लेखक-संघ स्थापित करना है जिसके मूल में व्यापार-वृत्ति के स्थान पर सेवा-वृत्ति काम करे। इस योजना से कापीराइट, पारिश्रमिक, बिक्री आदि की समस्याएँ, जो साहित्य में व्यापारिकता का प्रवेश कराती हैं, अधिक स्वस्थ रूप में हमारे सम्मुख आवेंगी।

(चार) विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में 'संस्कृति-परिषद्' की स्थापना करना और उसके उसके द्वारा नवीन मस्तिष्कों में स्वस्थ प्रवृत्तियाँ जाग्रत करना।

इस सम्बन्ध में काम करने के लिए हमने इन दिशाओं का उल्लेख किया है, और वे व्यावहारिक हों, इसका ध्यान रखकर।

अवधकिशोर शरण

निजी पुस्तकालय का आकार

कोल्टन ने एक स्थान पर कहा है कि "**मित्रों की भाँति पुस्तकें थोडी और भले प्रकार चुनी हुई होनी चाहिए। मित्रों की नाईं हमें बार-बार उनके पास जाना चाहिए—क्योंकि सच्चे मित्रों की तरह वे कभी भी हमारी उपेक्षा नहीं करेंगी—शिक्षा देने में कभी भी नहीं रुकेंगी—कभी संतुष्ट नहीं होंगी। अच्छे मित्र प्राप्त करने के बाद उत्तम काम अच्छी पुस्तकों का प्राप्त करना है।**"

वस्तुतः थोड़ी-बहुत अपनी रुचि की पुस्तकों को जुटाकर बनाया हुआ छोटा-सा निजी पुस्तकालय यद्यपि सार्वजनिक पुस्तकालय की भाँति बृहत् और विशाल नहीं होता परन्तु उन इनी-गिनी पुस्तकों के ही अध्ययन में वह अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है जो करोड़ों कृत्रिम उपायों से भी नहीं मिल सकता।

इष्ट ग्रन्थकार

अपने छोटे-से पुस्तकालय के बनानें में मनुष्य प्रायः पूर्व-दूषित संस्कारों (prejudice) से काम लेता है। यदि किसी सु-लेखक की किसी कृति ने उसके हृदय को स्पर्श कर लिया है तो उक्त लेखक की सभी पुस्तकें उसके लिए अमृत का संदेश रखती हैं। अतः अपने इष्ट लेखक की ही कृतियों का समावेश वह अपने पुस्तकालय में कर लेता है। परन्तु किसी लेखक को अपना इष्ट ग्रंथकार बनाने से पहले उसे भले प्रकार परख लेना अच्छा है। इसमें उसके अन्य ग्रंथों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। और फिर इनके विषय में अपनी राय बनाने में अपनी बुद्धि और विवेक से काम लेना चाहिए।

मातृ भाषा

निजी पुस्तकालय बनाने की लगन प्रायः उन व्यक्तियों को होती है जिनका सम्पर्क अंग्रेजी या अन्य किसी विदेशी भाषा और उसके साहित्य से है या रहा हो। उनके संग्रहालय में बहुधा पुस्तकें विदेशी भाषा की ही होती हैं। उचित तो प्रतीत होता है कि निजी पुस्तकालय में उन्हीं भाषाओं

की पुस्तकों का संग्रह किया जाये जिनसे पाठक भली भाँति परिचित हो, और उन्हीं विषयों की पुस्तकों का समावेश हो जिनके प्रति पाठक की अभिरुचि हो; परन्तु इस नीति के परिणामस्वरूप एक ऐसे वर्ग की उत्पत्ति हो गयी है जो स्वयं अपने देश में परदेसी बन गया है। विदेशी भाषा के निरन्तर लगाव से वह न केवल अपनी जन्म-भूमि की भाषा में बोलते समय विदेशी शब्दों का सहारा लेता है बल्कि उसके विचार भी विदेशी साँचे में ढल जाते हैं। फल यह होता है कि उसका जीवन सामाजिक समस्याओं, राष्ट्रीय परिस्थितियों, देश की भावनाओं तथा लोक-हित की कामनाओं से बहुत दूर जा पड़ता है। यह अनिष्ट अवस्था उस वर्ग-विशेष व स्वदेश दोनों के लिए हानिकारक है। अतः देश के इस दूषित वातावरण को शुद्ध करने के लिए और विदेशी-राज्य द्वारा उत्पन्न इस स्थिति को मिटाने के लिए यह आवश्यक है कि हमारे संग्रहालयों की अत्यधिक पुस्तकें मातृ-भाषा में ही होनी चाहिएँ। इस प्रकार अपने देश-वासियों से सम्बन्ध नहीं छूटता और दूसरे निजी और जातीय उन्नति होती है। अन्य भाषाओं की पुस्तकों को आवश्यकतानुसार रखने में कोई विशेष हानि की सम्भावना नहीं है।

मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं की पुस्तकों के परिशीलन से ज्ञान की वृद्धि तथा अपने विचारों की व्यापकता अवश्य होती है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब हम किसी विदेशी भाषा का अपने ऊपर आधिपत्य नहीं होने देते और लेखक की प्रतिभा के चमत्कार के आगे अपने विवेक तथा बुद्धि के प्रयोग नहीं छोड़ देते। अन्यथा विदेशी भाषा का हमारे जीवन में श्रेष्ठ स्थान और लेखक के विचारों तथा अनुभवों पर अन्ध-विश्वास हमें दासता और अवनति की ओर ले जायेगी।

सामयिक साहित्य

सामयिक साहित्य की पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं के बिना भी निजी पुस्तकालय की सजीवता कम हो जाती है। जीवन के आधारभूत सत्यों का ज्ञान, जो हमें अतीत काल से महापुरुषों की लेखनी द्वारा प्राप्त हुआ है, निर्मूल है जबतक कि उनका जीवन की वर्तमान परिस्थितियों के प्रकाश में उपयोग न किया जाये।

सामयिक साहित्य का अध्ययन युग-युगांतर की प्रसिद्ध कलाओं और अमर-पुस्तकों को निर्जीव नहीं होने देता, बल्कि उनके जीवन में वृद्धि करता है। महाभारत में वर्णित १८ गीताओं में से श्री मद्भगवद्गीता ही लोक-प्रिय है, क्योंकि वह प्रत्येक युग में मानवधर्म की शिक्षा-दीक्षा देती है। उसका प्रभाव क्षणिक नहीं है परन्तु सामयिक पुस्तकों का स्थान वह है जो नदी की धारा में बहने का है।

किसी देश का साहित्य, बिना सामयिक पुस्तकों के अपनी प्रतिभा, चमत्कार तथा ओजस् को खो देता है; सामयिक पुस्तकें साहित्य के आधार के बिना नीरस तथा निरर्थक हैं। वास्तव में जीवन के लिए दोनों प्रकार की पुस्तकों की आवश्यकता है और निजी पुस्तकालय में दोनों को उचित स्थान प्राप्त होना चाहिए।

कुँवरकिशोर सेठ

नये रोग से सावधान

हर प्रकार की गति प्रगति नहीं। उद्देश्यमय गति को ही प्रगति कह सकते हैं। सब प्रकार के पुरातन रूपों का नाश करनेवाले मनुष्य में केवल वेग होगा तो वह केवल नाश ही कर सकेगा। उसमें वेग के साथ विवेक भी होगा तो उस विनाश में से नूतनता की रचना करेगा। नवरचना के लिए वेग की भी आवश्यकता है, शान्ति की भी; समाज की कायापलट ऐसे ही युवक कर सकते हैं, जिन्होंने पहले अपनी कायापलट कर ली हो। ऐसे शांत, ठंडी शक्ति रखनेवाले, अपनी कायापलट कर चुकनेवाले युवकों के जुटे बिना सामाजिक क्रान्ति शक्य हो ही नहीं सकती। समाज में परिवर्तन उत्पन्न करने-

वाले कुछ इने-गिने व्यक्ति ही होते हैं, और ये व्यक्ति जितने महान् होंगे, परिवर्तन भी उतने ही महान् होंगे। साधारणतः हमारी सामाजिक क्रान्तियाँ उधार लिये हुए विचारों पर चलती हैं।

विचार भी एक प्रकार का संक्रामक रोग है। बोलशेविज्म जो सिद्ध करता है उससे बिलकुल विपरीत जब हिटलरवाद सिद्ध करता है, तब हमारा दिमाग़ चक्कर में पड़ जाता है; क्योंकि हमारी सामाजिक क्रान्ति हमारी संस्कृति के गहन अनुशीलन में से उत्पन्न होकर आधुनिक जीवन-प्रणाली से समन्वय साधनेवाली क्रान्ति नहीं है। ऐसी क्रान्ति समाज की काया पलट दे और ऐसे क्रान्तिकारी संस्कृति के इतिहास से गहरे अनुशीलन-कर्त्ता, समाज-शास्त्री, मानस-शास्त्र के उच्च ज्ञाता और वेग की उपेक्षा शक्ति में तथा आवेश की उपेक्षा सामर्थ्य में अधिक श्रद्धा रखनेवाले होते हैं। वे अपने विचार अपने ढंग से व्यक्त करते हैं। उनमें केवल दूसरे के विचारों की छाया नहीं होती। भारत को वास्तविक क्रान्तिकारियों की आवश्यकता है, जो मृत्यु का आह्वान करना जानते हों तथा प्राणवायु फूँक देना भी जिन्हें आता हो। जो-जो पुरातन रूप नवजीवन में स्थान न पा सकें और जो रूप संस्कृति के मौलिक आधार न होकर बाद के ऐतिहासिक में अकस्मात के रूप ही हों वे सब नष्ट हो जायें, इसीमें समाज का कल्याण है; परंतु जो रूप संस्कृति के आधार-स्तम्भ हैं वे केवल पुरातन होने के कारण नष्ट कर दिये जावें, ऐसा करनेवाला युवक युवक नहीं; क्योंकि उसे अपने देश की जलवायु का ही भान नहीं।

बीसेक वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड से लौटनेवाले कुछ तरुण वृद्धों ने अपने देश के सर्वपुरातन रूपों को नष्ट कर डालने की इच्छा प्रकट की थी। उनमें वास्तविक तारुण्य न था, न उनको अपने देश की जलवायु का ज्ञान था, इसलिए उन्होंने जिन क्षेत्रों में विनाश के बीज बोये उन क्षेत्रों में अपने और समाज के बीच अमिट खाई खोद ली। वे ऊल में से निकलकर चूल में फँस गये। उन्होंने वे ही परिवर्तन किये जो यथार्थ में परिवर्तन ही न थे। इंग्लैण्ड से वापस लौटनेवाले तरुण वृद्धों ने दस-बीस वर्ष पहले जो किया वही आज के यूरोप न गये हुए पर वहाँ की नकल पर निभनेवाले तरुणवृद्ध न कर डालें, यही हमें देखना है। वास्तविक क्रान्ति वास्तविक तथा अपना जीवन चाहेगी। विचार-शैली भी शुद्ध तथा ओजस्वी होनी चाहिए। तरुण-समुदाय जिन-जिन ढर्रों को सच्चे दिल से तोड़ेगा उनका उदय फिर नहीं होगा; परंतु जिन ढर्रों को नष्ट करने का आडम्बर केवल समाजों के शोरगुल से होगा वे दुगुने भयंकर रूप में प्रकट होंगे। पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ उठाया हुआ एक भी कदम न तो क्रान्ति को आगे बढ़ायेगा, न उसको जन्म ही देगा। तरुण विद्यार्थी तथा तरुण भारतवासी इतना ध्यान में रक्खें कि केवल भयंकर ग़रीबी और वास्तविक सादगी का आलिंगन किये बिना इस देश की जलवायु में अथवा किसी भी देश के वातावरण में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। सब प्रकार का अनुकरण फिर चाहे वह वेष का हो या विचार का, अथवा रहन-सहन का—यौवन का अवसान सूचित करता है; और ऐसे अवसान-प्राप्त हज़ारों व्यक्ति भी क्यों न इकट्ठे हो जायें, उनसे एक भी तरुण आगे नहीं बढ़ सकता। अतः तरुण मानस में से विवेकहीन अनुकरण का निष्कासन हो जाना चाहिए, क्योंकि यह नये रोग का चिन्ह है।

'धूमकेतु'

अनु०—**प्रेमांशु**

कसौटी पर

भारत के समाज और इतिहास पर स्फुट विचार : लेखक—श्री श्रीप्रकाश; प्रकाशक—ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी; २०×३० सोलह पेजी साइज; पृष्ठ १७९, मूल्य ॥।)

श्री श्रीप्रकाशजी एम० एल० ए० एक प्रमुख साहित्यिक ही नहीं हैं उनकी अपनी मौलिक विचार-प्रणाली भी है। अपने आसपास, अपने लोगों और अपने देश की जो हालत वह देखते हैं उसका ऊहापोह करते और अपने निष्कर्ष निकालते हैं। विदेश में वह रहे और पढ़े हैं, साथ ही बहुश्रुत एवं बहुपठित भी हैं; इसलिए वहाँ की अच्छी-बुरी बातों का भी उन्हें ज्ञान है। दोनों के अनुभव से अपने देशवासियों को कुछ लाभ पहुँचाने की उनकी वृत्ति है। प्रस्तुत पुस्तक वस्तुतः उनकी एक लेखमाला है, जिसमें उन्होंने ‘अपने देशवासियों की आन्तरिक प्रकृति को दृष्टि में रखते हुए ऐतिहासिक घटनाओं का अध्ययन कर स्थिति को समझाने का प्रयत्न किया है और जातीय दोषों का निरूपण करते हुए उनके निवारण के उपायों को बतलाने की भी चेष्टा की है।’

इस पुस्तक में देश के इतिहास से लेकर देश की सभी प्रवृत्तियों और विभिन्न धर्मों की अपनी-अपनी विशेषताओं तथा भारत में हिन्दू-मुसलमानों के सम्बन्ध, अंग्रेज़-भारतीयों के संबंध, अंग्रेज़ी राज में भारत के नव्यरूप, राष्ट्रीयता, शासन-सुधार, महात्मा गांधी, युद्ध आदि सभी जानने योग्य बातों का सिंहावलोकन एवं विवेचन करते हुए उन्होंने यह बतलाने की चेष्टा की है कि भारतवासी समूहवादी न होकर व्यक्तिवादी रहे हैं, जिससे वे इस लोक के बजाय परलोक की ही ज्यादा फ़िक्र करते हैं; इसीलिए यहाँ भ्रातृत्व-वादी इस्लाम का प्राधान्य हुआ और बाद में फ़िर ईसाई अंग्रेज़ों की जड़ें मज़बूत हुईं। उनके खयाल में हमारी व्यक्तिवादी दृष्टि का ही यह कारण है कि नागरिकता की दिशा में हमने कोई प्रगति नहीं की। अतः घुमा-फिराकर वह इसी बात पर आते हैं कि हमारे अन्दर नागरिकता की, सामूहिक और राष्ट्रीय प्रकृति की भावना आनी और बढ़नी चाहिए। उन्हीं के एक पत्र के शब्दों में कहें तो—‘मैं अपने देशवासियों की प्रकृति से बहुत ही परेशान रहा हूँ। जिस तरह व्यक्तिगत प्रकृति व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करती है, उसी प्रकार सामूहिक और राष्ट्रीय प्रकृति सामूहिक और राष्ट्रीय जीवन को भी प्रभावित करती हैं, और देशों के इतिहास का विकास उसके अनुसार होता है। साथ ही मैं यह भी मानता हूँ कि यत्न करने पर प्रकृति में भी परिवर्त्तन हो सकता है और देश के लिए मैं आवश्यक समझता हूँ कि हम अपनी राष्ट्रीय प्रकृति में परिवर्त्तन करें जिससे हम अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकें और वर्त्तमान दुर्व्यवस्था से छुटकारा पायें।’’ लिखने की दृष्टि से नहीं बल्कि इस तीव्र भावना के कारण ही यह पुस्तक लिखी गयी मालूम पड़ती है, जिसमें लेखक के अपने दृष्टिकोण से सर्वथा निष्पक्ष विवेचन है। पुस्तक में उपन्यास की-सी रोचकता है, साथ ही अपने देश से सम्बन्धित प्रारम्भिक जानकारी सभी बातों की इससे मिल जाती है। इस दृष्टि से, हमारे खयाल में, यह ऐसी पुस्तक है जो सभी नवयुवकों के हाथों में जानी चाहिए। और जिसका अन्य देसी भाषाओं में भी उलथा हो तो वह उपयोगी ही होगा।

मुकुट०

नटी की पूजा (नाटक) : लेखक—स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुर; अनुवादक—श्री भगवती प्रसाद चन्दोला: प्रकाशक—विश्वभारती-ग्रन्थालय; २१०, कार्नवालिस स्ट्रीट कलकत्ता; पृष्ठ-संख्या ९४; मूल्य १)

विश्वकवि का यह नाटक बुद्ध-काल से संबद्ध है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें केवल स्त्री-पात्र हैं, पुरुष-पात्र नहीं। महाराज बिम्बिसार की हत्या और अजातशत्रु का पुनः धर्म-ग्रहण इसकी अन्तर्कथा है। नाटक की कथा-वस्तु

बौद्धधर्म के प्रति विद्रोह के रूप में प्रस्फुटित होती है, क्योंकि बौद्धधर्म की भिक्षु-भिक्षुनी प्रथा ने नारी के मूल्य को शून्य कर दिया था, उसकी गृहस्थी उसने मिट्टी में मिला दी थी। विद्रोह की नेत्री लोकेश्वरी है और राजकुमारियाँ उसकी सखिनें हैं। प्रख्यात सुन्दरी नर्तकी श्रीमती भगवान बुद्ध की भक्त है; उनके धर्म में उसकी श्रद्धा और आस्था अटूट है। लोकेश्वरी श्रीमती की पूजा में विघ्न डालती है, उसका अपमान करती है उसके प्राण तक लेने का षड्यन्त्र रचा जाता है। श्रीमती का बलिदान लोकेश्वरी का हृदय-परिवर्तन करता है और वह भी 'बुद्धं शरणं गंच्छामि' का मन्त्र उच्चारण करने लगती है। एक रत्नावली को छोड़कर शेष सभी राजकुमारियाँ श्रीमती की हत्या से प्रभावित होकर बौद्ध-धर्म की दीक्षा ले लेती हैं।

नाटक में श्रीमती के गीत विश्वकवि की कला के अत्यन्त सुन्दर नमूने हैं। **'पथे देते डेके छिले मोरें!'** तो बहुत ही सुन्दर गीत है।

भगवतीप्रसाद चन्दोला ने इसे बंगला से हिंदी में अनूदित किया है और अनुवाद प्रायः अच्छा है, परन्तु 'हिन्दीपन' से रहित है। कहीं-कहीं वाक्य-रचना भी शिथिल है। इसीलिए इसे प्रामाणिक अनुवाद नहीं माना जा सकता। परन्तु रवीन्द्र-साहित्य के प्रेमी पाठक इसे अवश्य पढ़ें।

कान्तिचन्द्र सौनरिक्सा

म्यूनिसिपल शासन : **लेखक और प्रकाशक—श्री अम्बाप्रसाद तिवारी, उज्जैन; दौलतगंज, मूल्य १) रु०**

स्थानीय शासन ही स्वराज्य तक पहुँचने की पहली सीढ़ी है, इसलिए हरेक नागरिक को इस विषय का ज्ञान होना चाहिए। इसीलिए समय की प्रगति के साथ म्यूनिसिपल कमेटी के अधिकारियों, सदस्यों तथा नागरिकों की कार्य-पद्धति, अधिकार और कर्तव्य जानने की आवश्यकता भी बढ़ गयी है। 'म्यूनिसिपल शासन' के लेखक ने म्यूनिसिपैलिटी का स्वरूप, रचना, चुनाव, मताधिकारी की योग्यता, नियन्त्रणाधिकार, कमेटी के अधिवेशन और उनका जाब्ता, म्यूनिसिपल कोष, विविध म्यूनिसिपल टैक्स, सार्वजनिक स्वास्थ्य, इमारतों के नक्शों की मंजूरी, गंदे पानी की सफ़ाई, रोशनी आदि तथा कमेटियों के विरुद्ध नालियों आदि की विस्तार से चर्चा की है। लेखक अपने विषय से जानकार ज्ञात होता है।

यदि कमेटियों के संगठन और नियमों का उल्लेख करते हुए कुछ अप्रचलित नियमों के से साथ उदाहरण भी दे दिये और पुस्तक को प्रेस में देने से पहले उसको किसी हिन्दी के अच्छे जानकार से दिखला लिया जाता तो अच्छा होता। भाषा में प्रवाह की कमी है और 'दीगर मुलाजिमान' 'मीर मजलिस' 'शोरआम', 'मुश्तहरी' आदि शब्दों को तो शायद हिन्दुस्तानी के समर्थक भी पसन्द न करेंगे। फिर भी पुस्तक नागरिकों के काम की है।

कृष्ण

बिहार के दर्शनीय स्थान : **लेखक—श्री गदाधरप्रसाद अम्बष्ठ, विद्यालंकार; प्रकाशक—श्री देवकुमार मिश्र, ग्रन्थमाला-कार्यालय बाँकीपुर; मूल्य १।); पृ० सं० २०८**

प्रान्तीय स्वायत्त शासन के आरम्भ के साथ देश में जहाँ प्रान्तीयता की भावना बढ़ी है, वहाँ दृष्टि अन्तर्मुखी हो गयी है और आत्मपरिचय तथा आत्मज्ञान प्राप्त करने की लालसा भी उत्कट हो गयी है। **'बिहार के दर्शनीय स्थान'** इसी प्रवृत्ति का परिणाम है।

भारत के ज्ञान और इतिहास का आरम्भ बिहार से होता है। देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद के शब्दों में 'बिहार भारत का बाँया फेफड़ा है।' अतः बिहार का दर्शन भारतीय राष्ट्र के बाँयें फेफड़े का ज्ञान प्राप्त करना है।

लेखक ने इसको यत्र-तत्र बिखरे हुए वृत्तान्तों के आधार पर ही लिखा है। इस प्रकार उसने ऐतिहासिक बुद्धि से काम नहीं लिया है, केवल दन्तकथाओं और किम्बदन्तियों को ही आधार माना है और यदि कोई कथा दो जगहों के बारे में सुनी जाती है तो उस को दोनों जगह

लेखक ने लिख दिया है ।

पुस्तक में प्रसिद्ध धार्मिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, औद्योगिक और प्राकृतिक स्थानों के अतिरिक्त बिहार की बड़ी-छोटी सब जमीन्दारियों का संक्षिप्त इतिवृत्त दिया गया है । प्रायः सर्वत्र सरकारी इमारतों और स्कूलों का जिक्र किया गया है, मगर दानापुर के वर्णन में स्कूलों का जिक्र तक नहीं है, यद्यपि दानापुर के तीन हाई स्कूल और एक राष्ट्रीय विद्यालय मौजूद हैं । इसी प्रकार लेखक नें ईसाई मिशनरियों की संस्थाओं का यत्र-तत्र उल्लेख किया है, मगर आर्यसमाज तथा अन्य सामाजिक सुधार करनेवाली समाजों की संस्थाओं का निर्देश करना उचित नहीं समझा है । यदि ऐसे स्थानों को पुस्तक में नहीं दिया जाता, जिनके बारे में लिखा गया है—रेलवे के अंग्रेज कर्मचारियों की यहाँ बहुत सी कोठियाँ हैं, यहाँ थाना और डाक-बँगला है, यहाँ बंगाली व्यापारी रहते हैं, इस स्थान में थाने का सदर आफिस है—तो पुस्तक की उपयोगिता में कोई अन्तर न आता । इन स्थानों के आजाने से बिहार का भूगोल जानने की इच्छा रखनेवालों को तो अवश्य लाभ होगा मगर इन्हें दर्शनीय स्थान कहना ग़लत है ।

लेखक ने सर्वत्र विहार लिखा है, बिहार नहीं । 'अपनी सलतनत जमाना चाहा' और 'उनको हल्दीवारी तक पीछा किया' आदि भाषा के प्रयोग चिन्तनीय हैं । एकाध जगह वह अटपटी भी होगयी है । लेखक ने दीघा और दीघाघाट को एक मानकर भयंकर भूल की है । मगर इन बातों से पुस्तक की उपादेयता में विशेष अन्तर नहीं पड़ा है ।

हाँ, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों के ५[illegible] चित्र देने से पुस्तक की शोभा बढ़ गयी है । परन्तु विहार का एक बड़ा चित्र पुस्तक में दे दिया जाता, जिसमें कि पुस्तक में आये अधिकांश स्थान दिखाये गये होते, तो अच्छा रहता ।

अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

लगन (उपन्यास) : लेखक—श्री वृन्दावनलाल वर्मा; प्रकाशक—गंगा ग्रन्थागार लखनऊ; मूल्य ।।), पृष्ठ-संख्या १२८ ।

ग्रामजीवन-सम्बन्धी यह कथा झाँसी जिले की बेतवा नदी के दोनों ओर बसे हुए बजटा और बरौल नामक दो पुराने गाँवों को लेकर शुरू हुई है । दो अच्छे खाते-पीते परिवार रहते थे । बरौल में लड़कीवालों का घर था और बजटा में लड़केवालों का । लड़कीवालों ने दहेज में सौ भैंसें लड़केवाले को देने का वचन दिया था, पर दीं नहीं । इसपर भाँवरें पड़ जाने पर भी लड़के के पिता बिना बहू की बिदा कराये बरात वापस ले आये और उधर लड़कीवालों ने भी लड़की का दूसरा ब्याह करने का संकल्प किया और एक लड़के को तलाश भी किया, जिसका चरित्र अच्छा न था । इस पुनर्विवाह में सबसे अधिक इच्छा लड़की के बड़े भाई की थी—पिता लड़केवालों की ओर से निराश हो गये थे, सो पुत्र की हाँ में हाँ मिलानी पड़ी । पर 'लगन' का नायक देवसिंह और नायिका रामा एक दूसरे को चाहते थे । देवसिंह सोचता कि उसकी विवाहिता पत्नी उसके जीते जी एक दूसरे पुरुष कैसे हो जाये ? रामा भी सोचती वह एक की हो चुकी है । और देवसिंह प्रेम में पागल होकर बरसाती रातों में बेतवा का लम्बा फाँट काटकर रामा से मिलने जाने लगा । एक दिन पकड़ा गया, और अन्त में दोनों घरानों ने अपनी ग़लती स्वीकार कर ली । रामा देवसिंह के यहाँ चली गयी । यही 'लगन' है ।

वर्माजी का यह उपन्यास काफ़ी अच्छा है । कहानी की गति अन्त में जाकर कुछ हलकी पड़ गयी है, पर वह अखरती नहीं है । भाषा, भाव, वार्तालाप और चरित्र मँजे हुए और हृदयग्राही हैं ।

निरंजन

भूगोल का 'आसाम-अंक' : भूगोल कार्यालय प्रयाग; मूल्य १)

'आसाम अंक' में विभिन्न उदाहरणों तथा ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर लेखक ने आसाम

प्रान्त को अनेक दृष्टिकोणों से देखा है। उसने पौराणिक घटनाओं के आधार पर सिद्ध किया है कि पहले इस प्रान्त का नाम 'कामरूप' देश था; किन्तु बाद में वहाँ के किसी शासक के नाम पर इसका नाम 'आसाम' हो गया। वहाँ की सीमा और क्षेत्रफल, भूमि, प्राकृतिक तथा राजनीतिक विभाग, वहाँ के निवासी पार्वत्य तथा सीमान्त जातियाँ, उनके रहन-सहन, बोली, भाषाएँ, उनके मत-मतान्तर सामाजिक प्रथाएँ और परम्पराएं, जलवायु, जंगल, वनस्पति तथा खनिज-सम्पत्ति, उद्योग-धन्धे-चाय का व्यवसाय, वहाँ के आवागमन के साधन, प्रसिद्ध तथा धार्मिक स्थानों और महापुरुषों का वर्णन इसमें है।

साइज़ अच्छा नहीं है। संग्रहणीय साहित्य किताबी साइज़ (२०×३०×१६ या रॉयल साइज) में अधिक ठीक रहता है।

भूगोल तथा इतिहास के विद्यार्थियों के अतिरिक्त राष्ट्र-सेवियों तथा कार्यकर्त्ताओं को भी अपने देश के एक प्रांत की जानकारी प्राप्त करने के लिए 'भूगोल' का यह अंक अत्यन्त लाभदायक होगा। हम अन्य प्रान्तों के सम्बन्ध में भी 'भूगोल' ऐसे ही विशेषांकों की प्रतीक्षा करते हैं। म. श.

कुछ सहयोगियों के विशेषांक—'प्रजा-सेवक' का राजस्थान के साप्ताहिकों में प्रमुख स्थान है। उसके 'गांधी-जयन्ती अंक' में सर्वश्री जैनेन्द्र, रामनाथ 'सुमन', किशोरलाल मश्रुवाला, काशिनाथ त्रिवेदी; व्य० दा० पुस्तके आदि गांधी-मत के विचारकों के विचारपूर्ण लेख हैं। सामयिक कविताओं से अंक और भी संग्रहणीय बन गया है।

'हंस' ने 'कविता-अंक' निकाला है; जिसमें सर्वश्री गुलाबराय, हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशचंद्र गुप्त, नगेन्द्र आदि आलोचकों के कविता पर आलोचनात्मक निबन्ध हैं, परंतु अंक से कविता के समस्त अंगों पर प्रकाश नहीं पड़ता। कविताएँ अधिकांश पुरानी हैं।

हाँ, कहानी का 'नववर्षांक' मज़ेदार है। उसमें 'मेरी कलम का राज़!' पढ़ने जैसा है, परन्तु उसमें जैनेन्द्र, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, 'अज्ञेय', यशपाल आदि अच्छे कहानी-लेखकों के 'राज़' नहीं मिलते। कहानीप्रेमियों के पढ़ने की चीज़ है।

'देशदूत' (इलाहाबाद) का 'दीपावली-विशेषांक' और तिरहुत-समाचार का 'विजयांक' भी अच्छे निकले हैं।

'आवाज़' (बम्बई) 'का चित्रपट-अंक' तो सिनेमाइयों को तारक-तारिकाओं से परिचय करानेवाला है।

'विश्ववन्धु' (कलकत्ता) ने अपना जन्म ही 'पूजा-विशेषांक के' रूप में लिया है। सामयिक लेखों के साथ काव्य-परिहास आदि की सामग्री भी अच्छी जुटायी गयी है, इस नवजात शिशु का हिन्दी जगत् स्वागत करेगा।

'योगी' (पटना) नें अपना 'उद्योग-अंक' निकाला है, जिसमें जहाज, कर व्यवस्था, ग्रामोद्योग, लेनदेन, सिनेमा, रेशम, खनिज, चीनी, ऊन, पाट, ओषधि, खादी, चमड़ा, कागज़ आदि उद्योगों पर अपने-अपने विषय के अधिकारियों के लेख हैं। 'योगी' के इस साहस की दाद कौन न देगा?

हिन्दी मासिकों में 'प्रदीप' पुनरुज्जीवित हुआ है। श्री जगदीश एम० ए० इस बार अकेले उसे लेकर आये हैं। २ अंक अभी देखे हैं, जिनमें बीसवीं सदी राजनीति के विद्यार्थी को यथोचित भोजन देने का प्रयत्न स्पष्ट है।

महायुद्ध ने आज सारे यूरोप को अपना रंगमंच बना लिया है और एशिया के देशों—विशेषत: भारतवालों को अब उसकी गतिविधि से अपरिचित नहीं रहना चाहिए। युद्ध में लगे हुए विदेशों सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य बातों से भरे लेखों के कारण 'माधुरी' का 'विदेशांक' अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विद्यार्थी के ही नहीं, प्रत्येक शिक्षित हिन्दी-प्रेमी के पढ़ने योग्य है।

जीवन-समस्याएँ

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने हरिजन-उद्योग-शाला दिल्ली में दीक्षांत संस्कार करतेसमय विद्यार्थियों को निम्नलिखित उपदेश दिया——

'शरीर-परिश्रम से जीवन-निर्वाह करने का बड़ा भारी महत्त्व है। जीवन भी एक शाला ही है जो कुछ सीखा है, उसे आयुभर वर्तना है। ज्ञान का भंडार अनन्त है उसको पूर्णतया प्राप्त करने के लिए तो एक जन्म अवधि भी पर्याप्त नहीं, इसलिए जीवन-निर्वाह के धंधों में पड़कर अपनी दिनचर्या को न छोड़कर शरीर, बुद्धि और आत्मा के विकास के लिए निरंतर उद्योग करते रहना चाहिए और अपने आपको संयम में बाँधे बिना किसी भी कार्य को सिद्ध करना कठिन है।

जहाँ कहीं छूतछात होते देखो, जहाँ हरिजनों के साथ अत्याचार होते देखो, उसका विरोध करके उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करना और इसमें जो कुछ कष्ट आयें उनको वीरता से सहन करना।

अहिंसात्मक जीवन का एक अनिवार्य अंग सेवा है। सेवा-मंडल बनाकर गाँवों में सफ़ाई करके, मेहमानों का अतिथि-सत्कार करके और अनेक ढंगों से आपको सेवा करनी चाहिए। जो बातें आपको यहाँ सिखायी गयी हैं उन्हें दूसरों को सिखाना आपका व्रत होना चाहिए। शिक्षा एक ऋण है जो दूसरों को दान देकर ही चुकाया जा सकता है।

और सवर्ण भाइयों ने जिन हरिजन भाइयों के साथ रहकर जीवन बिताया है उनका जीवन ही एक ऐसी पाठ्य पुस्तक है, जिससे अधिक शिक्षा आपको अन्य किसी पुस्तक से नहीं मिल सकती।'

शंका-समाधान

प्रश्न—जुलाई के 'जीवन-साहित्य' में एक ब्राह्मण कन्या और एक हरिजन-युवक के विवाह करने के निश्चय का जिक्र है। तो क्या आप इस निश्चय को अनुचित समझते हैं? अनुचित तो डराना-धमकाना और अनुमति प्राप्त करने के लिए ज़ोर-ज़बरदस्ती करना है। बड़े-बूढ़ों की सम्मति की क़द्र करना, उनकी अनुमति प्राप्त करना अच्छा है, किन्तु यदि वे लोग अनुमति न दें और उनके अनुमति देने में कोई समुचित कारण प्रतीत न हो तो भी गुप्त रीति से विवाह कर लेना क्या अनुचित है?

उसी में आपने विवाह की और शर्तों के साथ कुल-शील और गृह-व्यवस्था की दृष्टि भी आवश्यक बतायी है और कहा है कि 'जात-पाँत का महत्त्व अगर कुछ है तो सांसारिक या कौटम्बिक दृष्टि से ही; प्रेम और आत्मीयता का उससे कोई खास ताल्लुक नहीं।' प्रेम और अनुमति की बात समझ में आ सकती है किन्तु कुल-शील का मतलब क्या है? यदि इसका मतलब जाति-पाँति से है तो आप स्वयं मानते हैं कि जाति-पाँति का प्रेम और आत्मीयता से कोई खास ताल्लुक नहीं। फिर तो कुल-शील और गृह-व्यवस्था का कोई कारण नहीं रह जाता।

मेरा खयाल है कि आप उस अन्तर्जातीय-विवाह से तो सहमत हैं जो सवर्ण-सवर्ण के बीच हो किन्तु उससे नहीं जो सवर्ण-हरिजन के बीच हो। क्या मेरा यह खयाल ग़लत है?

उत्तर——मेरी राय यह है कि लड़के-लड़की अपने माता-पिता या पालकों के द्वारा सगाई का प्रस्ताव रखावें। उनसे छिपाकर सगाई-विवाह करलेने में उनके प्रति द्रोह के अलावा कायरता भी है। यदि माता, पिता या पालक का पक्ष अनैतिक हो तो ऐसी विशेष अवस्था में इसमें अपवाद हो सकता है।

कुल-शील और गृह-व्यवस्था से मेरा मतलब जात-पाँत से नहीं, बल्कि संस्कारों की एकता व समानता से है। सवर्ण व हरिजनों के बीच विवाहों का मैं विरोधी नहीं हूँ। ह० उ०

प्रगति की ओर

हरिजन-उद्योगशाला, दिल्ली

अ० भा० हरिजन-सेवक-संघ की संरक्षता में यह औद्योगिक शिक्षण-संस्था ६ साल (सन् १९३६) से काम कर रही है। यहाँ विशेषतः हरिजन तथा कुछ सवर्ण बालकों को दस्तकारी सिखायी जाती है और तीन साल में उन्हें अपने उद्योगविशेष द्वारा स्वतन्त्रता से जीवन-निर्वाह करने के योग्य बना दिया जाता है। इस शिक्षण में अर्थ-स्वावलम्बन, ग्रामसेवा तथा साहित्य-ज्ञान का भी ध्यान रखा जाता है। कताई अनिवार्य है और उसका शास्त्रीय ज्ञान भी कराया जाता है।

१ अक्तूबर १९४० से ३० सितम्बर १९४१ के साल में संयुक्तप्रान्त, बिहार, आसाम, मध्यप्रान्त, मध्यभारत, राजपूताना, पंजाब, गुजरात, सिन्ध, दिल्ली आदि भिन्न-भिन्न प्रान्तों से आये हुए ८० विद्यार्थियों ने बढ़ई, दर्जी, चर्मकार हाथ-कागज़ बनाने और जिल्दसाज़ी की औद्योगिक शिक्षा पायी, जिनमें १२ हरिजनेतर जाति के हैं।

इन विभागों में बने हुए माल की बिक्री से ५७९१।)।। प्राप्त हुए और कुल खर्च ८४४९≡)। हुआ; १५६।।≡) का घाटा रहा, जो पिछले वर्ष के घाटे (८६)।।) से कम रहा। आशा की गयी है कि अगले वर्ष ये विभाग स्वावलम्बी ही नहीं हो जायेंगे बल्कि लाभ भी दे सकेंगे। नये वर्ष से हिन्दी-साहित्य की परीक्षाओं की पढ़ाई का भी प्रबन्ध किया गया है।

कई सेवाभावी दानियों तथा युक्तप्रान्तीय व बिहार-सरकार की ओर से १०-१० की ३९+१०+२=५१ छात्रवृतियाँ भी मिली हैं।

दीक्षित होकर गये हुए विद्यार्थियों के प्राप्त पत्रों से प्रकट होता है कि वे अपनी जीवका कमाते हुए यथाशक्ति श्रम तथा समाज की सेवा भी कर रहे हैं।

राजस्थान बालिका-विद्यालय, वनस्थली (जयपुर)

इस विद्यालय तथा छात्रावास को स्थापित हुए ६ वर्ष हो चुके हैं। भारतीय संस्कृति और विशुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर और कम-से-कम व्यय पर बालिकाओं को रखकर सर्वांग-सम्पूर्ण शिक्षा देनेवाला यह राजस्थान का एकमात्र विद्यालय है।

इसमें पुस्तकीय शिक्षा के अतिरिक्त (अ) नैतिक और व्यावहारिक शिक्षा, (आ) खेल व व्यायाम, (इ) घर के काम-काज और (ई) कला और उद्योग की अनिवार्य शिक्षा दी जाती है। मासिक शुल्क १२) तथा १०) प्रति बालिका है।

छठे वर्ष (अक्तूबर १९४० से सितम्बर १९४१ तक) में राजपूताना, मध्यभारत, संयुक्तप्रान्त, बिहार, दिल्ली, पंजाब, मध्यप्रान्त, गुजरात, मद्रास से आयी हुई १६ वर्ष तक की उम्र की १८० भिन्न-भिन्न जातियों की अविवाहित बालिकाओं ने शिक्षा पायी।

परीक्षा की व्यवस्था इंटरमीडियट तक की है। इसके अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य की अन्य परीक्षाएँ दिलाने की भी व्यवस्था है।

संस्था की ओर से 'वीरबाला' त्रैमासिक पत्रिका, छात्रा-परिषदें, छात्रा-समिति आदि वाद-विवाद तथा सेवाकार्य सम्बन्धीप्रवृत्तियाँ भी चलायी जाती हैं।

हरिजन-उत्थान-समिति, कलकत्ता,

यह संस्था १५ वर्ष से कलकत्ते के हरिजनों में मुख्यतः शिक्षाप्रचार और समय-समय पर उनकी सामाजिक, आर्थिक और अन्य जीवन-सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूर करने का काम कर रही है।

१९४०-४१ में समिति की ओर से १५ दिन और ११ रात की कुल २६ पाठशालाएँ चलती रहीं, जिनमें १०५० हरिजन तथा सवर्ण बाल-वयस्क व्यक्तियों ने शिक्षा पायी।

इसके द्वारा बालचर (स्काउट) मण्डल; हरिजन बस्तियों की सर्वे, उद्योग-शिक्षण, 'हरिजन पत्रिका' नामक हस्तलिखित मासिक पत्र आदि प्रवृत्तियाँ भी चलायी जा रही हैं।

हिन्दी की हलचलें

मध्यभारत हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, महू

१०, ११, १२ अक्तूबर को महू में श्री पं० सूर्यनारायण व्यास के सभापतित्व में मध्यभारत हिंदी-साहित्य-सम्मेलन हुआ। महू-वालों ने उसे प्रथम सम्मेलन माना जबकि इंदौर में पहला अधिवेशन श्रीमान् खिलचीपुर-नरेश की अध्यक्षता में १९२५ ई० में हो चुका था।

सर सेठ हुकमचन्दजी ने अपने उद्घाटन-भाषण में प्रांतीय तथा जिला-संगठनों की आवश्यकता पर जोर देकर अपील की कि 'हर एक राज्य में हिन्दी से संबध रखनेवाली एक संस्था हो और समस्त राज्यों के हिंदी-संबंधी कार्य को एक सूत्र में पिरोने के लिए मध्यभारत हिंदी-साहित्य सम्मेलन की स्थापना की जाये।' आगे उन्होंने कहा कि भाषा इने-गिने विद्वानों की नहीं, जनता की चीज है। उसे सर्वसाधारण से दूर की वस्तु बनाना उचित न होगा। कई राज्यों में हिंदी का जो विकृत स्वरूप प्रचलित है उस-पर भी हमें अवश्य ध्यान देना होगा।

सभापति श्री व्यासजी ने प्राकृत-जननी मालवभूमि के अतीत गौरव का ओजस्वी वर्णन करते और मालव भाषा के विकास का परिचय देते हुए हिंदी-हिन्दुस्तानी विवाद पर कहा—"ये सब झगड़े हिंदी-हित के लिए परमपयोगी हैं। यह संक्राति-काल है, इसमें कोई विषय या कार्य निर्विवाद, निर्विरोध नहीं रह सकता। इस प्रचण्ड वादाक्रमण के उपरांत सारे देश को शुद्धतत्व हिंदी की अमरता का पता चल जायगा। मैं स्वं हिंदी में वैयर्थक अरबी-फ़ारसी शब्दों के प्रदेश का समर्थक नहीं हूँ। अपना रंग चढ़ाकर कितने ही विभिन्न भाषी शब्दों का गोस्वामी तुलसीदास तक ने अपनी रचनाओं को सोत्साह कर लिया है। मैं स्पष्ट शब्दों में उस हिन्दुस्तानी का विरोधी हूँ जिसका आल इण्डिया रेडियो प्रयोग करता है। हिन्दुस्तानी के बहाने पथ ले अरबी-फ़ारसी शब्दों के भरमार से हिंदी की हत्या को मैं रेडियो सरकार का अत्याचार मानता हूँ।

इसके बाद उन्होंने विस्तार से मध्यभारतीय प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्यसेवियों की सेवाओं और नामों का स्मरण करके मालवीय गौरव और संस्कृति के विषय में कहा—

'इस प्रदेश ने किसी भी 'वाद' को लेकर अथवा वाह्यागत वायु के क्षणिक झोंके से भी अपने विशाल हृदयों को कभी विचलित नहीं होने दिया है। अपनी समतुलता और हृदयों की गुरुता को अविचल अक्षुण्ण रक्खा है। परिवर्तकों की तरह पोषण किया है, आत्मसात किया है, विषम विषाद को चैतन्य नहीं होने दिया, मालव-मानस में सदसद्विवेक का जागरण रहा है। तरंगों पर उसका आधिपत्य रहा है; अतएव उसने हीन वासनाओं को जाग्रत होने से रोका है। इसकारण जिन स्वस्थ और मनोविकासकारी साहित्य की देन उसने अतीत युग से दी है वह संस्कृति-पोषक रही है।···रूप-गुण बुद्धि-बल शरीर और आत्मा सभी प्रकार से सौन्दर्य को भगवान के शब्दों में 'यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जित-मेववा' की भावना में सौन्दर्य-पूजा को लेकर मालव-मन की संस्कारिता सूचित की है' जीवित मालवीय कलाकारों से उन्होंने अपनी रचना में अक्षुण्ण रखने का आग्रह किया कि—हमारा लक्ष्य और आदर्श युग-प्रतिनिधि और स्वस्थ स्थायी साहित्य-निर्माण का ही होना चाहिए। फिर भविष्यवाणी करने के बाद उन्होंने कहा—'हम ऐसे साहित्य-सृजन की ओर प्रवृत्त हों जो मानव हृदय को प्रेरित कर सके, उन्नत बना सके, मानसिक विकास का साधन बन सके।'

सहयोगियों में से

हमारी संस्कृति की रामकहानी

अकबर हिन्दू-मुसलिम एकता का जनक कहा जाता है, परन्तु यदि दोनों धर्मों के लोगों की एक दूसरे को समझने और निभाने की हार्दिक वृति न होती तो अकबर अपनी इच्छा पूरी कर पाता, इसमें सन्देह है। वह हिन्दू-मुसलिम-सम्पर्क का कारण समझा जाता है, पर वस्तुतः वह दोनों धर्मों के उस मेलजोल का शानदार नतीजा था जो मुसलमानों का भारत पर राज हो जाने पर लाजमी ही था। वह कामयाब हुआ तो इसलिए कि उसके ख्वाब महज़ सनक या खामखयाली ही न थे। बल्कि यों कहना चाहिए कि वे ख्वाब उन लोगों के खयालात और जज़्बात के तर्जुमे थे जो कि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की धारणा पर लट्टू थे।

मुसलमान बादशाह हिन्दुस्तान महज़ हुकूमत करनेवाले बनकर ही नहीं रहे बल्कि हिन्दुस्तानी बनकर रहे, भारतीय संस्कृति में जो अच्छा था, उसे लेकर उनके पास जो कुछ अच्छा था, वह उन्होंने यहाँ दिया भी।

× × ×

यह कहा जा सकता है कि मुसलमानों ने हिन्दू-धर्म के बुनियादी मुद्दों पर असर डाला और बदले में हिन्दू-संस्कृति के रीति-रिवाज़ सीखे। सम्पर्क से मुसलमानों में 'पुनर्जन्म होने' की भावना आयी और इसने बौद्धिक कट्टरता के खिलाफ़ विद्रोह किया। धीरे-धीरे उन्होंने सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा भी उसकी भलाई-बुराइयों के साथ सीखीं। हिन्दुओं के विवाहों में होनेवाले खुशनुमा रीति-रिवाज़ों और रूढ़ियों में मुस्लिम रस्मोरिवाज भी रँग गये। यह लाजमी भी था क्योंकि हिन्दू लोग मुसलमान बनकर भी क़ुदरतन अपने सदियों पुराने रीति-रिवाज कैसे छोड़ सकते थे? यही कारण है कि गाँवों के देवी-देवताओं की पूजा पहले की तरह चलती रही, और हिन्दुस्तानी मुसलमान हिन्दू त्यौहार मानते रहे। आज भी जो अनपढ़ मुसलमान भूत-प्रेत उतारने के लिए कवच बाँधते हैं और मुसलमान औरतें बीमारी या तकलीफ़ में मन्दिर की पूजा करती हैं, ये सारी बातें हिन्दू-धर्म ही से आयी हैं।

× ×

पोशाक से ही किसी खास वक्त की सभ्यता का पता चल जाता है। पहले तो हिन्दुस्तान में फारसी पोशाक रही—लेकिन धीरे-धीरे बौद्धिक और सांस्कृतिक मिश्रण से पोशाक में भी एक समन्वय हुआ।

कुछ हिन्दुओं ने मुसलमानी पोशाक की भी जोश-खरोश के साथ नकल की। कायस्थों में जिन्हें हिन्दू आधा मुसलमान मानते हैं, इस बात का जीता-जागता सबूत मिलता है। ये लोग मुगल दरबारों में नौकर थे और पोशाक आदि के मामले में मुसलमानी दरबारियों की नकल करते थे। हिन्दुस्तान के कई हिस्सों में वे अब भी मुसलमानों की सी पोशाक पहनते हैं—लम्बी ढीली अचकन और पायजामे। कइयों को कुरान भी हिफ्ज़ है।

हमारी सभ्यता—संस्कृति की यह रामकहानी है और इसी में हमारी राष्ट्रीय एकता का राज़ छिपा है। इन झगड़ों को इतिहास से सिद्ध करके उन्हें अहमियत देना नामुनासिब है और वह कहना अन्याय है कि हिन्दू-मुसलमान हमेशा अलग-अलग और एक-दूसरे के विरोधी रहे हैं।

'आर्यन पाथ' (अंग्रेज़ी) **ख्वाजा मुश्ताक अहमद**

साहित्य और जीवन

योरप के निवासी इस बात पर बड़ा आश्चर्य करते हैं कि आखिर **'रामायण'** तथा **'महाभारत'** में ऐसा क्या लिखा है जो भारतीय लोग उन्हें इतने चाव से पढ़ते हुए भी अघाते नहीं? किन्तु भारतीय अनुभव करते हैं कि योरप के लिए **'ऑडिसी'** तथा **'इलियड'** ग्रन्थों का जो महत्त्व है

उससे भी शायद अधिक महत्त्व इन महाकाव्यों का भारत के लिए है। ये महाकाव्य भारत के सामाजिक, राजनीतिक, नागरिक तथा धार्मिक इतिहास के जीवित रूप हैं। जिन आदर्शों पर इनकी रचना हुई है वे त्रिकालाबाधित हैं, अजर-अमर हैं। ये तत्त्व युग-युग के हिन्दू-मानस का संस्कार करनेवाले हैं। इन ग्रन्थों का अनन्त प्रभाव है और यही कारण है कि हजारों वर्ष बीत जाने पर भी अबतक इनका अस्तित्व है। इन महाकाव्यों के कवियों ने इस बात को ध्यान में रखा था कि इन ग्रन्थों में गाये हुए गुण तथा वर्णित की हुई घटनाएँ समस्त मानव-जाति के लिए समान रूप से आदर्श-स्वरूप हो सकें।

एक राष्ट्र की कायापलट करनेवाले, पूरे भूखंड में हलचल मचा देनेवाले तथा मानव-जाति के भविष्य को पलटनेवाले एक ग्रन्थ का नाम मैं कहती हूँ, वह ग्रन्थ है हेरिएट वीचर स्टोव का **'अंकिल टॉम्स केबिन'**[1]। यह पुस्तक तत्कालीन समाज, गुलामों के भय, दुःख एवं त्रास, हबशियों के प्रति किये जानेवाले दक्षिण अमेरिका के लोगों के घोर निर्दय, अमानुषिक अत्याचार आदि पर प्रकाश डालती है। इस पुस्तक ने समाज में क्रान्ति पैदा कर दी और फल-स्वरूप समाज में विशाल परिवर्तन हुए।

मेरी जानकारी एक ऐसी पुस्तक के सम्बन्ध में है जो सब देशों को सब समय स्पर्श करती है। वह पुस्तक है जॉन बन्यन की **''पिलग्रिम्स प्रोग्रेस।'** इस पुस्तक में मनुष्य के जीवन-कलह, उसके उत्तरदायित्व, मृत्यु की छाया तथा समस्त मानव-जाति के आध्यात्मिक संकल्प-विकल्पों के सामान्य लाक्षणिक स्वरूप सरलता से किन्तु हूबहू उल्लिखित हैं। और यही इस पुस्तक के विलक्षण आकर्षण का कारण है। अन्तर्दृष्टिवाले एक मनुष्य के हाथ से लिखी यह पुस्तक लाखों मनुष्यों के चारित्र्य-निर्माण पर प्रभाव डालती है।

लाखों मनुष्यों को आज़ादी के लिए व्याकुल कर देनेवाले, आत्म-बलिदान की लहरों को प्रकट करनेवाले गॅरीबाल्डी के गीत तथा मेज़िनी के वचनों ने इटलीनिवासियों को जड़ से हिला दिया और उन्होंने इटली की स्वातन्त्र्य-ज्वाला को प्रज्वलित कर दिया। यह स्पष्ट है कि हमारे ऊपर हुकूमत शब्द की चलती है किसी **सम्राट्** की नहीं। डेढ़ सयाने कहते हैं ''हमें अपेक्षा 'वाणी' की नहीं किन्तु 'आचार' की है''; किन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनादि काल से मानव के ऊपर साम्राज्य शब्द का ही है। गुजरात के राष्ट्र-कवि मेघाणी की रचनाओं को देखिए, महात्मा गांधी के गद्य को देखिए, ऐसे ही शब्द भारत का भावी निर्माण कर सकेंगे।

''काव्य सदैव एक-सा रहता है'' यह कहा जाता है। यह सच है कि काव्य के मूल-तत्त्वों में अन्तर नहीं पड़ता किन्तु जीवन के प्रति दृष्टि-कोण में अन्तर होता जाता है। संयोगों के सहयोग से आज मनुष्य ने साहित्य को परिवर्तन दिया है। जीवन के सम्बन्ध में आज नयी भावनाएँ उत्पन्न हो गयी हैं।...

साहित्य जीवित भाषा, जीवित भावना है। लम्बे-लम्बे वाक्यों तथा शब्दालंकारों के लिए हमें आवश्यक अवकाश नहीं है। हमें तो यह अभीष्ट है कि हमारे शब्द लाखों मानवों के दुःख तथा वेदनाओं को व्यक्त करने में समर्थ हो सकें। हमारे शब्दों में शक्ति हो कि लक्कड़ के बोझ को ले जानेवाले लकड़हारे की मनोव्यथा, पत्थर फोड़नेवाले की मनोवेदना, जलप्रलय या दुर्भिक्ष के समय के हाहाकार व ग़रीबों के प्रति होनेवाले भीषण अत्याचारों को चित्रित कर सकें।

शब्द को किसी साज की आवश्यकता नहीं। धरती के एक छोर से दूसरे छोर तक इसका प्रसार है। शौर्य्य के साहित्य ने धरती के कोने-कोने में अपना प्रभाव पहुँचाया है। साहित्य जीवन का अन्तिम स्पष्टीकरण है। **सरोजिनी नायडू**

'वीणा']

---

[1] **इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद है ''टॉमकाका की कुटिया''।**

क्या और कैसे?

सम्मेलन के सामने कार्य

राष्ट्रभाषा के नाम व रूप या व्याख्या के सवाल ने हि० सा० सम्मेलन में काफी विवाद पैदा किया है और अब श्रीयुत जमनालालजी बजाज के वक्तव्य ने, जो उन्होंने स्वनामधन्य राजेन्द्र बाबू को सभापति बनाने के सम्बन्ध में प्रकाशित किया है, इस विषय को इस प्रधानता से सामने ला दिया है कि अबोहर-सम्मेलन को इस विषय पर अपनी अन्तिम राय दे देनी चाहिए।

पाठकों ने देखा ही होगा कि 'जी० सा०' में यह भी सुझाया गया है कि अश्लील साहित्य या कुसाहित्य व गंदे विज्ञापनों की रोक-थाम में भी सम्मेलन दिलचस्पी ले। हिन्दी के साहित्यिकों की यह भी अपेक्षा सम्मेलन से है कि वह साहित्य-रचना के लिए एक स्वतन्त्र परिषद् बनाकर साहित्य-वृद्धि में अधिक ध्यान दे। लेखकों व प्रकाशकों का पारस्परिक सम्बन्ध व अधिकार, गरीब व होनहार लेखकों की सहायता व प्रोत्साहन की ओर भी सम्मेलन का ध्यान जाने की जरूरत है। सम्मेलन के संचालकों व उसमें जानेवाले प्रतिनिधियों का यह कर्तव्य है कि वे सम्मेलन को हिन्दी-जगत् में वही स्थान व वैसी ही प्रतिष्ठा प्राप्त करा दें जो राष्ट्रीय संसार में कांग्रेस को मिली हुई है यह तभी हो सकता है जब सम्मेलन हिन्दी-भाषा व साहित्य तथा साहित्यिकों सम्बन्धी तमाम विषयों में क्रियात्मक व सजीव दिलचस्पी ले और उसके पास साहित्य-सेवकों व कार्यकर्त्ताओं की एक संगठित सेना हो। यदि राजेन्द्रबाबू जैसे साधुमना व साथ ही कर्मिष्ठ व प्रभावशाली सभापति उसे प्राप्त हुए व लगातार कुछ वर्षों तक होते गये तो सचमुच सम्मेलन के इस दर्जे पर पहुँचने में देर न लगे। हमारी राय में सम्मेलन को साहित्यिक प्रवृत्तियों का नेता व नियन्ता होना चाहिए।

मध्यभारतीय साहित्य-सम्मेलन

महू का म० भा० हि० सा० सम्मेलन जिस सफलता के साथ हुआ उसके लिए महू के साहित्यिकों तथा म० भा० के हिन्दी-प्रेमियों और कार्यकर्त्ताओं को भी बधाई! यद्यपि १९२६ में प्रथम सम्मेलन इंदौर में हो चुका था परन्तु वह विस्मृति के गर्त में डूब गया था। अधिकांश लोग इसी भावना और खुशी से सम्मिलित हुए थे कि मानों वे पहले सम्मेलन में ही जा रहे हों। यदि सम्मेलन ३ दिन का ही होकर रह जाता तो निराशा की बात होती; परन्तु इसके क्रियाशील सभापति अपने साल का अच्छा हिसाब देना चाहते हैं। प्रतिनिधियों ने उसको स्थायी रूप देने के लिए उसका एक कामचलाऊ विधान भी पास कर दिया है। इस सम्मेलन में मैं सबसे ज्यादा महत्त्व उसके स्थायी संगठन को देता हूँ और दूसरा इस बात को कि सभापतिजी ने साल भर डटकर काम करने और कराने की दृष्टि से अपना मंत्रिमंडल और कार्य-कारिणी बनायी है। मैं आशा करता हूँ कि म० भा० के सभी विचारों और वर्गों के साहित्यप्रेमी सम्मेलन के प्रत्येक प्रयोजन में हार्दिक सहयोग देकर इसे एक जीवित और प्रगतिशील संस्था बनाने में कोई कसर न रक्खेंगे। जब कोई नयी संस्था बनती है तो स्वभावतः कई कारणों से उसके प्रति लोगों के मन में शंका, आलोचना, कुतर्कना, निराशा, भय आदि के भी भाव पैदा होते हैं लेकिन जैसे-जैसे संस्था के संचालकों की सन्नीति का पता लोगों को चलता है और संस्था की एक के बाद दूसरी सेवाओं का परिचय उन्हें मिलता है वैसे-वैसे उनके ये दुर्भाव सहयोग के रूप में बदलने लगते हैं। इसमें दृढ़ता, धैर्य और सावधानी संस्था की नाव को अच्छी तरह किनारे लगा सकती है।

समिति का कर्तव्य

मध्य-भारत के साहित्यिक जीवन और विकास में म० भा० हि० सा० समिति का एक विशेष स्थान रहा है। उसकी महत्ता केवल इसी बात में नहीं है कि उसने पचास के लगभग

पुस्तकें प्रकाशित कीं, सम्मेलन की परीक्षाओं की पढ़ाई की व्यवस्था की, उसके द्वारा दो बार हिं० सा० सम्मेलन का अधिवेशन इंदौर में हुआ या प्रथम म० भा० हिं० सा० सम्मेलन की नींव उसने डाली, बल्कि इस बात से भी है कि उसके पास काफी धन-सम्पत्ति, अच्छा प्रेस और लब्ध-प्रतिष्ठ पत्रिका भी है। मध्यभारत के साहित्यिकों और भाषा-प्रेमियों में यह भाव पैदा हुआ है कि समिति के द्वारा अधिक ठोस, व्यापक और प्रभावकारी साहित्य-सेवा होनी चाहिए। इसी की प्रतिध्वनि सम्मेलन तथा साहित्य-परिषद् के सभापतियों के भाषणों में दिखायी दी। समिति के वर्तमान कर्णधारों का कर्तव्य है कि वे उसपर उचित ध्यान दें। इसके लिए समिति नवीन ग्रंथों के प्रणयन की कोई योजना बनाये और पहले उसमें म० भा० के साहित्यिकों के ज्ञान, योग्यता, कुशलता का उपयोग करे। कमी की पूर्ति के रूप में ही बाहर के साहित्य-सेवियों की सहायता ले। 'वीणा' में भी म० भा० विषयों और साहित्यिकों को तरजीह दी जाये। मेरा मतलब संकुचितता से नहीं है लेकिन स्थानिक संस्थाएँ यदि स्थानिक विषयों और व्यक्तियों को न अपनायेंगी तो उनके स्थानिक स्वरूप का कोई अर्थ नहीं रह जाता। हम आलोचकों और अपील करनेवालों को भी न भूलना चाहिए कि आलोचना और अपील से एकतर्फा सेवा होती है। पूरी सेवा तभी होगी जब आलोचक और अपील-कर्ता समिति के साथ हार्दिक सहयोग करें और समिति का मार्ग सुगम बनाने का प्रयत्न करें।

हिन्दू-महासभा का क्षेत्र

यह निर्विवाद है कि भारत की राष्ट्रीय आकांक्षाओं को व्यक्त करनेवाली व उनकी पूर्ति के लिए प्राण-पण से जूझनेवाली निर्भीक व तेजस्वी संस्था अगर कोई है तो वह कांग्रेस ही है। ऐसी दशा में होना तो यही चाहिए कि देश के सभी जाति-पाँति के लोगों की शक्ति उसका बल बढ़ाने में लगे। परन्तु दुर्दैव से एक ओर मुस्लिम लीग दूसरी ओर से हिंदू-महासभा ने अपना अपना अलग राजनैतिक मंच बनाया और दोनों सरकार से लड़ने के बजाय कांग्रेस को कोसने व गालियाँ देने में अपनी शक्ति बर्बाद करती हैं। हिन्दू-महासभा की गतिविधि पर एक हिन्दू होने के नाते, हमें विशेष दुःख है। हिन्दू-महासभा यदि हिन्दुओं के सामाजिक संगठन, सुधार व हित-रक्षा में, हिन्दू-धर्म के संशोधन व प्रचार में ही अपनी शक्ति लगावे तो यह उसका स्वाभाविक क्षेत्र है व इसमें प्रत्येक हिन्दू की सहायता व सहयोग उसे मिलना चाहिए। इसमें वह हिन्दू-मात्र को एक झण्डे के नीचे ला सकेगी। पर हिन्दुओं के राजनैतिक हक़ों की दावेदार बनकर व कांग्रेस को गालियाँ देकर वह उल्टे हिन्दुओं में फूट डालने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले रही है। कांग्रेस की तो भूमिका ही ऐसी है कि वह किसी एक जाति के साथ पक्षपात करके दूसरी जाति का अहित कर ही नहीं सकती। उसकी निगाह में सब जातियों के हित समान हैं। और यदि कहीं ऐसा दिखाई दे कि कांग्रेस जाति-विशेष के साथ पक्षपात करती है तो उस जाति की संस्था का कर्त्तव्य व अधिकार है कि वह अपने संगठन के द्वारा कांग्रेस पर प्रभाव डाले व उसे उससे रोक दे। हमारी राय में जातीय संस्थाओं का सही कार्य व क्षेत्र सामाजिक सुधार व संगठन है। मुस्लिम लीग के हठीले नेताओं की बनिस्बत हमें हिन्दू-महासभा के राष्ट्रीयता-उपासक नेताओं से दो बात कहने का ज्यादा अधिकार है। हिन्दू महासभा के कर्णधारों—वीर सावरकर, भाई परमानंद, डा० मुञ्जे व सेठ श्री जुगलकिशोरजी बिड़ला का ध्यान हम ख़ास तौर पर इस बात की ओर दिलाते हैं।

हार मानने को तैयार हैं?

पिछले १–२ महीनों में यह आवाज प्रबल हुई है कि कांग्रेस फिर धारासभाओं में जाये, व मन्त्रिमण्डल भी बनावे। दलील यह दी जाती है कि युद्ध का संकट हिन्दुस्तान के नजदीक आता

जारहा है। हिन्दुस्तान में भीतरी अव्यवस्था व गोलमाल का बहुत अंदेशा है, धारासभाओं में न रहने से सविधि हमारा विरोध नहीं प्रकट किया जासकता। पहली दलील के जवाब में हम यह जानना चाहते हैं कि क्या भारत को अपनी रक्षा करने की पूरी सत्ता मिली हुई है या मिलने की कोई गारण्टी है? भीतरी अव्यवस्था व गोलमाल को दबाने के लिए सरकार आपको फिर से मन्त्रिमण्डल बनाने देगी? मुस्लिम लीग की शर्तों पर कांग्रेस मन्त्रि-मण्डल बनाने को तैयार है? धारासभाओं के बहिष्कार व सत्याग्रह के द्वारा जो प्रत्यक्ष विरोध प्रकट किया जारहा है उससे अधिक जोरदार विरोध धारासभा में रहकर प्रकट किया जा सकता है? फिर सत्याग्रह के जारी रहते हुए कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल बनाने का अर्थ यही तो है न कि श्री बाला सा० खेर सरदार वल्लभभाई को, पन्तजी पं० जवाहरलाल नेहरू को या राजाजी डा० पट्टाभि सीतारामैया को जेल भेजें? ये सवाल या शंकाएँ ही बताती हैं कि प्रान्तों में फिर से सत्ता लेने या धारासभा में पहले की तरह जाने की हलचल बालू पर महल बनाने की तरह है। कांग्रेस के मन्त्रि-मण्डल या धारासभा छोड़ने तथा सत्याग्रह शुरू होने के बाद कांग्रेस को सन्तुष्ट करने के लिए कौन-सी ऐसी नयी बात सरकार की ओर से हुई है जिस पर कांग्रेस को अपनी स्थिति पर फिर से विचार करना पड़े? चर्चिल व एमरी साहबान का रवैया तो उलटा क्षोभजनक ही रहा है। जबतक ब्रिटिश राजनेता कांग्रेस की माँग को मानने के लिए तैयार नहीं हैं तबतक फिर से सत्ता लेने का अर्थ है हार मान लेना। क्या कांग्रेसी हार मानने को तैयार हैं?

उचित आपत्ति

सरदार डा० मा० वि० किबे लिखते हैं—

"'जी०सा०' के सितम्बर अंक में (पृष्ठ ६९) आपने प्रश्नांक २ का जो जवाब दिया है वह मुझे आपत्तियोग्य मालूम होता है। मैं जानता हूँ कि कुछ जातियों में विवाह-विच्छेद-प्रथा है। परन्तु जिस जाति में यह प्रथा नहीं है उसमें एक पति के जीवित रहते कभी दूसरा विवाह करे तो फौजदारी कानून के मुताबिक अपराध होगा और वह सज़ा के योग्य माना जायेगा। आपने जो इस बात पर जोर दिया है कि ऐसा संबंध विधिरहित नहीं विधिमुक्त होना चाहिए, सो तो ठीक ही है।

मानिता के अनेक पुत्रों में 'जारज' की गणना है। पुराणों में अनेक उदाहरण हैं, व पांडवों का उदाहरण तो प्रसिद्ध ही है। परन्तु इसके अर्थात् पुत्र की संभावना के अभाव में 'जारज' कृति का दुरुपयोग न हो, इसलिए स्मृतिकारों ने कठोर विधान भी बताये हैं। यह कहने में मेरा उद्देश यह नहीं है कि किसी प्रकार अनीति को प्रोत्साहन मिले; बल्कि यह दिखाना है कि आपके सुझाये मार्ग पर चलने में कठिनाइयाँ हैं, व प्राचीन काल में भी वे सामने आयी थीं और उनका क्या उपाय निकाला गया था? क्या मैं यह मान लूँ कि विवाह-विच्छेद-कानून से आप सहमत हैं?"

इसपर मेरा उत्तर यह है कि जिन जातियों में विवाह-विच्छेद प्रथा नहीं है उनमें एक मर्यादा के अन्दर, उसके जारी करने की ज़रूरत मुझे मालूम होती है। जबतक ऐसा क़ानून न बन जाये तबतक ऐसे प्रसंगों पर सजा की जोखिम उठाकर भी दूसरा विवाह करना अच्छा है। बेहतर तो यही हो कि पहला पति आगे होकर स्त्री की दूसरी शादी की व्यवस्था कर दे। उस हालत में क़ानूनी आपत्ति से भी बचाव हो जायेगा।

ह० उ०

हिन्दी सर्वमान्य राष्ट्रभाषा कैसे होगी ?

[बाबू राजेन्द्रप्रसाद]

[राजेन्द्र बाबू का यह लेख हमें देर से प्राप्त हुआ है, इसलिए उचित स्थान पर नहीं दिया जा सका । अब जबकि उनका नाम हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति पद के लिए प्रस्तावित है, राष्ट्रभाषा हिन्दी के भक्तों को उनके राष्ट्रभाषा-विषयक विचारों को जान लेना आवश्यक है ।—संपा०]

राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में हिन्दी-प्रेमियों में बहुत चर्चा चल रही है । अब यह प्रश्न देश के सामने नहीं रह गया है कि राष्ट्रभाषा का स्थान अंग्रेज़ी को मिल सकता है या नहीं ? यह बात प्रायः सर्वसम्मत है कि यह स्थान उत्तर भारत में जो भाषा बोली और समझी जाती है, उसीको मिल सकता है । विवाद केवल इस विषय में रह गया है कि उस भाषा का रूप और उसका नाम क्या है या हो ?

नाम के प्रश्न को बहुत महत्त्व दे दिया गया है । मैं स्वयं इसको उतना महत्त्व नहीं देता । अगर उसके रूप का हम ठीक निर्णय कर लें, तो फिर उसे चाहे जिस नाम से क्यों न पुकारें, उसमें अन्तर नहीं आयेगा । 'हिन्दी' नाम भी कोई हमेशा से नहीं चला आया है । अगर आज से पहले 'नागरी' अथवा और किसी नाम से हिन्दी को पुकारने में बाधा नहीं पड़ी है; और आज भी उसे कोई 'हिन्दुस्तानी' ही कहना पसन्द करे, पर उसका जो अपना निजी स्वाभाविक रूप है, उसमें फर्क न पड़े, तो इसे मैं कोई विशेष महत्त्व नहीं देता ।

महत्त्व का प्रश्न भाषा के रूप अर्थात् उसके व्याकरण और शब्दावलि का है । जहाँतक मैं जानता हूँ, यह किसी ने नहीं कहा है कि हिन्दी के व्याकरण में कोई मौलिक हेर-फेर किया जाये । जो लोग दूसरी बोलियाँ बोलते हैं और हिन्दी सीखना चाहते हैं, उनके लिए लिंग भी एक दिक्कत पेश करता है; पर ऐसे लोगों की तरफ से भी कोई ऐसा प्रस्ताव नहीं आया है कि लिंग उठा ही दिया जाय । अधिक-से-अधिक कुछ लोगों का इतना ही कहना है कि जो नये शब्द हिन्दी में आते हैं, उनके सम्बन्ध में कोई ऐसा नियम बन जाना चाहिए, जो सीधा हो अथवा नयें शब्दों के लिए भी पुराने नियमों को साफ कर दिया जाये । और किसी नियम के सम्बन्ध में कोई कठिनाई नहीं आती है ।

हिन्दी और उर्दू के कुछ नियम, जिनको मौलिक नहीं कह सकते, एक-दूसरे से अन्तर रखते हैं । इसका विशेष कारण यह है कि उर्दू में कुछ मुहावरे फारसी के जहाँ-तहाँ आ जाते हैं और उनको उर्दू लिखनेवाले ज्यों-का-त्यों ले लेते हैं । इसी तरह कुछ फारसी-अरबी के शब्दों को जो उर्दू में इस्तेमाल किये जाते हैं उर्दू लिखनेवाले फारसी और अरबी के क़ायदे से ही बहुवचन बना लेते हैं । और जो क़ायदा नहीं भी जानते हैं वे उनके बहुवचन के रूप को जानते हैं और उनका ही व्यवहार कर लेते हैं । जहाँ तक मैं जानता हूँ, हिन्दुस्तानी के किसी पक्षपाती ने यह नहीं कहा है कि जो विदेशी शब्द हिन्दी में आ गये हैं अथवा नये लिये जायें, वे अपने साथ अपना व्याकरण भी लेते आवें और उनका रूप उनके व्याकरण के अनुसार हिन्दी में भी बदला करे ।

उदाहरण के लिए दो-चार शब्द जो बहुत प्रचलित हैं और जिनको शायद कट्टर-से-कट्टर हिन्दी के पक्षपाती भी हिन्दी से निकालना न चाहेंगे, ले लीजिए । एक बहुत प्रचलित शब्द 'शर्त' है, जिसका पर्यायवाची शब्द हिन्दी में शायद मुश्किल से मिले । हिन्दी व्याकरण के अनुसार इसका बहुवचन 'शर्तें' है और अरबी के कायदे के मुताबिक 'शरायत' है । 'शर्त' को हिन्दी में रहना है; मगर उसको हिन्दी का बन्धन मान-

कर रहना चाहिए और इसलिए उसका बहुवचन हम हिन्दी में 'शर्तें' मानेंगे, जो हिन्दी के नियम के अनुसार बना है; 'शरायत' नहीं मानेंगे। इसी तरह 'फर्ज़' शब्द है, जो केवल हिन्दी में ही नहीं, बल्कि सिधी, गुजराती, इत्यादि कुछ प्रान्तीय भाषाओं में भी प्रचलित है। वह अपना बहुवचन 'फरायज़' न बनायेगा और बहुवचन के लिए हिन्दी-व्याकरण का ही नियम मानेगा। अंग्रेज़ी के शब्द भी जो हिन्दी में आते-जाते हैं, वे भी हिन्दी-व्याकरण के अनुसार ही चलते हैं और उनका चलना भी चाहिए। 'ट्रेन', 'टिकट', 'लालटेन' इत्यादि शब्द प्रचलित हैं। इनका बहुवचन अंग्रेज़ी के कायदे के मुताबिक अन्त में 'एस्' जोड़ कर नहीं बनाते हैं, बल्कि 'एँ' या 'ओं' जोड़ कर ही बनाते हैं, या बनाना उचित है। मैंने केवल एक नियम का उदाहरण दिया है। हिन्दी के ही और नियम भी इसी प्रकार उन सभी शब्दों को लगने चाहिए, जो हिन्दी में घुल-मिल जाते हैं।

कुछ ऐसे शब्द भी हैं, जो मूल में विदेशी हैं और अपने व्याकरण के अनुसार ही बने हैं; पर अब बन जाने के बाद उस बने हुए रूप में ही हिन्दी में आये हैं। उनका व्यवहार उसी रूप में होता है, पर अब हिन्दी-व्याकरण के ही अनुसार उनका रूप बदलता है। उदाहरण के लिए, अरबी का शब्द 'मजबूत' ले लीजिए, जो हिन्दी में बहुत प्रचलित है। इसका मौलिक रूप 'ज़ब्त' है और उससे अरबी के कायदे के मुताबिक वह 'मजबूत' बना और 'मजबूत' के ही रूप में हिन्दी में प्रचलित है। हिन्दी का यह काम नहीं है कि इसके मौलिक रूप 'ज़ब्त' को लेकर वह हिन्दी के नियमानुकूल कोई ऐसा शब्द गढ़े, जिसका अर्थ वही हो जो 'मजबूत' का है। जब एक बार 'मजबूत' हिन्दी में आ गया, तब उसको अबसे अगर फिर रूप बदलना हो, तो वह हिन्दी के नियम के अनुसार ही अपना रूप बदलेगा। दूसरा उदाहरण अंग्रेज़ी शब्द 'ड्राइवर' का लीजिए। यह अंग्रेज़ी के कायदे के मुताबिक 'ड्राइव' से 'ड्राइवर' बना है। हिन्दी में 'ड्राइव' प्रचलित नहीं है और न उसके प्रचलित होने की जरूरत ही है; पर 'ड्राइवर' का हिन्दी में रहना अच्छा है। मगर 'ड्राइवर' को हिन्दी का जामा पहनना होगा और बहुवचन बनने के लिए 'एस्' की तलाश नहीं करनी होगी।

इस तरह जहाँ तक मैंने समझा, जो लोग विदेशी शब्दों को हिन्दी में लेने के पक्षपाती हैं, वे भी केवल शब्दों को ही लेना चाहते हैं, व्याकरण को नहीं। तो, हिन्दी और हिन्दुस्तानी के पक्षपातियों में व्याकरण के सम्बन्ध में मतभेद की कोई सम्भावना नहीं है।

अब रह गयी शब्दों की बात। हिन्दी में अरबी और फारसी के बहुत-से शब्द बहुत दिनों से प्रचलित हो गये हैं। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' की भूमिका में प्रायः पन्द्रह पृष्ठों में ऐसे शब्दों की एक सूची दी है, जो अरबी और फारसी के हैं और जिनको गोस्वामीजी ने अपनी रचनाओं में व्यवहृत किया है। और वह इतनी बड़ी सूची को पूरी नहीं समझते हैं; क्योंकि वह लिखते हैं— "यहाँ मैं अरबी-फारसी के उन शब्दों की सूची देता हूँ, जिन्हें मैंने तुलसीदास को पढ़ते समय पकड़ लिया था। इनमें 'तुलसी सतसई' के शब्द मैंने कम दिये हैं और सम्भव है अन्य रचनाओं में आये हुए कुछ और शब्द भी छूट गये होंगे। बहुत-से शब्द तो ऐसे भी छूट गये होंगे, जिन्हें मैं जानता ही न होऊँगा कि वे अरबी-फ़ारसी के हैं या हिन्दी के।" दूसरे प्राचीन हिन्दी कवियों की कृतियों में भी बहुत-से अरबी-फारसी के शब्द मिलेंगे। जबसे अंग्रेज़ी का दौरदौरा हुआ है, तबसे अंग्रेज़ी के शब्द भी अच्छी संख्या में घुस आये हैं। इससे हिन्दी की दुर्बलता नहीं प्रमाणित होती। सभी सजीव भाषाओं का यही हाल है। नित नये शब्द उनमें आते हैं और उनके भण्डार को बढ़ाते हैं। यह आवश्यक और अनिवार्य है। नये विचार, नयी भावनाएँ, नये आविष्कार दिन-प्रति-दिन होते हैं। उनके लिए

नये शब्द काम में लाये जाते हैं और वे जहाँ से सुविधा से मिल जाते हैं, जीती-जागती भाषा उन्हें ले लेती है और उनको लेकर भी वह अपना अस्तित्व और व्यक्तित्व नहीं खोती। हाँ, इसका ध्यान अवश्य रखना पड़ता है कि बिना जरूरत विदेशी शब्द न लिये जायँ और यह हिन्दी भी नहीं करती है। विदेशी शब्द का आसानी से प्रचलित हो जाना ही इसका प्रमाण है कि इस भाषा में उसके लिए स्थान खाली था।

राष्ट्रभाषा वही हो सकती है, जो देशभर में कम-से-कम परिश्रम के साथ प्रचलित की जा सके। वह केवल हिन्दी बोलनेवालों ही की भाषा नहीं होगी और न केवल हिन्दुओं ही की। हाँ, हिन्दी का अस्तित्व कायम रखते हुए, अर्थात् उसके व्याकरण को कायम रखते हुए, शब्दों के सम्बन्ध में उसका दरवाजा वैसा ही खुला रखना होगा, जैसा आज तक रहा है। विदेशी होने के कारण कोई शब्द जो प्रचलित है, नहीं निकाला जायेगा और न कोई शब्द जो किसी नये भाव वा वस्तु का वाचक है. पर प्रचलित नहीं है, आने से रोका ही जायगा। भाषा के विकास के अपने नियम होते हैं। उसके अनुसार ही इस राष्ट्रभाषा का विकास होगा और जो उसको आज नहीं जानते हैं, वे भी जब उसे सीख लेंगे, उसके विकास में सहायक होंगे।

इसलिए, जब हम राष्ट्रभाषा पर विचार करें तो अपने सामने केवल हिन्दी समझनेवाले और बोलनेवालों को ही न रक्खें—केवल हिन्दी-साहित्यिकों को तो कदापि नहीं रख सकते। हमको हमेशा सारे भारतवर्ष को सामने रखना होगा। उसी भारतवर्ष के अन्दर पंजाब, सीमा-प्रान्त जैसे सूबे भी हैं, जहाँ उर्दू अधिक प्रचलित है और वे शिक्षित मुसलमान भी हैं, जो बिहार और संयुक्त-प्रदेश में रहते हैं और उर्दू ही जानते हैं। यहाँ मैं हिन्दी और उर्दू को एक संकुचित अर्थ दे रहा हूँ. मानों दोनों एक-दूसरे से अलग हों; यद्यपि बात बिलकुल ऐसी नहीं है। मैं इसमें कोई बुद्धिमत्ता नहीं मानता हूँ कि राष्ट्रभाषा का का प्रचार तामिल प्रदेश में किया जाये, पर उसका रूप ऐसा बना दिया जाये कि बिहार और युक्त-प्रांत के मुसलमान उसे न समझ सकें और पंजाब के हिन्दुओं और सिक्खों को भी उसके समझने में कठिनाई होने लगे।

मैं इन सब पहलुओं पर विचार कर निम्न-लिखित निश्चयों पर पहुँचता हूँ :—

(१) यदि राष्ट्रभाषा के स्वरूप का निश्चित निर्णय कर लिया जाये, तो मैं उसके नाम के लिए किसी से झगड़ना नहीं चाहूँगा।

(२) राष्ट्रभाषा का व्याकरण वही होगा जो हिन्दी का व्याकरण है। उसमें कोई मौलिक अथवा बहुत व्यापक परिवर्तन नहीं होगा।

(३) जो विदेशी शब्द उसमें हैं या नये लिये जायें, उनका नियन्त्रण भी हिन्दी-व्याकरण से ही होगा। जितने विदेशी शब्द अबतक प्रचलित हो गये हों—चाहे वे अरबी-फ़ारसी या तुर्की के हों अथवा अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी अथवा अन्य किसी यूरोपीय भाषा के हों—वे निकाले नहीं जायेंगे।

(४) विदेशी नये शब्द भी जो सुगमता से प्रचलित होते जा रहे हैं और जिनके लिए पर्यायवाची हिन्दी शब्द आसानी से नहीं मिलते, उनका भी बहिष्कार नहीं किया जायेगा। इसी प्रकार प्रान्तीय भाषाओं और बोलियों के भी जो शब्द सुन्दर और सरल हों, और जिनके लिए हिन्दी में वैसे ही सुगम पर्यायवाची शब्द न हों, उनका भी बहिष्कार नहीं किया जायेगा।

मैं चाहता हूँ कि हिन्दी के विद्वान् इन सिद्धांतों पर ठंडे दिल से विचार करें और हिन्दी को सर्वमान्य राष्ट्रभाषा बनने दें, उसके दरवाजे और खिड़कियों को बन्द करके उसे बाहर की रोशनी से वंचित न होने दें और न उसे किसी प्रान्त-विशेष अथवा जाति-विशेष की भाषा हो जाने दें। उदारता में ही स्वार्थ निहित है।

'मण्डल' की ओर से

पाँचसौ रुपये पुरस्कार

'जीवन-साहित्य' के अक्तूबर, १९४० के अंक में हिन्दी में कृषि, गोपालन और प्राकृतिक चिकित्सा पर मौलिक पुस्तकें लिखवाने के लिए ३ पुरस्कारों की 'मंडल' की ओर से घोषणा की गयी थी। उसमें प्राकृतिक चिकित्सा पर लिखाये जानेवाले ग्रंथ के लिए ३००) के पुरस्कार की घोषणा थी। हमें खेद के साथ सूचित करना पड़ता है कि इस विषय में हिन्दी के लेखकवर्ग ने कोई खास दिलचस्पी नहीं ली। इनपर इस एक वर्ष के अर्से में जो सूचनाएँ तथा रचनाओं के नमूने आये वे ज्यादातर साधारण कोटि के थे। हम पुनः हिन्दी-साहित्यिकों का ध्यान इस ओर दिलाते हैं। साथ ही इस बात की सूचना देते हुए हमें प्रसन्नता होती है कि 'मंडल' ने 'प्राकृतिक चिकित्सा' नामक ग्रंथ के पुरस्कार की रक़म ३००) से ५००) कर दी है। ग्रन्थ ३०० पृष्ठ का होना चाहिए। ग्रन्थकर्ता को पुरस्कार के अलावा रॉयल्टी भी दी जायेगी। इस ग्रन्थ-लेखन में जो ग्रंथकर्ता दिलचस्पी लें वे मंडल के मंत्री से पत्र-व्यवहार करें।

'मंडल' की शाखाएँ और सोल एजेंसियाँ

गतांक में विज्ञप्ति के द्वारा हम सूचित कर चुके हैं कि पिछले महीने **प्रयाग** के हिन्दी मंदिर को खरीदा जाकर वहाँ 'मंडल' की शाखा स्थापित की जा चुकी है। **कलकत्ते** की शाखा का कार्य भली भाँति चल निकला है, **वर्धा** शाखा के अंतर्गत निज़ाम राज्य में **श्री रामकृष्ण धूत, सुलतान बाजार हैदराबाद**, नागपुर में **श्री केशवराव हिवशे, अ० भा० ग्राम-उद्योग संघ, सीताबर्डी**, अमरावती में **श्री अण्णा० बी० काळे न्यूजपेपर एजेण्ट** तथा पूना में **महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति** मण्डल के सोल एजेण्ट नियुक्त किये गये हैं। इन्दौर शाखा के अंतर्गत **श्री बद्रीनारायणजी जोशी 'विद्यार्थी' बड़वानी** में मंडल के एजेण्ट नियुक्त किये गये हैं।

शाखाओं व खादी-भण्डारों से—

ग्राहकों की ओर से प्रायः हमें ऐसे पत्र मिलते हैं कि वे खादीभंडारों या शाखाओं से 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक या 'मण्डल' के स्थायी ग्राहक बने हैं किन्तु काफ़ी अर्से तक उन्हें 'जीवन-साहित्य' या ग्राहक-प्रमाणपत्र नहीं मिले। बल्कि कई शिकायत करते हैं कि बिना प्रधान कार्यालय को लिखे उनकी सुनवाई ही नहीं होती। शायद शाखाओं तथा खादीभंडारों के व्यवस्थापक महानुभाव उनकी सूचना यथासमय हमें भेजना भूल जाते हैं।

हमें आशा है कि अबतक जितने ग्राहक खादी-भंडारों या शाखाओं में उक्त विषय की शिकायत करते हों उनके ग्राहक होने की सूचना वे शीघ्र हमें भेजने की कृपा तो करेंगे ही भविष्य में भी इस ओर ध्यान रखने की कृपा करेंगे।

पुस्तकों के संस्करण

इधर हमारी पुस्तकों में से बहुत-सी पुस्तकों के संस्करण समाप्त हो गये हैं। इनमें से कई तो छप रही हैं और कई का छापना काग़ज़ की तंगी तथा महँगाई के कारण स्थगित करना पड़ा है। अतः आर्डर में जो पुस्तकें न भेजी जाया करें उनको वर्तमान समय में न मिलनेवाली समझ लेना चाहिए। यों हम इस अंक में अलग से उन पुस्तकों की सूची छाप रहे हैं जो अभी हमारे **स्टॉक** में बहुत परिमित मात्रा में हैं। उनपर कमीशन कम कर दिया गया है।

इनका चन्दा समाप्त हो गया है—

जी० सा० की नीचे लिखी ग्राहक-संख्या वालों का चंदा समाप्त हो गया है, इसलिए वे शीघ्र जमा करने की कृपा करें:—

नवम्बर ४१ के अंक में

४४०, ४८८, ४८९, ४९०, ४९४, ५२
५२६, ५३४, ५६६, ६७३, ६७६, ६७७, ६८७, ६९५, ६९६, ७०८,

दिसम्बर ४१ के अंक में

४९५, ४९६, ५२०, ६५२, ६५३, ६५४, ६९१, ६९२, ७११

बिड़ला जूट मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी लि०
के

जूट कार्पेट

ट्रेडमार्क—पद्म (लोटस)

हर प्रकार की सजावट के लिए

सबसे बेहतरीन चीज़

सस्ते, आकर्षक और मज़बूती के लिए प्रसिद्ध

दिल्ली, लाहौर, अमृतसर इत्यादि
मेसर्स एम. डी. ज़िन्दल एण्ड सन्स,
मरीना होटल आर्केड, नई दिल्ली.

बनारस, कानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर
मेसर्स खन्ना इन्डस्ट्रीज़,
बीबीहटिया, बनारस सिटी.

आगरा, अलीगढ़, मथुरा,
मेसर्स सुखलाल जमनावाल
१ ताजरोड आगरा,

देहरादून, मेरठ, मसूरी
मेसर्स एस. एल. अग्रवाल ऐण्ड कम्पनी,
१३ जी. राजपुर रोड, देहरादून.

बरेली, मुरादाबाद, रामपुर
मेसर्स बी. डी. गोयल एण्ड सन्स,
बांस-मण्डी, बरेली.

नैनीताल, अलमोड़ा, रानीखेत
मेसर्स हरिदत्त एण्ड ब्रदर्स,
दी माल, नैनीताल.

सेलिंग एजेन्ट्स :

सब एजेण्ट और स्टाकिस्ट प्रत्येक जगह हैं।

मैनेजिंग एजेन्ट्स,

बिड़ला ब्रादर्स, लिमिटेड.

८, रायल एक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता।

टेलीग्राम:—"जूटवीवर"
टेलीफोन:—कलकत्ता ५६५.

'कहानी'-नववर्षांक

के लेख और लेखक

कहानियाँ

मृत्यु की आड़ में—उषादेवी मित्रा
हुस्न और हैवान—कृष्णचन्द्र
कर्मनिरता—एण्टन चेखव

उपन्यास

निरैया—रवीन्द्रनाथ देव
मैचा—राजनाथ पाण्डेय

पद्यबद्ध कहानियाँ

जंगल की बात—नरेन्द्र शर्मा
खिलौना—सियारामशरण गुप्त

डायरी

पूँजीपति की डायरी— शिवदानसिंह चौहान

मेरी क़लम का राज

गुलाबराय, पहाड़ी, उषादेवी मित्रा, अश्क, सत्यवती मल्लिक, शौकत थानवी, कौशिक, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, शिवपूजन सहाय, रामविलास शर्मा—

स्केच

नूरी—सत्यवती मल्लिक
फेरीवाला—प्रकाशचन्द्र गुप्त
म्यूज़िक कान्फ्रेंस—मुहम्मद तक़ी

युद्ध की कहानियाँ

स्पेन के गृह-युद्ध के दो पृष्ठ—पहाड़ी
चलो भाग चलें - वांडा डाइनौस्का

संस्मरण

प्रेमचन्द—शिवरानी देवी

कहानी-कला पर लेख

बीबी की कहानियाँ—नरोत्तमप्रसाद नागर
आज की कहानी—अमृतराय
कहानी का प्लाट—श्रीराम शर्मा
विज्ञान और कहानी साहित्य—भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव

हास्य

हमसफ़र—शौकत थानवी

इसके अतिरिक्त पुस्तकालय, अनेकों कलापूर्ण चित्र आदि से सुसज्जित विशेषांक प्रकाशित हो गया है। अब थोड़ी ही प्रतियाँ बची हैं।

एक प्रति का मूल्य अलग से आठ आना। वार्षिक ३)

कहानी नववर्षांक की प्रति सरस्वती-प्रेस बुकडिपो अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ; कामताप्रसाद कक्कड़ रोड, इलाहाबाद से भी मिलेंगी। आप अपना चंदा इन शाखाओं में जमाकर मनीआर्डर खर्च बचा सकते हैं।

व्यवस्थापक, 'कहानी', बनारस कैण्ट

आपका व्यापार

केवल सुन्दर और चित्ताकर्षक

- ब्लाक
- छपाई
- कैलेन्डर
- कार्ड बोर्ड बक्स
- लैबिल आदि

पर ही निर्भर है

फोन नं०
६३२७

इसलिये
उपरोक्त सामग्री के
लिये —

मुरारी फ़ाइन आर्ट वर्क्स,
४, दरियागंज देहली

ब्रांच-
कटराबड़ियान
देहली

को हमेशा याद रखिये

ब्रांच-
कसेरट बाजार
आगरा

और हमारे

२० वर्ष के अनुभव

से लाभ उठाइए

इतिहास, संस्कृति और राजनीति की मासिक पत्रिका

'विश्ववाणी' ही क्यों पढ़ें ?

'विश्ववाणी' का नामकरण स्वर्गीय कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने किया है

'भारत में अंगरेज़ी राज' के रचयिता पं० सुन्दरलाल इसके संरक्षक हैं

'विश्ववाणी' पर लोकमत

यों तो मैं किसी को आज कल कुछ संदेश नहीं भेजता, लेकिन 'विश्ववाणी' को मैंने चन्द मिनट दीं। 'विश्ववाणी' की विशेषता कि उसमें ज़ाहिर खबर नहीं ली जाती मुझे बहुत प्रिय लगी। मुझे यह भी अच्छा लगा कि 'विश्ववाणी' में सब धर्मों के लेख भरे पड़े हैं···।

—महात्मा गान्धी

'विश्ववाणी' जिस महान् उद्देश्य को लेकर निकली है, मुल्क को उसकी बेहद ज़रूरत है। हर हिन्दुस्तानी को 'विश्ववाणी' पढ़नी चाहिए।

—राष्ट्रपति आज़ाद

ऐसे महान उद्देश्य को लेकर जिस साहस के साथ आपने 'विश्ववाणी' निकालने का आयोजन किया है, मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ।

—सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि हिन्दी में इतनी उच्चकोटि की कोई दूसरी मासिक पत्रिका नहीं है।

—आचार्य नरेन्द्रदेव

निस्सन्देह 'विश्ववाणी' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका है।

—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

'विश्ववाणी' का एक-एक अङ्क संग्रह की वस्तु है!

आज ही छै रुपये भेजकर ग्राहक बन जाइए

मैनेजर—

'विश्ववाणी' कार्यालय, साउथ मलाका, इलाहाबाद

रूबी जनरल इंश्योरेंस कं० लि०

हेड आफिस—८, रॉयल एक्सचेंज प्लेस कलकत्ता

चैयरमैन—श्री ब्रजमोहन बिड़ला

जीवन, अग्नि, मोटर, और समुद्र दुर्घटना के लिए

बीमा-प्रतिष्ठान

सन् १९४० में ३० लाख से भी ऊपर जीवन-बीमे की पालिसियाँ की हैं।

कुल सम्पत्ति का परिमाण २८ लाख के क़रीब है, चुकता मूलधन १४ लाख ४० हज़ार है।

शाखाएँ—

बंबई, मद्रास, कोलम्बो
नई दिल्ली, कानपुर, रंगून,
लाहौर, पटना इत्यादि

हंस

के विशेषांक हिन्दी-साहित्य के सृजन में अग्रणी क्यों हैं ?

क्योंकि

उनका दृष्टिकोण सदैव ही प्रगतिशील रहा है ।

उनके लेखक अपने विषय के दिग्गज विद्वान हैं ।

उनके विषयों का चुनाव अभिनव रहा है ।

हंस : कविता-अंक

के लेखक हैं

सुमित्रानन्दन पन्त
सियारामशरण गुप्त
'निराला'
'नवीन'
मैथिलीशरण गुप्त
बच्चन
दिनकर
अज्ञेय
महादेवी वर्मा
रामकुमार वर्मा
माखनलाल चतुर्वेदी
नरेन्द्र शर्मा
अंचल
भगवतीचरण जोशी
उमाशंकर जोशी
स्टीफेन स्पेंडर
हरीन्द्र चट्टोपाध्याय
हीरालाल गोदीवाला
आरदेशर फ० खबरदार
सुनीतिकुमार चटर्जी
शिवदानसिंह चौहान
प्रभागचन्द्र शर्मा
देवेन्द्र सत्यार्थी
एहतिशाम हुसैन
केदारनाथ अग्रवाल
नगेन्द्र
नेमिचन्द्र जैन
नरोत्तमप्रसाद नागर
रामविलास शर्मा
'सत्येन्द्र'
नन्ददुलारे वाजपेयी
हजारीप्रसाद द्विवेदी
गुलाबराय
प्रकाशचन्द्र गुप्त
आदि आदि…

अपनी प्रतियों के लिए अभी से न लिखने पर आपको निराश न होना पड़े, इसलिए अपना चन्दा आज ही भेज दीजिये ।

कविता-अंक की प्रति सरस्वती-प्रेस बुकडिपो, अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ; कामताप्रसाद कक्कड़ रोड, प्रयाग से मिलेगी। आप अपना चन्दा इन शाखाओं में जमा कर मनीआर्डर खर्च बचा सकते हैं ।

वार्षिक ६)
एक अंक का आठ आने
कविता-अंक का १)

व्यवस्थापक,
'हंस'
बनारस कैंट

दिल्ली में सब प्रकार की उत्तम छपाई और खास करके

हिन्दी पुस्तकों की छपाई

का काम

फेडरल ट्रेड प्रेस

नया बाज़ार : दिल्ली : : फोन नं० ५३७७

में

बहुत अच्छा और सावधानी से किया जाता है

एक बार परीक्षा कर देखें

यही एक प्रमाणपत्र काफी है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन-संस्था

'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकें

हमारे यहाँ छपती हैं।

078755

"राष्ट्रभाषा-समाचार"

[राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा का मुखपत्र]

सम्पादक : श्रीमन्नारायण अग्रवाल

हर महीने की १४ तारीख को निकलता है

अहिन्दी प्रान्तों में हिन्दी की प्रगति

भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं की चुनी हुअी छोटी सुन्दर कहानियाँ, निबन्ध, जीवन-परिचय अित्यादि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की सभी प्रवृत्तियाँ,

अगर आप यह सब सामग्री अेक ही जगह और अेक ही साथ पढ़नें के अिच्छुक हैं तो "राष्ट्रभाषा-समाचार" के ग्राहक बनिए

अिसका वार्षिक चन्दा सिर्फ १० आना मनीआर्डर से है।

यह वी० पी० से नहीं भेजा जाता

प्रबन्ध सम्पादक—"राष्ट्रभाषा-समाचार" वर्धा।

भारतीय स्त्रियों और कन्याओं की
सबसे अच्छी और सबसे सस्ती
सचित्र मासिक पत्रिका

दीदी

वार्षिक मूल्य
२)
एक प्रति
≡)

सम्पादक—श्रीनाथसिंह

आशीर्वाद

मुझे विश्वास है कि 'दीदी' अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकेगी। —राजेन्द्रप्रसाद

'दीदी' के द्वारा हिन्दी का एक अंग भरेगा यह मुझे भरोसा है। —पुरुषोत्तमदास टंडन

सदा कमनीय काम करके
लोक में कीर्तिवितान तने।
घरों में देवी कहा पुजे,
तिमिर में 'दीदी' दिव्य बने।

—"हरिऔध"

सम्पादिका-समिति

'दीदी' की संपादिका-समिति में निम्नलिखित पाँच प्रमुख महिलाएँ हैं—

रानी गिरिजादेवी (भदरी)।

कुमारी विद्यावती, बी. ए., सी. टी. (बेसिक), बी. टी.।

श्रीमती सत्यवती (स्नातिका), एम. एल. ए.।

कुमारी हरदेवी मलकानी, एम. ए।

श्रीमती रत्नकुमारी एम. ए.।

सम्मतियाँ

"लड़कियों और स्त्रियों के लिए 'दीदी' जैसे सरल हिन्दी मासिक की आवश्यकता थी। अब यह कमी पूरी हुई।" —कर्मवीर

"....'दीदी' जबसे निकली है दिनोंदिन उन्नति करती जाती है।" —प्रताप

"......... काफी विचार-मंथन के उपरान्त श्री श्रीनाथसिंह ने 'दीदी' का प्रकाशन आरम्भ किया है। आपने जिस उत्साह से इस ओर क़दम बढ़ाया है, वह स्तुत्य है।" —आज

"गेट-अप और छपाई भारत की समस्त पत्रिकाओं से अच्छी है।" —आर्यमित्र

'दीदी' में क्या रहता है?

'दीदी' में प्रतिमास चार सुन्दर कहानियाँ, एक सच्ची कहानी, शिशुपालन, गृहप्रबंध, रसोई, कसीदा, यौवन-सौंदर्य और प्रेम, फ़ैशन आदि पर विशेषज्ञों के लेख और घर-गृहस्थी की सैकड़ों बातें रहती हैं। एक शब्द में 'दीदी' उन सब सवालों का जवाब देती है जो किसी भी स्त्री के हृदय में उठ सकते हैं।

'दीदी' का नववर्षांक—दिसम्बर १९४१
'दीदी' का विशेषांक—जनवरी १९४२
में प्रकाशित होगा।

प्रजामण्डल श्रीनाथसिंह-लिखित सर्वथा नवीन उपन्यास मूल्य १।), 'दीदी' के ग्राहकों से सिर्फ़ १)।

ये दोनों विशेषाङ्क केवल उन्ही को मिल सकेंगे जो नवम्बर सन् १९४१ से पहले वार्षिक मूल्य २) मनीआर्डर से भेजकर 'दीदी' के ग्राहक बन जायेंगे। पत्र या मनी-आर्डर भेजने का पता—

प्रेमलता देवी, संचालिका 'दीदी', कटरा, इलाहाबाद।

साहित्य का एकमात्र उद्देश्य जीवन का निर्माण है !

तब आप निर्जीव और घातक साहित्य की ओर न ललचावें।

साधुमना सन्तों, महापुरुषों और राष्ट्रनेताओं की वाणी

और विचार ही हमें अमृत प्रदान कर सकते हैं !

जीवन के बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक,
समस्त अंगों को बनानेवाला साहित्य

सस्ता-साहित्य-मण्डल से ही मिलेगा

—: कुछ चुने हुए रत्न :—

द० अफ्रीका का सत्याग्रह	[महात्मा गांधी]	स्त्री-पुरुष	[महात्मा टॉल्सटॉय]
अनीति की राह पर	,,	हम क्या करें ?	,,
आत्म-कथा	,,	प्रेम में भगवान्	,,
युद्ध और अहिंसा	,,	मेरी मुक्ति की कहानी	,,
गांधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ	[सर राधाकृष्णन्]	गांधी-विचार-दोहन	[किशोरलाल मश्रुवाला]
मेरी कहानी	[जवाहरलाल नेहरू]	विश्व-इतिहास की झलक	[जवाहरलाल नेहरू]
हिन्दुस्तान की समस्यायें	,,	लड़खड़ाती दुनिया	,,
रोटी का सवाल	[क्रोपाटकिन]	संघर्ष या सहयोग	[क्रोपाटकिन]
कांग्रेस का इतिहास	[डा० पट्टाभि सीतारामैया]	हमारे राष्ट्रनिर्माता	[रामनाथ 'सुमन']
जीवन-सन्देश	[खलील जिब्रान]	समन्वय	[डॉ० भगवान्दास]
खादी-मीमांसा	[बालूभाई मेहता]	गीता-मंथन	[किशोरलाल मश्रुवाला]
लोक-जीवन	[काका कालेलकर]	विनोबा के विचार	[विनोबा]
दिव्य जीवन	[स्वेट मार्डेन]	जीवन-सूत्र	[टॉमस कैम्पिस]
बुद्धवाणी	[वियोगी हरि]	सन्तवाणी	[वियोगी हरि]
हमारे गाँवों की कहानी	[रामदास गौड़]	गाँवों का सुधार-संगठन	[रामदास गौड़]
बापू	[घनश्यामदास बिड़ला]	तीस दिन: मालवीयजी के साथ	[रामनरेश त्रिपाठी]

और 'जीवन साहित्य' मासिक-पत्र : वार्षिक मूल्य १।।)

छप रही हैं— १. महावीर-वाणी २. भारतीय संस्कृति और नागरिक जीवन
३. अहिंसा-विवेचन ४. हमारी आज़ादी की लड़ाई

'मण्डल' के स्थायी तथा 'जी० सा०' के ग्राहकों को पौने मूल्य में

सस्ता-साहित्य-मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

शाखाएँ—
दिल्ली, लखनऊ, इन्दौर, वर्धा, (नागपुर) इलाहाबाद और कलकत्ता

हिन्दी-मन्दिर, इलाहाबाद को आप जानते ही हैं

अब आपको

उसका समस्त प्रकाशन

सस्ता साहित्य मण्डल से मिला करेगा

क्योंकि

(१)
कनाट सर्कस, नई दिल्ली

(३)
अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ

(५)
१३२/१ हरिसन रोड, कलकत्ता

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग
के
समस्त प्रकाशनों का स्टॉक
मंडल ने मोल ले लिया है

अतः
'मंडल' के स्थायी ग्राहकों और
'जी० सा०' के ग्राहकों को
पौने मूल्य में मिल सकता है

(२)
दरीबा कलाँ, दि

(४)
खजूरी बाज़ार, इन्

(६)
ज़ीरो रोड, इलाहा

हिंदी-मंदिर के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

काव्य-आलोचना	(१) कविता- कौमुदी : पहला (हिंदी), दूसरा (हिन्दी) चौथा(उर्दू) सातवाँ ((२) तुलसीदास और उनकी कविता—दो भाग
काव्य	(३) पथिक (४) मिलन (५) स्वप्न (६) मानसी आदि
नाटक	(७) जयन्त (८) वफाती चाचा (९) प्रेमलोक (१०) बानर संगीत आदि
कहानियाँ	(११) तरकस (१२) वीथिका (१३) यूरोप की कहानियाँ आदि
जीवनियाँ	(१४) अशोक (१५) चन्द्रगुप्त (१६) बुद्ध (१७) मुसलिम सन्त आदि
कोष	(१८) हिन्दुस्तानी कोष (१९) पाकेट डिक्शनरी

इसके अलावा किसानोपयोगी, महिलोपयोगी, तथा बालोपयोगी साहित्य

कुल मिलाकर ११५ पुस्तकें !

विशेष सूचीपत्र मँगाकर देखिए।

मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली, में छप कर वहींसे मार्तण्ड

Compiled
1999-2000